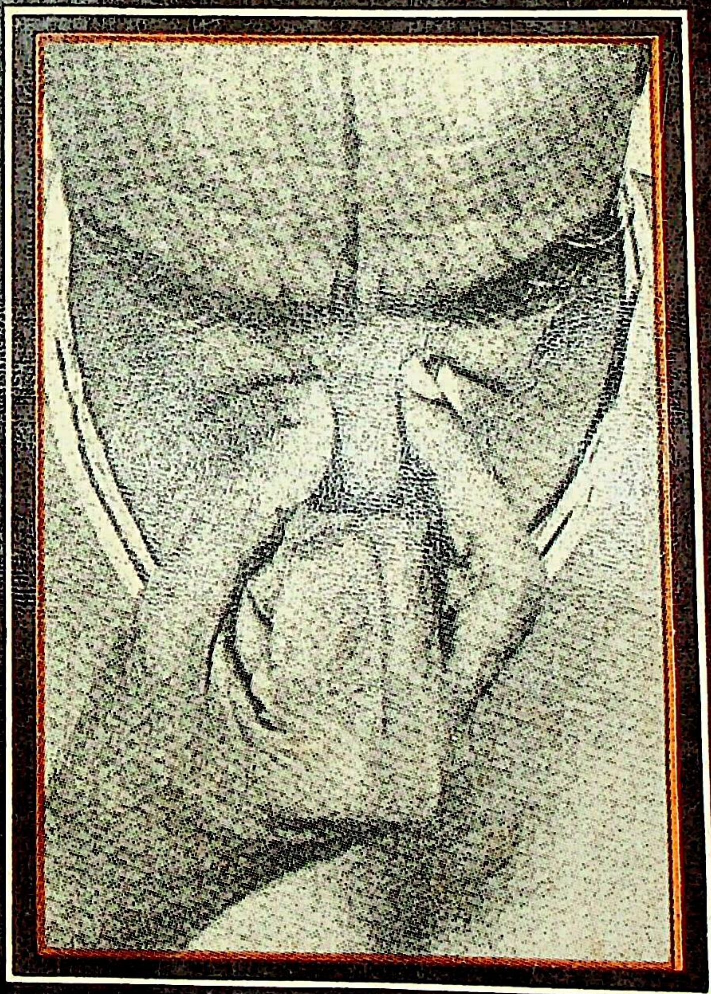
प्राणायाम

बी के एस आयंगार



प्राणायाम

लेखक की अन्य कृतियाँ

योगदीपिका ('लाइट ऑन योग' का हिन्दी अनुवाद).

प्राणायाम

बी. के. एस. आयंगार

प्रस्तावना : येहुदी मेनुहिन

अनुवाद : कृष्ण गोपाल



ओरियंट लांग्मैन

ओरियंट लांग्मैन लिमिटेड
पंजीकृत कार्यालय
5-9-41/1 बशीर बाग, हैदराबाद 500 029

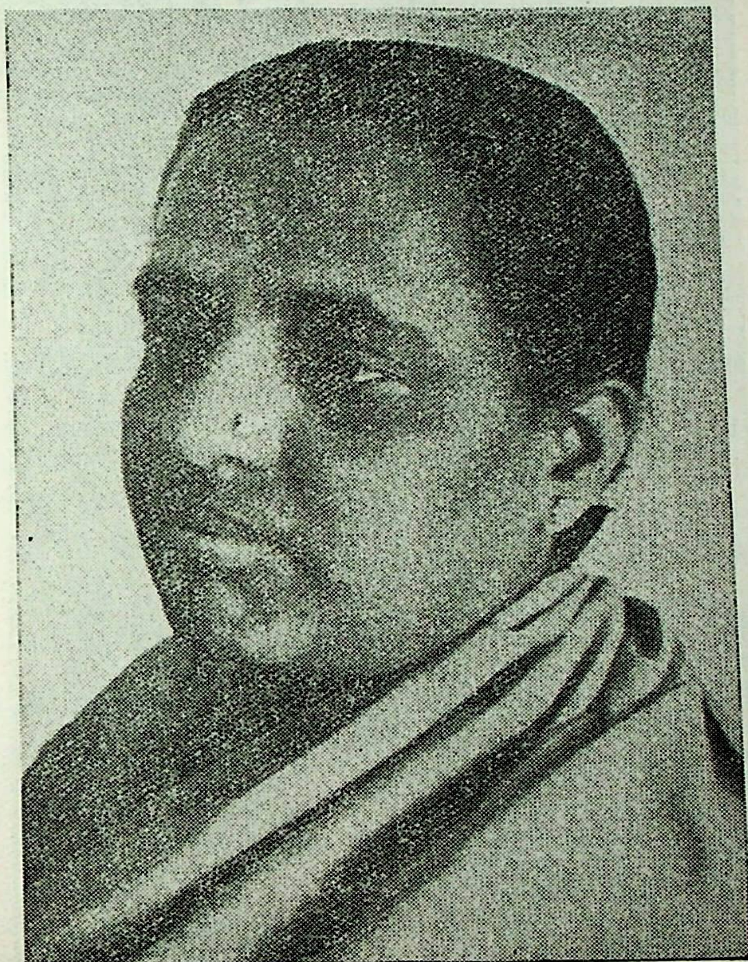
शाखाएं
कामानी मार्ग, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई 400 038
17 चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता 700 072
160 अन्ना सलाई, मद्रास 600 002
1/24 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110 002
80/1 महात्मा गांधी रोड, बंगलौर 560 001
5-9-41/1 बशीरबाग, हैदराबाद 500 029
एस. पी. वर्मा रोड, पटना 800 001

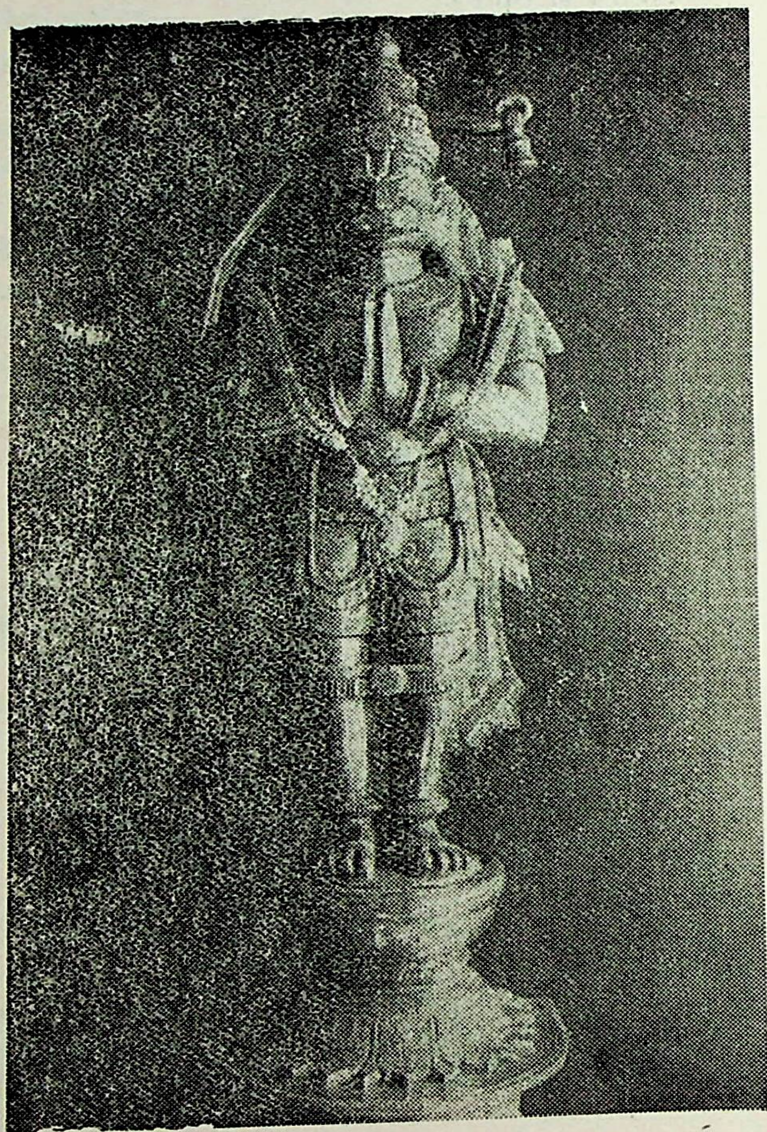
© बी के एस आयंगार 1985
जॉर्ज एलन एंड अन्विन के साथ सहव्यवस्था द्वारा
मूल अंग्रेजी पुस्तक 'लाइट ऑन प्राणायाम' से अनूदित
प्रथम प्रकाशन 1985

प्रकाशक
ओरियंट लांग्मैन लिमिटेड
आसफ अली रोड
नई दिल्ली 110 002

मुद्रक
मॉडर्न प्रिंटर्स
के-30 नवीन शाहदरा
दिल्ली 110 032 (भारत)

मेरी परमप्रिय धर्मपत्नी
रमामणि की स्मृति को
समर्पित,





प्रभु हनुमान

स्तुति

प्रभु हनुमान के प्रति

प्रभु हनुमान ! प्राण देवता ! पवन पुत्र !
मैं आपको प्रणाम करता हूं
आप पंचानन हैं और हमारे अंतर में निवास करते हैं
जहां आपका स्वरूप पंचवायु अथवा ऊर्जा के रूप में
हमारे शरीर, मन और आत्मा में
घुल-मिल गया है

आपने प्रकृति (सीता) का पुरुष (राम) से
पुनर्मिलन कराया है
आप साधक को आशीर्वाद दें
उसकी महाशक्ति-प्राण को
उसके अंतर में व्याप्त दैवी शक्ति से मिला दें

* * *

महर्षि पतंजलि के प्रति

मैं महर्षि पतंजलि के सम्मुख नतमस्तक हूं
जिन्होंने
योग पर अपनी कृति द्वारा मन की शांति
व्याकरण पर अपनी कृति द्वारा वाणी की स्पष्टता
औषधि पर अपनी कृति द्वारा शरीर की शुचिता
सुलभ की है—

* * *

योग है जहां
समृद्धि, सफलता, स्वतंत्रता
और आनंद है वहां

मेरे गुरुजी द्वारा प्रशस्ति

बी० के० सुन्दरराजेन रचिता नूतनयुक्तिभिः ।
योगशास्त्रं समालंम्य प्राणायामप्रदीपिका ।।

विविधैः प्राणसंचारवृत्तिरोध विबोधनैः ।
षट्चक्रनिकारे नाड़ीजाले लोहित शोधकैः ।।

पंचप्राण प्रसारैश्च निरोधानाञ्च बोधकैः ।
युक्ताध्यानानुकूला च प्राणायामाभिलाषिनाम् ।।

आलोकिता च सस्वार्थं मया श्रीकृष्णयोगिना ।
आद्रियेरनिमां ग्रन्थरत्नं भुवि विपश्चिताः ।।

प्रथम जून 1979

टी० कृष्णमाचार्य

1. वी० के० सुन्दरराज आयंगार द्वारा लिखित पुस्तक **प्राणायाम*** योग के प्राचीन विज्ञान का नवीन और अद्यतन निरूपण है।

2. इस पुस्तक में श्वास की सूक्ष्म कार्य-प्रणाली, पूरक क्रिया (श्वसन/अंतःश्वसन/वायु से भरना), कुंभक क्रिया (धारण/श्वासों की रोकथाम) और रेचक क्रिया (उच्छ्वसन/वाह्यश्वसन/फुप्फुस को वायु से रिक्त करना) की विभिन्न तकनीकों और नाड़ियों तथा चक्रों के रचना-तंत्र में से होकर अवाधित रूप से प्रवाहित लाल रंग के तरल पदार्थ—जीवन-शक्ति—के निस्पंदन पर विचार किया गया है।

3. इस पुस्तक में ब्रह्मांडीय ऊर्जा में जीवन का संचार करने की व्याख्या की गई है क्योंकि यह पांच रूपों में व्यक्त होती है। साथ ही इस वात पर भी बल दिया गया है—क्या करें और क्या न करें। यह कृति प्राणायाम के उत्साही साधकों के लिए अत्यधिक मूल्यवान है।

4. निश्चय ही विद्वान इस विचारोत्तेजक कृति में रुचि लेंगे। योग के संबंध में यह मूल्यवान कृति है।

प्रथम जून 1979

टी० कृष्णमाचार्य

---

* मूल अंग्रेज़ी पुस्तक 'लाइट ऑन प्राणायाम' का प्रस्तुत अनूदित रूप

प्रस्तावना

बी० के० एस० आयंगार ने अपेक्षाकृत अधिक दुर्ग्राह्य प्राणायाम के लिए बहुत कुछ लिखा है। प्राणायाम वायु-संचलन की एक क्रिया है जिसके लिए कहा जाता है कि यह पृथ्वी पर जीवन का निर्धारण करती है। उनकी यह कृति वैसी ही है जैसा कि उन्होंने हठयोग के भौतिक स्वरूपों के संबंध में विवेचन किया है। उनकी पहुंच हमारे अस्तित्व के अपेक्षाकृत अधिक आकाशीय और सूक्ष्म पक्ष तक है। उन्होंने आम पाठक के लिए ऐसी पुस्तक लिखी है जिसमें काफी हद तक एकत्र रूप में अधिकतम सूचना, ज्ञान और बुद्धि पर प्रकाश डाला गया है जोकि हमारे पारंपरिक औषधि-जगत् के अधिक मेधावी छात्रों के लिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि यह पुस्तक रोग की औषधि न होकर नैरोग्य की दवा है; यह एक प्रकार से आत्मा, शरीर और मन की समझ है जो जितनी रोग निवारक है, उतनी शक्तिवर्धक भी है। यही नहीं कि किसी व्यक्ति में पूर्णता का पुन:स्थापन किया जा सकता है बल्कि जीवन भर की समस्त प्रगति को एक शक्तिशाली परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। उन्होंने प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुरूप हमें यह बताया है कि जीवन न केवल धूल से उठकर धूल में मिल जाना है बल्कि यह वायु से वायु का मिलन है, जैसाकि अग्नि जलाने की प्रक्रिया में होता है कि पदार्थ, अग्नि, प्रकाश और विकिरण में परिवर्तित हो जाता है जिससे हम शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। परंतु यह शक्ति एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ के अन्य रूपों में परिवर्तन की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। इस प्रकार प्राणायाम वायु और प्रकाश के समस्त चक्र का पदार्थ में रूपांतरण और उसी चक्र में प्रत्यावर्तन है। वस्तुत: यह आइन्स्टाइन के पदार्थ और ऊर्जा के समीकरण को संपूर्णता प्रदान करती है और उसे जीवित मानव के लिए व्यावहारिक बनाती है। यह अब न तो परमाणु बम है, न परमाणु विस्फोट, बल्कि यह मानव की ऊर्जा के स्रोत—प्रकाश और शक्ति—का किरणन है।

मेरा यह विश्वास है कि प्राचीन और शास्त्रीय भारतीय ग्रंथों के आधार पर लिखी गई यह पुस्तक एक्यूपंक्चर से लेकर स्पर्श एवं ध्वनि चिकित्सा तक के पारस्परिक हित-लाभ के लिए आयुर्विज्ञान की विभिन्न पद्धतियों के समाधान में महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन प्रदान करेगी। यह हमें शिक्षा भी प्रदान करेगी कि हम वायु, जल और प्रकाश

का समुचित आदर करें जिनके विना जीवन का अस्तित्व नहीं है और जिन्हें हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे हैं। योग में मेरे गुरु श्री आयंगार ने इस पुस्तक द्वारा पाश्चात्य लोगों के जीवन में एक नया और अधिक वड़ा आयाम जोड़ दिया है जिसमें उन्होंने इस वात पर वल दिया है कि हम अपने सभी भाइयों से रंग और जाति का भेदभाव किए विना आदरमय और उद्देश्यपूर्ण जीवन विता सकें।

येहुदी मेनुहिन

प्राक्कथन

योग मानव-जीवन के समग्र अनुभव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; यह पूर्ण मानव का विज्ञान है।

जेक्युस एस० मसुई

योगाचार्य श्री बी० के० एस० आयंगार **योगदीपिका** के लेखक हैं। प्राणायाम के जिज्ञासुओं के लिए उनके परिचय की आवश्यकता नहीं है। योग के विज्ञान और कला के स्वरूप को ईसा से कई शताब्दियों पूर्व पतंजलि ने व्यक्त किया था। योग नैतिक और भौतिक शक्ति तथा मनोस्वास्थ्य, बल और पवित्रता से संबंधित निर्देशों से प्रारंभ हुआ है। इसमें मुद्राओं-आसनों को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसका प्रभाव आकांक्षियों को तंत्रिका-शरीर-क्रियाविज्ञान-प्रणाली और अंत:स्रावी ग्रंथियों द्वारा लाभप्रद ढंग से प्राप्त होता है। श्री आयंगार ने अपनी पुस्तक **योगदीपिका** में इन सभी विषयों के बारे में सरल और सुबोध भाषा में विश्व कोश के समान पूर्णरूपेण और सविस्तर विवेचन किया है और इसके साथ ही लगभग 600 चित्रों का समावेश किया है जैसा शायद ही किसी अन्य पुस्तक में उपलब्ध हो सके। इस पुस्तक में योग का पूर्ण सिद्धांत दिया गया है और आसनों के बारे में पूरी तरह विवेचन किया गया है। जार्ज एलन एंड'अन्विन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित मूल अंग्रेजी पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई है कि उसके कई संस्करण निकाले जा चुके हैं और अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। यह पुस्तक विश्व भर में एक व्यावहारिक-निर्देशिका के रूप में प्रयोग में लाई जा रही है।

प्रकृति से अभिभूत और परिस्थितियों द्वारा प्रभावित श्री आयंगार ने अपने गुरु श्री कृष्णमाचार्य के चरणों में बैठकर यह कठिन तपस्या की और स्वयं भी योग के गुरु बन गए। वे अपने समय के कुशल कार्य लेने वाले गुरु सिद्ध हुए हैं। उन्होंने योग के संबंध में जो कुछ कहा और लिखा है, वह उनके समस्त जीवन के प्रचुर और सार्थक वैयक्तिक अनुभवों की व्यापक अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपने इकसठवें जन्मदिन के अवसर पर दिसंबर 1978 में बंबई में आसनों पर प्रदर्शनों सहित भाषण दिया। उस समय उनके सहयोग के लिए उनकी पुत्री गीता और पुत्र प्रशांत भी उपस्थित थे। उनका यह प्रदर्शन उनके सुनम्य शरीर की हर मांसपेशी और नाड़ी के ऊपर नियंत्रण का

अद्भुत रहस्योद्घाटन था। विदेशों से आए उनके सैकड़ों शिष्यों ने उनके इस प्रदर्शन को देखा ओर इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि वह अपनी इस आयु में भी शरीर में इतनी नम्यता और शक्ति कैसे बनाए हुए थे। उनके लिए यह बच्चे का खेल था और मात्र दिनचर्या थी। उनके एक निकट शिष्य ने यह कहा कि उन्होंने अपने शरीर को ऐसा बना लिया है कि 'वह अंग-अंग मोड़ सकते हैं, टेढ़े-मेढ़े आगे बढ़ सकते हैं, चारों ओर घूम सकते हैं, कुलबुला सकते हैं, मांसपेशियों को खींच सकते हैं, लचका सकते हैं, और इसी प्रकार की अन्य कई भंगिमाएं दिखा सकते हैं।

यह तर्कसम्मत है कि श्री आयंगार से ही ऐसी पुस्तक की आशा की जानी चाहिए जो प्राणायाम पर सभी दृष्टियों से पूर्ण और शिक्षाप्रद हो। प्राणायाम जो श्वास नियंत्रण की कला और विज्ञान है, योग का अगला कदम है। अनेक प्रकार के योगों का अभ्यास किया जाता है यथा -- हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, कुंडलिनीयोग, मंत्रयोग, लययोग और इसी प्रकार के अन्य योग। सैद्धांतिक और सार रूप में योग एक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित अनुशासन है जो पूर्ण मानव की सभी ऊर्जाओं और शक्तियों को सफलता से संगठित करता है ताकि ब्रह्मांडीय वास्तविकता अथवा परमात्मा के साथ उच्चतम उल्लासपूर्ण तादात्म्य स्थापित किया जा सके। श्वास-नियंत्रण ऊपर बताए गए प्रत्येक योग के लिए सहायक है। योग के संबंध में सभी पुस्तकों और वर्षों पुराने अनुभव इस तथ्य का प्रतिपादन करते हैं कि श्वास-नियंत्रण मन के नियंत्रण के लिए भी एक महत्वपूर्ण कारक है। फिर भी श्वास-नियंत्रण अर्थात् प्राणायाम केवल गहरी सांस लेना या श्वास लेने का अभ्यास ही नहीं है अपितु साधारणतया शारीरिक संवर्धन का भी एक भाग है। इसके अलावा भी प्राणायाम का अन्य महत्व है। प्राणायाम में ऐसे अभ्यास हैं जो केवल शारीरिक, दैहिकी और तंत्रिकीय ऊर्जाओं को ही प्रभावित नहीं करते अपितु मनोवैज्ञानिक और मस्तिष्कीय क्रियाओं यथा स्मृति-प्रशिक्षण और सर्जनात्मकता को भी प्रभावित करते हैं। पांडिचेरी के ऋषि श्री अरविंद ने यह लिखा है कि प्राणायाम के अभ्यास के बाद वह कविता की दो सौ पंक्तियां स्मरण कर लेते थे जबकि इससे पूर्व वह एक दर्जन पंक्ति भी याद नहीं कर पाते थे।

हाल ही के दशकों में पाश्चात्य औषधिविज्ञान ने प्रयोग के बाद स्वैच्छिक श्वसन को और इसके स्वास्थ्यप्रद और शक्तिप्रद प्रभावों के प्रयोग को मान्यता दे दी है। योग प्राणायाम सिखलाता है और उसका अभ्यास कराता है तथा इसके अविवाद्य ज्ञानप्रद, नियमित और आध्यात्मिक महत्व को बताता है। व्लडीमीर बिशलैर ने अपनी पुस्तक **द फार्म्स एंड टैकनीक्स आफ एल्ट्रयुस्टिक एंड स्प्रीच्युल ग्रोथ** के अध्याय चौदह में कहा है कि अब औषधिविज्ञान ने उन कतिपय उपायों से तालमेल कर लिया है जो प्राच्य विद्या से ग्रहण किए गए हैं और सही स्वैच्छिक श्वास लेने के बहुप्रभावों का अध्ययन भी किया है। उन्होंने इसके न केवल फुफ्फुस पर ही अनेक प्रभाव दिखाए हैं अपितु मानव के संपूर्ण शरीर के उपापचय का भी वर्णन किया है। उनके द्वारा प्रचलित श्वास-चिकित्सा औषधि-जगत् में एक नया और विशाल क्षितिज उद्घाटित करती है। उनके द्वारा प्रचलित यह एक नया तरीका है जो स्वास्थ्य-विज्ञान और चिकित्सा-

शास्त्र के लिए उपयोगी है। वे यह कहकर अपनी बात समाप्त करते हैं कि आधुनिक विज्ञान की जाँच-पड़ताल ने प्राचीन ऋषियों और दार्शनिकों के अनुभवजन्य अंतर्ज्ञान की पुष्टि की है।

योगानुशासन के एक आवश्यक अंग के रूप में प्राणायाम मानसिक और आध्यात्मिक हितों के अलावा अन्य कई प्रकार के लाभ प्रदान करता है। परंतु योग का मुख्य उद्देश्य आत्मानुभूति, आत्मिक तादात्म्य है और प्राणायाम के अभ्यास में मन का नियंत्रण तथा पूर्ण मानवीय चेतना का नियंत्रण होता है जो सभी संज्ञान और चेतना का आधार है। एक मानव के पास अपना शरीर, अपना जीवन और सभी जैविक क्रियाएं होती हैं तथा उसका मन उस स्थिति का स्थान है जिसे हम 'अहं' कहते हैं और यही 'अहं' मस्तिष्कीय क्रियाओं का केंद्र बिंदु है। योग का लक्ष्य मानव की सभी स्मृति, विचार, कामवासना और इच्छाओं को शून्य करना तथा ब्रह्मांडीय ऊर्जा की एक चिनगारी के रूप में शुद्ध चेतना लाने का प्रयास करना है जो सर्वोच्च विवेक के आत्मज्ञान नियम का ही एक प्रकार है। जो कोई भी व्यक्ति योग के पथ पर चलना चाहता है उसका पहला प्रयत्न यह होना चाहिए कि वह स्वयं को तन-प्राण-मन से पूर्णतया भुला दे और उन तीन तत्वों की ओर ध्यान दे जो 'अहं' से ऊपर उठाने के लिए यंत्र साबित हों ताकि अपनी अंतरात्मा को उस शुद्ध और अमिश्रित शक्ति से एकाकार कर सके जिसकी पूर्ण प्रकृति सर्वशांति, समन्वय और सर्जनात्मक आनंद ही है।

इसलिए प्राणायाम का योग में विशेष अर्थ और महत्व है। प्राण का अर्थ श्वास, वायु और जीवन स्वयं है परंतु योग में प्राण (मानव में पांच पक्ष—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) सजीव और निर्जीव विश्व के शक्तिदायक नियमों का मूल सार है। इसमें समस्त ब्रह्मांड व्याप्त है और प्राणायाम का अर्थ उस पूर्ण नियंत्रण से है जो किसी विशेष अनुशासन द्वारा किसी व्यक्ति को अपने ही शक्ति देने वाले नियम से संबंधित है। इस अनुशासन का उद्देश्य अच्छे स्वास्थ्य, शारीरिक और सशक्त ऊर्जाओं का संतुलन करना ही नहीं अपितु पूर्ण तंत्रिका प्रणाली को शुद्ध करना है ताकि इच्छा-शक्ति के प्रति अधिक संवेदनशील होने की योगी की क्षमता अधिकाधिक बढ़े, वह भावावेगों पर नियंत्रण कर सके और विकासात्मक आवेगों के लिए अतिसूक्ष्म और संवेदनपूर्ण मानसिक शक्तियों का निर्माण कर सके।

प्राणायाम को प्रायः स्वतंत्र विषय नहीं माना जाता है। योग के संबंध में अधिकांश प्राचीन पुस्तकें, जिनमें पतंजलि से प्रारंभ किया जा सकता है, प्राणायाम को योगविद्या का ही आवश्यक अंग मानती हैं। परंतु अभी हाल ही में इस विषय पर स्वतंत्र रूप से कतिपय पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और आसनों से संबंधित पुस्तकों की तुलना में प्राणायाम पर पुस्तकें बहुत ही कम हैं फिर भी इस बात की बहुत समय से प्रतीक्षा थी कि योग के सभी पक्षों के अध्यापन के जीवनपर्यंत अनुभव पर आधारित पूर्ण वैज्ञानिक पुस्तक प्रकाशित हो। इसलिए श्री आयंगार की पुस्तक का प्रत्येक योग-प्रेमी स्वागत करेगा।

जब मैंने श्री आयंगार की पांडुलिपि पर प्राक्कथन लिखना स्वीकार किया तभी

मैंने पाया कि लेखक के लिए अंग्रेजी भाषा में इस विषय पर पाश्चात्य लोगों के लिए यह पुस्तक लिखना कितना कठिन और चुनौतीपूर्ण रहा होगा। इस विषय के अन्य लेखकों से कहीं भिन्न श्री आयंगार एक गृहस्थ हैं और उन्होंने पारंपरिक रूप से अपने इष्टदेवता के आह्वान के मार्ग का अनुसरण किया है और साथ ही साथ गीता तथा अन्य संबंधित पुस्तकों के उद्धरण भी दिए हैं। मैं यहां इस बात पर जोर देना चाहूंगा कि योग किसी धर्म का कोई भाग नहीं है और न यह किसी धर्मशास्त्र अथवा कर्मकांड को मानता है। योग में कोई धर्माधिकारी-वर्ग नहीं होता है। योग एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विद्या है जो समस्त मानव मात्र के लिए जाति, वर्ग, रंग, प्रजाति, लिंग अथवा आयु में भेद किए बिना ही सुलभ है। संभवतः इसके लिए केवल यही आवश्यक योग्यता है कि व्यक्ति अपनी ही चेतना की शक्तियों में विश्वास करे और चेतना के नियमों का अनुसरण करके अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए महत्वाकांक्षी हो। श्री आयंगार के संबंध में एक अन्य रूढ़ि-विरुद्ध और आकर्षक लक्ष्य यह है कि वे अपने परिवार को भारस्वरूप नहीं मानते और अपनी पत्नी को योगी जीवन में बाधा नहीं समझते। उन्होंने पूना में स्थित अपने योग-संस्थान का नाम अपनी स्वर्गीया जीवनसंगिनी श्रीमती रमामणि के नाम पर रखा है और यह पुस्तक भी उनके नाम ही समर्पित की है। इन कार्यों से श्री आयंगार ने काफी हद तक यह सिद्ध कर दिया है कि योग जीवन के लिए है और जीवन से दूर नहीं है जैसा कि श्री अरविंद ने प्रायः दोहराया है।

एक अन्य कठिनाई पारिभाषिक शब्दावली की है और उन शब्दों के प्रयोग की भी है जो मूलतः संस्कृत में हैं। श्री आयंगार ने सफल प्रयास किया है कि अंग्रेजी पर्यायों का चयन सूक्ष्म और शुद्ध रहे और उनकी अभिव्यक्ति में मूल का भास हो। वह अधिकाधिक विवरण देने में दक्ष हैं और वे तब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक वे यह महसूस न कर लें कि उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह पाठक समझ गया है। प्राणायाम शब्द को ही लें। यह शब्द अपने अर्थ अभिदान में इतना गंभीर है कि 'श्वास-नियंत्रण, 'स्वैच्छिक श्वसन' अथवा 'श्वसन का विज्ञान' कह देने से इसका अर्थ बोध पर्याप्त रूप से नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, कोई भी वाक्यांश कुंभक के विचार को अभिव्यक्त नहीं कर पाता और न विभिन्न साधनों से वैकल्पिक नासारंध्रों द्वारा श्वसन की क्रिया का द्योतक ही हो पाता है। विभिन्न प्रकार के श्वसन यथा उज्जायी, शीतली और इसी प्रकार की अन्य क्रियाएं तथा इनमें मुद्राओं और बंधों सहित क्रियाओं की अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी में पर्याय नहीं मिल पाते। श्री आयंगार ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि आसन के समय नासारंध्रों को दबाने के लिए अंगूठा और अंगुलियों का प्रयोग भी सही तरीके से किया जाए और इसका उन्होंने व्यापक रूप से वर्णन किया है। उन्होंने शब्दों का प्रयोग सावधानी से किया है और आवश्यक सतर्कता बरती है तथा अपनी पुस्तक में चित्र भी दिए हैं ताकि प्राणायाम की कला का अनुसरण करने वाला जिज्ञासु सही मार्गदर्शन पा सके और उनका यह प्रयास लिखित रूप से यथासंभव ज्ञान उपलब्ध करा सके।

श्री आयंगार इस तथ्य से पूरी तरह अवगत हैं कि योग का विज्ञान और इसकी कला धारणा, ध्यान और समाधि के बिना पूर्ण नहीं है। यह त्रियेक योग का राजमुकुट

है तथा इसे संयम कहा जाता है। इससे योगी को चेतनाओं के क्षेत्र में ज्ञानातीत होने के लिए धीरे-धीरे विकासपथ मिल जाता है और इससे अहं के राज्य पर भी विजयी होने का अवसर मिलता है ताकि विशुद्ध आनंद और समन्वय का उच्चतम भावना के साथ एकता प्रवर्द्धक रहने के लिए नवीन जीवन में संपूर्णता का धीरे-धीरे परिवर्तन हो सके। इसलिए उन्होंने इस पुस्तक में इस बात के संकेत दिए हैं जो मनन अथवा ध्यान कहलाते हैं। उन्होंने इस पुस्तक के अंत में शवासन के संबंध में कुछ संकेत दिए हैं, यह ऐसा आसन है जिसके द्वारा किंचित चेतना के साथ नितांत विश्रांति मिल जाती है। उन्होंने प्राणायाम पर पुस्तक लिख कर इस बात का महान् प्रयास किया है कि पाठक को वास्तविक विश्रांति के रहस्य का पता लग सके ताकि वह मनन योग्य समाधि के शिखर पर कदम बढ़ा सके और अंतिम रूप से उस शिखर तक पहुंच सके। हमें **योगदीपिका, प्राणायाम** और 'ध्यानदीपिका' जैसी तीनों पुस्तकों के प्रकाशन की आशा रखनी चाहिए ताकि यदि श्री आयंगार का जीवन पूर्णता का जीवन हो तो अन्य व्यक्ति भी अध्यात्म के एवरेस्ट शिखर तक की यात्रा में इस त्रिपुंज का लाभ उठा सकें।

बंगलौर
14 जून 1979

आर० आर० दिवाकर

भूमिका

मेरी प्रथम पुस्तक **योगदीपिका** ने मेधावी विद्यार्थियों के मन और हृदयों को जीत लिया और उन असंख्य व्यक्तियों के जीवन में परिवर्तन ला दिया जो मुख्यतया इस पवित्र कला, विज्ञान और दर्शन को जानने की उत्कंठा रखते थे। आशा है कि मेरी पुस्तक प्राणायाम उनके ज्ञान में वृद्धि करेगी।

पतंजलि और प्राचीन भारत के योगियों के प्रति मेरे मन में आदर और निष्ठा है जिन्होंने प्राणायाम की खोज की है। अपने सभी पुरुष साथियों और महिलाओं के साथ प्राणायाम की सादगी, स्पष्टता, जटिलता, सूक्ष्मता और पूर्णता के अमृतपान में मैं भी सहभागी हूं। अभी हाल ही में मुझे अभ्यास करते हुए एक ऐसी नवीन ज्योति की अंतश्चेतना का आभास हुआ जो मैंने उस समय अनुभव नहीं की थी जब मैंने **योगदीपिका** लिखी थी। मेरे मित्रों और शिष्यों ने मुझ पर इस बात के लिए ज़ोर दिया कि मैं अपने ऐसे अनुभवों और ऐसी मौखिक शिक्षाओं को लिखित रूप में प्रस्तुत करूं इसलिए मैंने जटिल अवलोकन और विचारों की व्याख्या करने का प्रयास किया है और इस बात का प्रयत्न किया है कि मैं विद्यार्थियों को उनके संस्कार और सूक्ष्म ज्ञान की खोज में सहायता दे सकूं।

अनेक पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन संकल्पना स्वीकार की है जिसके अनुसार मनुष्य शरीर, मस्तिष्क और भावना तीनों का संगम है। शारीरिक अभ्यास, खेल-कूद और व्यायाम की विभिन्न तकनीकें पुरुष और महिलाओं को स्वस्थ रखने के लिए बनाई गई हैं। इन तकनीकों को हड्डियों, संधियों, मांसपेशियों, ऊतकों, कोशिकाओं और अवयवों के साथ शरीर (अन्नमय कोष) की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए बनाया गया है। भारतीय विद्वान इस विद्या को 'पदार्थ पर विजय' कहते हैं। मैंने अपनी पुस्तक **योगदीपिका** में इसे पूर्णतया स्पष्ट किया है। अभी हाल ही में पश्चिमी देशों के विद्वान प्राचीन भारत में विकसित उन तकनीकों से परिचित हुए हैं जिनका संबंध श्वसन, रक्तसंचार, पाचनक्रिया, मिश्रण, पोषण, अंतःस्रावी ग्रंथियों और नाड़ियों के सूक्ष्म स्वरूपों से है। इन सूक्ष्म स्वरूपों को सामूहिक रूप से 'जीवन-शक्ति (प्राणमय कोष) पर विजय की संज्ञा दी गई है।

योग-विद्या संहिताबद्ध प्रणाली है जिसमें आत्म-अनुभूति के आठ पक्षों पर विचार किया गया है, **ये पक्ष हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,**

ध्यान और समाधि । इस पुस्तक में प्राणायाम पर बल दिया गया है ताकि स्वास्थ्य की संतुलित स्थिति और पूर्णता में मानवीय शरीर की अनैच्छिक अथवा स्वतः नियंत्रित प्रणालियों को बनाए रखा जा सके ।

मेरे घर में विद्वान, संत अथवा योगी नहीं थे जो मुझे योग स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते। मैं बचपन से ही अनेक रोगों से पीड़ित रहा और सौभाग्यवश मैं 1934 में योग की ओर अग्रसर हुआ। उस समय यह आशा थी कि मैं स्वस्थ हो जाऊंगा । उस समय से योग मेरे जीवन का मार्ग बन चुका है । इस विद्या ने मुझे समय की पाबंदी सिखाई है और उन तमाम मुसीबतों के बावजूद अनुशासित कर दिया है जिनके कारण मेरे दैनिक अभ्यास, शिक्षा-ग्रहण और अनुभव विघटित हो गए थे।

प्रारंभ में प्राणायाम एक संघर्ष था। आसनों के दैनिक अभ्यास में अधिकता होते ही मेरा अंतःशरीर कई बार हिल जाता था । और यह स्थिति प्राणायाम प्रारंभ करने के कुछ ही मिनटों में हो उठती थी। मैं प्रति प्रातः अभ्यास करने के लिए उठ जाता था और मेरे लिए सांस रोकना तथा सांस का तालमेल रखना श्रमसाध्य था। मैंने बराबर संघर्ष किया। बड़ी मुश्किल से मैं तीन या चार बार श्वास-प्रश्वास के चक्र लगा पाता था और इतने ही समय में वायु के लिए हांफने लगता था। मैं कुछ मिनटों के लिए आराम करता था और फिर उस समय तक प्रयास करता था जब तक कि मेरे लिए यह क्रिया असंभव न हो जाती। मैंने मन में सोचा कि मैं ऐसा क्यों नहीं कर सकता। मुझे इसका कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे ऐसा कोई व्यक्ति भी नहीं मिला जो मार्गदर्शन कर पाता। असफलताओं और भूलों ने ही कई वर्षों के बाद मेरे शरीर, मस्तिष्क और आत्मा को कस दिया लेकिन मैं दृढ़ता से अपने कार्य के मापदंडों को सुधारता रहा और अब भी मैं प्राणायाम को प्रतिदिन एक घंटे का समय देता हूं इसके बावजूद मुझे यह लगता है कि यह अपर्याप्त है।

शब्द किसी भी पाठक को धार्मिक साधना (अभ्यास) की ओर सम्मोहित और आकर्षित कर सकते हैं और उसको ऐसा सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि वह आध्यात्मिक अनुभव को समझ सके। फिर भी वह अध्ययन से केवल अपेक्षाकृत अधिक विद्वान हो सकता है लेकिन साधना (अभ्यास) जैसा कि उसने अध्ययन किया है, उसे सत्यता और स्पष्टता के अधिक समीप ला देती है। तथ्य सत्य होता है और स्पष्टता शुद्धता होती है। आज का युग वैज्ञानिक विकास का युग है तथा कोशों में नए शब्दों की भरमार है। लेखक के रूप में न होकर एक शुद्ध साधक के रूप में मुझे इस बात की कठिनाई है कि मैं जो कुछ भी लिखना चाहता हूँ, उस सबकी अभिव्यक्ति के लिए शुद्ध तकनीकी पारिभाषिक शब्दों का चयन कर सकूं। कलाओं में सर्वोत्तम योग के अपने अभ्यास के अनुभव के फलस्वरूप अपने पाठकों के लिए मैं अपर्याप्त प्रयत्न ही कर सकता हूं।

प्राणायाम एक विराट विषय है जिसकी असीम संभावनाएं हैं। यह मनः-शारीरिक है क्योंकि इसमें शरीर और मस्तिष्क दोनों ही के मध्य आंतरिक संबंध की खोज की जाती है। यह चाहे कितना ही सादा और सरल प्रतीत होता हो लेकिन जिस

क्षण कोई व्यक्ति इसके अभ्यास के लिए आसन लगाता है, उसे तत्काल ही आभास हो जाता है कि यह एक कठिन कला है। इसकी सूक्ष्मताओं का बहुत कम ज्ञान है और अभी इस संबंध में बहुत कुछ खोज भी बाकी है। अतीत में योग विषय पर लिखने वाले लेखकों ने प्राणायाम के प्रभावों के संबंध में बहुत कुछ लिखा है और उन्होंने प्राणायाम के व्यावहारिक स्वरूप की बहुत कम चर्चा की है। इसका यह कारण हो सकता है कि उस समय प्राणायाम का व्यापक रूप से अभ्यास किया जाता था और अधिकांश व्यक्ति प्राणायाम से परिचित थे। उन्होंने प्राणायाम के प्रभावों के संबंध में जो व्याख्याएं की हैं उनसे उनके अनुभवों के बारे में कुछ जानकारी मिलती है जबकि वे अनुभव उनके शाब्दिक वर्णन के परे हैं।

प्राणायाम की कई क्रियाएं अनंत रूप से सूक्ष्म होती हैं। उदाहरणार्थ, विपरीत दिशाओं में त्वचा का स्वतः और सूक्ष्म वेग यथार्थतः असंभव लगता है लेकिन यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका योग द्वारा विकास कर लिया जाता है। प्रशिक्षण से त्वचा को इस प्रकार संचलित किया जा सकता है और ऐसा करने से इसकी बहुत बड़ी भूमिका प्राणायाम के अभ्यासों में अदा होती है। इस प्रकार प्राणायाम कई मामलों में वैयक्तिक कला है जब इस चातुर्य को अधिकतम प्रभाव के लिए उपयोग में लाया जाता है जहाँ त्वचा की गतियाँ पूरक क्रिया (श्वास लेने), रेचक क्रिया उच्छ्वसन—श्वास निकालने) और कुंभक क्रिया (श्वास रोकने) को तुल्यकालक बनाती हैं और उस समय प्राण ऊर्जा का प्रभाव शांतिमय होता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने वैद्युत यंत्रों द्वारा योगियों की अंतःप्रज्ञा की प्रभावोत्पादकता का परीक्षण किया है। प्राणायाम के प्रभाव निश्चित हैं और वे काल्पनिक नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब वस्तुगत ज्ञान (विज्ञान अथवा प्रयोग) और वैयक्तिक ज्ञान (कला अथवा सहभागिता) के ध्रुव प्राणायाम के अध्ययन और उसके लाभों के समेकन में अपनी भूमिका अदा करेंगे।

प्रौद्योगिकी के विकास के कारण आधुनिक जीवन इतना प्रतियोगितापूर्ण हो गया है कि उसका कोई अंत नहीं है जिसका परिणाम यह हुआ कि पुरुषों और महिलाओं दोनों पर ही तनाव बढ़ गया है। एक संतुलित जीवन बनाये रखना कठिन हो गया है। स्नायविक और रक्त-संचालन प्रणालियों को प्रभावित करने वाली चिंताएं और रोग द्विगुणित हो गए हैं। निराश होकर लोग मनोविकृति संबंधी संवेदन मंदक, धूमपान और मादक द्रव्यपान अथवा अंधाधुंध विषयवासना के आदी हो गए हैं ताकि वे कुछ राहत पा सकें। इन क्रियाओं से व्यक्ति कुछ समय के लिए विस्मृत हो जाता है लेकिन कारणों का निदान नहीं हो पाता और रोग लौट आते हैं।

केवल प्राणायाम ही इन समस्याओं के लिए वास्तविक समाधान है। प्राणायाम को तर्क और वाद-विवाद से नहीं सीखा जा सकता परंतु इसको सीखने के लिए धैर्य और सावधानीपूर्ण प्रयास ही सहायक होता है। प्राणायाम से प्रारंभ में साधारण रोग यथा, जुकाम, सिरदर्द और मानसिक असंतुलन से राहत होती है। इसके पाद-

बिंदु में जीवन का अमृत है ।

इस पुस्तक के दो भाग हैं । प्रथम भाग में प्राणायाम के सिद्धांत, कला और तकनीकों का विवेचन है । दूसरे भाग का नाम 'स्वतंत्रता और परमानंद' है जिसका संबंध आत्मजय (आत्मा की विजय) से है। इसमें ध्यान (मनन) और शवासन (विश्रांति) की चर्चा की गई है ।

पहले भाग में मैंने योग के विभिन्न पक्षों के साथ प्राणायाम का समन्वय किया है । प्राणायाम मनुष्य के शरीर और आत्मा को जोड़ने वाली कड़ी है और योग के चक्र की धुरी है ।

मैंने गुप्त तकनीकों की व्याख्या का प्रयास किया है ताकि बिना किसी संदेह और उलझन के पाठक अधिकतम लाभ उठा सकें । मैंने प्राणायाम के महत्वपूर्ण रूपों की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण करने वाली तालिकाओं को भी सम्मिलित किया है । यह तालिकाएं सुलभ संदर्भ के लिए प्रक्रिया के बारे में सविस्तर सूचना प्रदान करती हैं । इन तालिकाओं से पाठक इस पुनीत कला और विज्ञान के असंख्य संभव क्रम-परिवर्तनों और संयोजनों का विचार भी कर सकता है । यहां तक कि दीक्षा-रहित साधक भी कुप्रभावों की आशंका के बिना स्वतंत्र रूप से अभ्यास कर सकते हैं । इन तालिकाओं में जो सूचना दी गई है, वह साधकों को सचेत और साहसी बना देगी ।

परिशिष्ट एक में मैंने पांच विषय सम्मिलित किए हैं और उन्हें एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था के हिसाब से इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि साधक स्वयं अपनी क्षमता के अनुसार उनका अनुसरण कर सकता है । इन विषयों में से प्रत्येक विषय के लिए कुछ अतिरिक्त सप्ताहों का समय दिया जा सकता है, यदि निर्धारित समय में मानदंड के अनुसार विषय पूरा न हो सके । यद्यपि प्राणायाम आवश्यक रूप से गुरु के चरणों में बैठकर ही सीखा जा सकता है फिर भी मैंने अति विनम्र होकर पाठक का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया है । यह मार्गदर्शन गुरु और शिष्य दोनों ही बनकर किया गया है ताकि इस कला में पारंगत होने के लिए सुरक्षित तरीका अपनाया जाए ।

यदि मेरी यह पुस्तक लोगों को उनकी शारीरिक शांति, मानसिक संतुलन और आत्मिक आनंद उपलब्ध कराने में सहायक सिद्ध हो तो मुझे प्रसन्नता होगी। प्राणायाम एक विराट विषय है । इस क्षेत्र में मेरे ज्ञान की सीमाएं हैं अत: मैं इस बात का स्वागत करूंगा कि आगामी संस्करणों में सामग्री सम्मिलित करने के लिए मुझे सुझाव मिलते रहें ।

योगचूड़ामणि उपनिषद में कहा गया है कि प्राणायाम एक महाविद्या (उदात्त ज्ञान) है । यह समृद्धि, स्वतंत्रता और वरदान का राजमार्ग है ।

इस पुस्तक के प्रथम भाग का पहले अध्ययन किया जाए, फिर दोबारा से अध्ययन किया जाए और इसे आत्मसात् किया जाए । इसके बाद अभ्यास प्रारंभ किया जाए ।

मैं अपने गुरुजी श्री टी० कृष्णामाचार्य के प्रति ऋणी हूं जिन्होंने इस पुस्तक के लिए प्रशस्ति लिखी है । मैं श्री येहुदी मेनुहिन के प्रति भी सद्भावनापूर्ण आभार प्रकट करता

हूँ जिन्होंने प्रस्तावना लेख लिखा और श्री आर० आर० दिवाकर के प्रति भी उनके प्राक्कथन और उनकी सहायता के लिए हृदय से आभारी हूं। मैं अपने बच्चों गीता और प्रशांत तथा अपने शिष्यों बी. आई. तारापोरीवाला, एम. टी. तिज़ोरीवाला, एस. एन. मोतीवाला और डा. वी. केरूथर्स, एम.डी., सी.एम., एफ. आर. सी. पी. के प्रति ऋणी हूं जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में अपना बहुमूल्य समय दिया है। इस पुस्तक के संपादन और पुनः संपादन की बार-बार आवृत्ति में उनके धैर्य से यह अंतिम रूप तैयार हुआ है। मैं कुमारी श्रीमती राव के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि को अनेक बार टाइप किया है। मैं श्री पी. आर. शिंदे को भी धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने इस पुस्तक के लिए अनेक फोटो खींचे हैं। मैं कुमारी राबिन ओंग के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने शरीर विज्ञान संबंधी आरेखन तैयार किए हैं।

मैं श्री जैरोल्ड यार्क के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं कि उन्होंने रचनात्मक सुझाव देकर मुझे प्रोत्साहित किया। यदि उनका लगातार मार्गदर्शन न मिल पाता तो यह पुस्तक प्रकाश में न आ पाती। मैं उनका सतत ऋणी रहूंगा क्योंकि उन्होंने अधिक सावधानी से मेरी संपूर्ण पांडुलिपि का संपादन किया है।

मैं जार्ज एलिन एंड अन्विन लिमिटेड का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरी पुस्तक का प्रकाशन किया है और इसे विश्व भर में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है।

बी० के० एस० आयंगार

विषय-सूची

भाग एक

खंड 1

प्राणायाम के सिद्धांत

1

योग क्या है ?

1. कोई भी मनुष्य कालातीत, आदियुगीन पूर्ण ब्रह्म को नहीं जानता और न ही यह जानता है कि विश्व का उदय कब हुआ। परमात्मा और प्रकृति मनुष्य के अवतरित होने से पूर्व ही विद्यमान थे परंतु जैसे ही मनुष्य ने विकास किया, उसने अपना अस्तित्व स्थापित किया और अपनी क्षमता को महसूस करना शुरू कर दिया। इस प्रकार सभ्यता का विकास हुआ। इसी प्रक्रिया में शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ और पुरुष (परमात्मा) तथा प्रकृति, धर्म और योग जैसी संकल्पनाओं का विकास हुआ।

2. इन संकल्पनाओं की परिभाषा करना बहुत कठिन है। अतः प्रत्येक मनुष्य ने अपनी समझ के अनुसार इनकी व्याख्या की है। जब मनुष्य सांसारिक भोग-विलास के जाल में जकड़ गया तो उसे महसूस हुआ कि वह परमात्मा और प्रकृति से अलग हो गया है। वह सुख-दुःख, शुभ-अशुभ, प्रेम-घृणा और अमरता-नश्वरता के मायाजाल में ही उलझकर रह गया।

3. इन विरोधी बातों में उलझ जाने पर मनुष्य ने वैयक्तिक शुचिता (पुरुष) की आवश्यकता महसूस की जो सर्वोच्च, दुःखों से अप्रभावित, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से अछूता तथा सुख-दुःख के अनुभव से मुक्त था।

4. इस स्थिति ने मनुष्य को इस बात की ओर उन्मुख कर दिया कि वह पूर्ण पुरुष अथवा परमात्मा में निहित उच्चतम आदर्श की खोज करे। इसप्रकार ऐसी एक शाश्वत सत्ता के प्रति उसका ध्यान, चिंतन और मनन केंद्रित हो गया जिसे उसने ईश्वर, स्वामी, गुरुओं का गुरू की संज्ञा दी। परमात्मा तक पहुंचने की सैद्धांतिक खोज के लिए मनुष्य ने एक आचार-संहिता तैयार की जिसके द्वारा वह अपने संगी-साथियों के साथ प्रकृति के सान्निध्य में सुख-शांतिमय जीवन व्यतीत कर सके।

5. उसने भलाई-बुराई, गुण-अवगुण तथा नैतिकता-अनैतिकता के मध्य भेद करना सीख लिया। उसके बाद सत्कार्य (धर्म) अथवा कर्त्तव्य-बोध जैसी व्यापक संकल्पना का उदय हुआ। डा० एस० राधाकृष्णन ने लिखा है "धर्म ही है जो मनुष्य को संभालता है, उठाता है, सहायता करता है", और उसका मार्गदर्शन करता है

ताकि वह वंश, जाति, वर्ग अथवा धर्म की चिंता किए विना ही उच्चतर जीवन व्यतीत कर सके।

6. मनुष्य ने अनुभव किया कि उसे धर्म का अनुसरण करने और अपने भीतर देवत्व की अनुभूति के लिए अपने शरीर को स्वस्थ, सशक्त और स्वच्छ रखना चाहिए। भारतीय ऋषियों ने ज्ञान की खोज करते हुए वेदों के सार को उपनिषदों और दर्शनों (आध्यात्मिक वोध के दर्पण) में अभिव्यक्त किया है। वे दर्शन अथवा विचारपद्धतियां इस प्रकार हैं: सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

7. सांख्य का कहना है कि समस्त जीव-जगत् पच्चीस अनिवार्य तत्वों से उत्पन्न होता है लेकिन वह ईश्वर को नहीं मानता। योग में सृष्टिकर्ता ईश्वर को मान्यता दी गई है। न्याय में तर्क पर विशेष वल दिया गया है और मुख्यतया इसका संवंध विचार के नियमों से है जो तर्क और साम्यानुमान पर निर्भर होता है। इसमें निष्कर्षतः ईश्वर को मान्यता दी गई है। वैशेषिक में स्थान, समय, कारण और पदार्थ जैसे विचारों पर बल दिया गया है तथा यह दर्शन न्याय का पूरक है। इसमें भी न्याय-विचार के अनुसार ईश्वर का समर्थन किया गया है। मीमांसा वेदों पर आधारित है और इसकी दो विचारधाराएं हैं—पहली, पूर्वमीमांसा जो दैविकी सामान्य संकल्पना का विवेचन करती है लेकिन कर्म और कर्मकांड के महत्व पर बल देती है; और दूसरी, उत्तर मीमांसा जो वेदों के आधार पर ईश्वर को स्वीकार करती है लेकिन इसमें आध्यात्मिक ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है।

8. योग जीवात्मा (वैयक्तिक आत्मा) और परमात्मा (सार्वभौमिक आत्मा) का मिलन है। सांख्य दर्शन सैद्धांतिक है जवकि योग व्यावहारिक है। सांख्य और योग दोनों मिलकर विचार और जीवन की प्रणाली को क्रांतिकारी अभिव्यक्ति देते हैं। कर्मरहित ज्ञान और ज्ञानरहित कर्म दोनों से मानव को कोई मदद नहीं मिलती। इन दोनों के अंतर्मिलन से ही सांख्य और योग दोनों परस्पर मेल खाते हैं।

9. योग के ग्रंथ—**याज्ञवलक्यस्मृति** के अनुसार हिरण्यगर्भ के रूप में ब्रह्म ही, शरीर की स्वस्थता, मन के नियंत्रण और शांति की प्राप्ति के लिए योग-प्रणाली के मूल प्रतिपादक थे। इस प्रणाली को सर्वप्रथम पतंजलि ने अपने योगसूत्र अथवा सूक्तियों में संग्रहीत किया और लिखा। ये तर्कमूलक होने की अपेक्षा निदेशात्मक हैं जिसमें साधन और लक्ष्य का रहस्योद्घाटन किया गया है। जव योग की सभी आठ विद्याओं को समेकित करके उनका अभ्यास किया जाता है तो योगी ईश्वर के साथ तदाकार होने का अनुभव करता है और अपने शरीर, मन और आत्मा के अभिज्ञान को त्याग देता है। यह संयम का योग है।

10. **योगसूत्र** में 195 सूक्तियां सम्मिलित की गई हैं जिन्हें चार अध्यायों में बांटा गया है। पहले अध्याय में योग के सिद्धांत का वर्णन है। यह उनके लिए है जिन्होंने पहले ही मन को संतुलित कर लिया है। इसमें यह बताया गया है कि वे इस संतुलन को बनाए रखने के लिए क्या करें। दूसरे अध्याय में योग की कला का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि नौसिखिया साधक को किस प्रकार अभ्यास करना

चाहिए। तीसरे अध्याय का संबंध आंतरिक अनुशासन और सिद्धियों से है जिन्हें वह प्राप्त करता है। चौथे और अंतिम अध्याय में सांसारिक बाधाओं से मुक्त अथवा स्वतंत्र होने की चर्चा की गई है।

11. 'योग' शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है—बांधना, जोड़ना, मिलाना, और युक्त करना तथा ध्यान को नियंत्रित और केंद्रित करना है ताकि उसका उपयोग ध्यान के लिए किया जा सके। अतः योग एक ऐसी कला है जो अव्यवस्थित और बिखरे मन को चिंतनशील और एकाग्र स्थिति में ला देती है। योग जीवात्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कराता है।

12. मनुष्य को प्रकृति के दाय में तीन लक्षण या गुण मिले हैं, अर्थात्, सत्व, रज और तम। इसलिए कालचक्र (काल=समय, चक्र=पहिया), जो कुम्हार के चक्र (कुलालचक्र) पर वर्तन के समान है, पर घूमता हुआ मनुष्य इन्हीं तीन सैद्धांतिक परस्पर मिश्रित लक्षणों के न्यूनाधिक प्रभाव से बार-बार अपना स्वरूप बदलता रहता है।

13. मनुष्य को मन, बुद्धि और अहंकार विरासत में मिले हैं। इन तीनों के मिले-जुले स्वरूप को चित्त कहा जाता है और यही चित्त विचार, समझ और कार्य का स्रोत है। जैसे ही जीवन का चक्र चलता है, चित्त को पांच दुःखों अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश का अनुभव होता है। इसके फलस्वरूप चित्त अलग-अलग पांच अवस्थाओं में वंट जाता है। ये पांच अवस्थाएं हैं: मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त उस अग्नि के समान है जो वासनाओं से प्रज्ज्वलित होती रहती है और यदि ये वासनाएं न रहें तो चित्त का अवसान हो जाता है। चित्त वह शुद्ध अवस्था है जो प्रबुद्ध होने के लिए स्रोत बन जाती है।

14. पतंजलि ने बोध-मार्ग की आठ अवस्थाएं बताई हैं जिनका उल्लेख अगले अध्याय में किया जाएगा। मूढ़ अवस्था में चित्त यम, नियम और आसन के द्वारा शुद्ध किया जाता है और इनके द्वारा मन को कार्य में अग्रसर किया जाता है। आसन और प्राणायाम चंचल मन को स्थिरता की दशा में लाते हैं। प्राणायाम और प्रत्याहार की विद्याएं चित्त को एकाग्र करती हैं और उसकी ऊर्जा को केंद्रित करती हैं। तत्पश्चात् चित्त ध्यान और समाधि द्वारा इस अवस्था में नियंत्रित हो जाता है। जैसे-जैसे चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, योग की उच्चतर अवस्थाएं प्रवल हो जाती हैं लेकिन इससे पूर्व की ऐसी अवस्थाओं की न तो अवहेलना की जानी चाहिए और न उनके प्रति लापरवाही वरतनी चाहिए जो इनका आधार होती हैं।

15. अज्ञात 'आत्मा' की खोज से पूर्व साधक को अपने परिचित शरीर, मन, बुद्धि और अहं के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। जब वह 'ज्ञात' को उसकी पूर्णता में जान लेता है तो यह सभी 'अज्ञात' में इस प्रकार समाहित हो जाता है जैसे नदियां समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। उस समय उसे सर्वोच्च आनंद की अनुभूति होती है।

16. सर्वप्रथम, योग में स्वास्थ्य, शक्ति और शरीर के नियंत्रण पर ध्यान दिया जाता है। इसके बाद, वह शरीर और मन के बीच अंतर के परदे को उठाता है। अंत

में, वह साधक को शांति और विशुद्ध पवित्रता की ओर ले जाता है।

17. योग के अभ्यास से मनुष्य अपने भीतर के देवत्व को विधिवत् रूप से, पूर्णता और दक्षता से खोज लेता है। वह बाह्य शरीर और आत्मा का अंतर समझ लेता है। वह शरीर से नाड़ियों की ओर बढ़ता है और नाड़ियों से इंद्रियों की ओर। फिर इंद्रियों से उस मन में प्रवेश करता है जो संवेगों पर नियंत्रण करता है। वह मन से उस बुद्धि में प्रवेश करता है जो तर्क का मार्गदर्शन करती है। बुद्धि से उसका मार्ग इच्छा की ओर उन्मुख हो जाता है और इसके बाद वह चित्त की ओर बढ़ जाता है। अंतिम अवस्था में वह चित्त से आत्मा की ओर अग्रसर होता है जो उसका अपना आत्मा (अस्तित्व) है।

18. इस प्रकार, योग साधक को अज्ञान से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले जाता है।

2

योग की अवस्थाएं

1. योग की आठ अवस्थाएं हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये सभी समेकित रूप में होती हैं लेकिन सुविधा हेतु प्रत्येक का विवेचन स्वतंत्र रूप में किया गया है।

2. एक वृक्ष में जड़ें, तना, शाखाएं, पत्तियां, छाल, रस, फूल और फल होते हैं। इनमें से प्रत्येक अंग का अपना महत्व है लेकिन प्रत्येक अंग अपने आप ही वृक्ष नहीं हो सकता। यही स्थिति योग की है। यदि सभी अंगों को मिला दिया जाए तो वृक्ष बन जाता है, ठीक इसी प्रकार इन आठों अवस्थाओं की सम्मिलित स्थिति ही योग होती है। **यम** के व्यापक नियम जड़ों के समान हैं और **नियम** की अलग-अलग विद्याएं तना रूप हैं। **आसन** विभिन्न दिशाओं की ओर फैलने वाली शाखाओं के समान हैं। **प्राणायाम** ऊर्जा से शरीर को वायु देता है। वह उन पत्तियों के समान है जो संपूर्ण वृक्ष को वायु देती हैं। **प्रत्याहार** ज्ञान की ऊर्जा को बाहर निकलने से रोकता है जैसे कि छाल वृक्ष को क्षय होने से बचाती है। **धारणा** वृक्ष के रस के समान है जो शरीर और बुद्धि को दृढ़ रखती है। **ध्यान** उस फूल के समान है जो पककर **समाधि** रूपी फल का स्वरूप धारण कर लेता है। जैसे फल वृक्ष का सर्वोत्तम विकास माना जाता है, ठीक उसी प्रकार आत्मदर्शन की अनुभूति योगाभ्यास की चरम सीमा समझी जाती है।

3. योग की आठ अवस्थाओं द्वारा साधक अपनी आत्मा के लिए ही ज्ञान का विकास करता है। वह अपने ज्ञात शरीर से धीरे-धीरे अज्ञात की ओर बढ़ता है। वह शरीर के बाह्य आवरण, यथा त्वचा, से मन की ओर बढ़ता है। वह मन से बुद्धि, संकल्प, विवेक-ख्याति अथवा प्रज्ञा, सद्-असद्-विवेक और अंत में आत्मा की ओर अग्रसर होता है।

यम

4. यम व्यापक नैतिक अनुदेशों का समेकित नाम है। ये अनुदेश शाश्वत हैं चाहे कोई भी वर्ग, समय अथवा स्थान ही क्यों न हो। ये महान् महाव्रत अहिंसा, सत्य,

अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। **अहिंसा** किसी भी प्रकार के आघात से हटने की क्रिया है चाहे यह आघात शारीरिक, मानसिक, वैचारिक अथवा कार्मिक ही क्यों न हो। जब द्वेष और बैरभाव त्याग दिए जाते हैं तब सर्वत्र प्रेम रह जाता है। योगी अपने लिए नितांत सत्यवादी और ईमानदार होता है और वह जो कुछ भी सोचता है अथवा बोलता है वह सत्य ही निकलता है। वह अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखता है तथा अपनी आवश्यकताओं को कम करता है। अतः वह बिना चोरी किए हुए ही धनी हो जाता है और उसको मांगे बिना ही वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं। ब्रह्मचर्य सेक्स (काम भावना) संबंधी सभी मामलों में आदेश देता है भले ही वह काल्पनिक हो या वास्तविक। इस अनुशासन से पुरुषत्व और क्षमता बढ़ती है। तथा कामवासना के जागृत हुए बिना ही देवत्व प्राप्त हो जाता है। व्यक्ति को उन सभी वस्तुओं की इच्छा नहीं रखनी चाहिए जो जीवन-यापन के लिए आवश्यक न हों क्योंकि इच्छित वस्तु के उपलब्ध न होने पर लोभ पैदा होता है जो दुःख की ओर ले जाता है। जब इच्छाएं बढ़ती जाती हैं तो शुद्ध आचरण नष्ट हो जाता है।

नियम

5. नियम आत्म-शुद्धि के नियम माने जाते हैं अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वास्थ्य और ईश्वर प्रणिधान (हमारे सभी कार्यों के स्वामी अर्थात् परमात्मा के प्रति समर्पण)। योगी यह जानता है कि उसका शरीर और इंद्रियां इच्छाओं की ओर अधिक संवेदनशील होती हैं जो मन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, अतः वह इन नियमों का पालन करता है। **शुचिता** दो प्रकार की होती है : आंतरिक और बाह्य तथा इन दोनों प्रकार की शुचिताओं का संवर्धन करना चाहिए। बाह्य शुचिता से अभिप्राय व्यवहार और आदतों की शुद्धता तथा व्यक्ति और उसके परिवेश की स्वच्छता से है। आंतरिक शुचिता से तात्पर्य छः बुराइयों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को जड़ से उखाड़ फेंकना है। इसका उन्मूलन तभी हो सकता है जब मन को उन अच्छे रचनात्मक विचारों से बांधे रखा जाए जो देवत्व की ओर ले जाते हैं। **संतोष** से इच्छाएं घट जाती हैं। व्यक्ति प्रसन्न रहता है और इससे मन का संतुलन हो जाता है। **तप** से साधक अनुशासित हो जाता है तथा वह कठिनाई और विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए सहनशील हो जाता है। इस प्रकार वह मन को आत्मा की ओर ले जाता है। यहां अध्ययन का तात्पर्य स्वाध्याय से है। व्यक्ति स्वाध्याय करे जो सत्यता तथा आत्मज्ञान की खोज में निहित रहे। अंत में हमारे सभी कार्य ईश्वर को समर्पित होने चाहिएं और उसकी इच्छा के अनुसार होने चाहिएं। इस प्रकार **नियम** वे गुण हैं जो विक्षिप्त मन को शांत कर देते हैं और साधक को बाह्य तथा आंतरिक जीवन में शांति प्रदान करते हैं।

आसन

6. आसनों के संबंध में उल्लेख करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि पुरुष और प्रकृति क्या है। पुरुष (शाब्दिक अर्थ में 'व्यक्ति') व्यापक रूप से आध्यात्मिक सिद्धांत

है जो स्वयं कार्य संपन्न करने में असमर्थ है परंतु प्रकृति अथवा सृजक को सजीव और सशक्त करता है। यह व्यापक भौतिक सिद्धांत है जो अपने तीन गुणों और उद्भव-जन्य गुणों द्वारा बुद्धि और मन को विकसित करता है।

पुरुष और प्रकृति दोनों ही मिलकर भौतिक जगत को क्रियाशील बनाते हैं। दोनों ही असीम हैं, अनादि एवं अनंत हैं। प्रकृति के कुल पांच तत्व होते हैं जो पंचमहाभूत कहलाते हैं यथा, पृथ्वी, अप (जल), तेज, वायु और आकाश। उनकी पांच तन्मात्राएं हैं: गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द। ये स्थूल तत्व और उनकी तन्मात्राएं तीन गुणों और प्रकृति के उद्भवजन्य गुणों अर्थात् सत्व, रज और तम में मिल जाती हैं और महत् अर्थात् बुद्धि की सृष्टि करते हैं। अहंकार, बुद्धि और मन मिलकर चित्त बनाते हैं जो महत् का वैयक्तिक स्वरूप है। महत् प्रकृति अथवा उत्पादक नियम का अप्रकट प्रमुख बीज है जहाँ से भौतिक जगत की सभी क्रियाओं का विकास होता है। पांच ज्ञानेंद्रियां यथा—कान, नाक, जीभ, नेत्र और त्वचा तथा पांच कर्मेंद्रियां यथा—पैर, भुजाएं, वाणी, मलवाहिनी और जनन अवयव होती हैं। प्रकृति, पंचमहाभूत, उनकी पांच तन्मात्राएं, अहं, बुद्धि और मन, पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां और पुरुष मिलकर सांख्य दर्शन के पच्चीस आधारभूत तत्व का रूप लेते हैं। जिस प्रकार कुम्हार के बिना घड़ा तैयार नहीं हो सकता, ठीक इसी प्रकार राज के बिना घर नहीं बन सकता। पुरुष के बिना सृजन नहीं हो सकता, पुरुष ही आदि शक्ति है और यह सृजन तभी होता है जब पुरुष तत्वों के संपर्क में आता है। सभी जीवित जगत का अस्तित्व पुरुष और प्रकृति से ही है।

7. जीवन, शरीर, ज्ञानेंद्रियों, कर्मेंद्रियों, मन, बुद्धि, अहं तथा आत्मा का सम्मिश्रण है। मन शरीर और आत्मा के मध्य सेतु का कार्य करता है। मन को देखा नहीं जा सकता और वह स्पर्श से परे है। आत्मा मन, जो दर्पण के समान है, के द्वारा अपनी महत्वाकांक्षाओं और शरीर, जो सुख उपलब्धि के लिए एक साधन है, के द्वारा सुखों की पूर्ति करता है।

8. आयुर्वेद के अनुसार शरीर सात धातुओं और तीन दोषों से मिलकर बना है। सात धातुएं इसीलिए कही जाती हैं कि वे शरीर को बनाए रखती हैं। ये धातुएं हैं: रस, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा और शुक्र। ये तत्व शरीर को संक्रमण और रोगों से मुक्त रखते हैं।

9. भोजन पर आमाशायी रसों की क्रिया से क्षारान्न तैयार होता है। रक्त से मांस बनता है और इससे पूरे शरीर को ताजगी मिलती है। मांस से हड्डियों की रक्षा होती है और इससे चर्बी उत्पन्न होती है। चर्बी से शरीर को चिकनाई मिलती है और इससे शरीर दृढ़ हो जाता है। हड्डियां शरीर को संभालती हैं और मज्जा पैदा करती हैं। मज्जा बल देती है और वीर्य पैदा करती है। वीर्य न केवल प्रजनन ही करता है अपितु प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, यह अपने सूक्ष्म रूप में समस्त सूक्ष्म शरीर में किसी आवश्यक ऊर्जा के रूप में प्रवाहित रहता है।

10. यदि वात, पित्त और कफ (श्लेष्मा) जैसे तीनों दोष समुचित रूप से संतुलित हो जाएं तो पूर्ण स्वास्थ्य मिल सकता है। इनमें असंतुलन होने पर रोग उत्पन्न हो

जाते हैं। सूक्ष्म अथवा सशक्त ऊर्जा वायु कहलाती है जो श्वसन, संचलन, कार्य, मल-उत्सर्जन और प्रजनन के लिए आवश्यक है। यह शरीर और मानव-क्षमताओं के विभिन्न भागों के कार्यों का समन्वय करती है। पित्त से भूख और प्यास बढ़ती है। यह भोजन को पचाता है और शरीर का तापमान स्थिर रखते हुए उसे रक्त में परिवर्तित करता है। कफ जोड़ों और मांसपेशियों में चिकनाई पैदा करता है तथा घावों को ठीक करने में सहायता प्रदान करता है। मल व्यर्थ का पदार्थ है जो ठोस, द्रव्य अथवा गैसीय स्थिति में पाया जाता है। यदि मल का उत्सर्जन न किया जाए तो रोग शरीर में घर कर लेते हैं और दोषों के संतुलन को विगाड़ देते हैं।

कोष

11. वेदांत दर्शन के अनुसार शरीर के तीन रूप या प्रकार हैं जो आत्मा को घेरे रहते हैं। इन तीनों रूपों के पांच अंतर्भेदी और अंतःआश्रित कोष होते हैं।

शरीर के तीन प्रकार इस प्रकार हैं: (क) **स्थूल शरीर**, मोटा आकार अथवा शारीरिक कोष, (ख) **सूक्ष्म शरीर**, सूक्ष्म स्वरूप जिसमें प्राणमय मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक कोष होते हैं और (ग) **कारण शरीर**, तथाकथित कारणात्मक स्वरूप—आध्यात्मिक कोष।

स्थूल शरीर अन्नमय कोष है।

प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोष **सूक्ष्म शरीर** का निर्माण करते हैं।

प्राणमय कोष में श्वसन, संचरण, पाचनक्रिया, तंत्रकीय, अंतःस्रावी, मलोत्सर्जन और जनन प्रणालियाँ समाहित हैं। मनोमय कोष चेतना, भावना और अभिप्रेरणा की क्रियाओं को प्रभावित करता है जो वैयक्तिक अनुभव से नहीं की जा सकतीं। विज्ञानमय कोष वैयक्तिक अनुभव से लिए गए तर्क और न्याय करने की बौद्धिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

कारण शरीर आनंदमय कोष है। इसकी चेतना का अनुभव साधक द्वारा उसी समय किया जाता है जब वह स्फूर्तिदायक गहरी नींद से जागता है और जव वह पूर्णतया ध्यान में अपने किसा विषय पर लीन हो जाता है।

त्वचा सभी कोषों और शरीर को ढके रहती है। यह दृढ़ और न्यूनतम संचलन के प्रति भी संवेदनशील होनी चाहिए। सभी कोष त्वचा से लेकर आत्मा तक अपने विभिन्न स्तरों पर आंतरिक रूप से परस्पर गुंथे रहते हैं।

जीवन के उद्देश्य (पुरुषार्थ)

12. मनुष्य के जीवन में चार उद्देश्य होते हैं: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। **धर्म** कर्त्तव्य है। धर्म के बिना और नैतिक अनुशासन से विहीन व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करना असंभव है।

अर्थ जीवन में स्वतंत्र और उच्चतर कार्यों के लिए संपत्ति का अर्जन करना है। अर्थ से स्थायी आनन्द नहीं मिल सकता, फिर भी, यदि शरीर का समुचित रूप से पोषण न हो तो उस शरीर में चिंताएं और रोग घर कर लेते हैं।

काम का अभिप्राय जीवन के सुखों से है जो अधिकांश रूप से स्वस्थ शरीर पर निर्भर होते हैं। **कठोपनिषद्** में कहा गया है "दुर्बल प्राणी आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता।"

मोक्ष मुक्ति है। प्रबुद्ध मनुष्य जानता है कि शक्ति, सुख, संपत्ति और ज्ञान सब नष्ट हो जाते हैं और ये मुक्ति नहीं दिला सकते। वह अपनी सात्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियों से ऊपर उठने का प्रयास करता है और इस प्रकार गुणों के बंधन से मुक्त हो जाता है।

13. शरीर ब्रह्म का निलय है। शरीर जीवन के चारों लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सशक्त भूमिका अदा करता है। ऋषियों ने यह जान लिया था कि यद्यपि शरीर नष्ट हो जाता है फिर भी सिद्धि प्राप्त करने के लिए साधन का काम देता है अतः शरीर को सदा स्वस्थ रखना चाहिए।

14. आसन शरीर और मन की शुद्धि करते हैं और उनके निरोधात्मक और उपचारात्मक प्रभाव होते हैं। आसन असंख्य हैं। वे मांस-पेशियों, पाचन-क्रिया, रक्त-संचरण, ग्रंथियों, तंत्रिकीय और शरीर की अन्य प्रणालियों की अलग-अलग आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

वे शारीरिक से आध्यात्मिक तक सभी स्तरों पर परिवर्तन लाते हैं। स्वस्थ शरीर, मन और आत्मा का संतुलन बहुत नाजुक है। आसनों के अभ्यास से साधक के शरीर की अक्षमताएं और मानसिक विभ्रांतियां दूर हो जाती हैं तथा आत्मा के द्वार खुल जाते हैं।

आसन से स्वास्थ्य, सौंदर्य, शक्ति, दृढ़ता, स्फूर्ति, वाणी और अभिव्यक्ति की स्पष्टता, नाड़ियों की शांति और चित्त की प्रसन्नता पैदा होती है। आसनों के अभ्यास की आम के वृक्ष के विकास से तुलना की जा सकती है। यदि वृक्ष का विकास समुचित और स्वस्थ रूप से हुआ है तो इसका सार उसके फल में भी पाया जाता है। इसी प्रकार आसनों के अभ्यास से उभरा हुआ सार भी साधक की आध्यात्मिक चेतना है। वह सभी प्रकार के द्वैतभाव से मुक्त हो जाता है।

15. यह आमतौर पर एक गलत धारणा है कि योग साधना के प्रारंभ से ही आसन और प्राणायाम दोनों का अभ्यास साथ-साथ करना चाहिए। लेखक का यह अनुभव है कि यदि कोई नौसिखिया साधक आसनों की सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह श्वसन पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकता। वह संतुलन खो बैठता है और आसनों की गहनता से वंचित हो जाता है। लयात्मक श्वसन तकनीकों के प्रारंभ करने से पूर्व आसनों में स्थिरता और अचलता प्राप्त करनी चाहिए। एक आसन से दूसरे आसन में शारीरिक गति-संचलन का परास बदलता रहता है। यदि यह परास अपेक्षाकृत कम है तो फुफ्फुसों में तदनुसार स्थान भी कम होगा और श्वसन-क्रिया भी अपेक्षाकृत कम समय की ही होगी। यदि आसनों में शारीरिक गति-संचलन का परास अपेक्षाकृत अधिक है तो फुफ्फुस की क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी और श्वसन-क्रिया भी अपेक्षाकृत अधिक गहन होगी। जब कभी प्राणायाम और आसन साथ-साथ किए जाते हैं तो यह देखना चाहिए कि शुद्ध आसन को किसी प्रकार की कोई बाधा न हो। जब तक

आसनों की सिद्धि न कर ली जाए तब तक प्राणायाम करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। साधक शीघ्र ही यह अनुभव कर लेता है कि जब आसन ठीक प्रकार से लगाए जाते हैं तब प्राणायामजन्य श्वसन-क्रिया स्वतः ही ठीक हो जाती है।

प्राणायाम

16. प्राणायाम पूरक क्रिया (अंतःश्वसन), कुंभक क्रिया (श्वास-धारण और रेचक क्रिया (वाह्य श्वसन अथवा उच्छवसन) जैसी क्रियाओं को स्वतः दीर्घकालिक बनाने का साधन है। पूरक क्रिया आदियुगीन ऊर्जा को श्वास के रूप में ग्रहण करने की क्रिया है और कुंभक क्रिया उस समय की जाती है जब ऊर्जा को बचाने के लिए श्वास रोका जाता है। रेचक क्रिया में सभी विचार और संवेग श्वास के साथ-साथ त्याग दिए जाते हैं। तत्पश्चात् जब फुफ्फुस खाली हो जाते हैं तो साधक वैयक्तिक ऊर्जा 'अहं' को आदियुगीन ऊर्जा अर्थात् आत्मा में समर्पित कर देता है।

प्राणायाम के अभ्यास से दृढ़ मन, बलदायक इच्छा-शक्ति और ठोस न्याय का विकास होता है।

प्रत्याहार

17. यह एक ऐसी विद्या है जो मन और ज्ञानेंद्रियों को नियंत्रित करती है। मन दोहरी भूमिका अदा करता है। एक ओर वह ज्ञानेंद्रियों को तुष्ट करता है तो दूसरी ओर वह आत्मा से मिलाता है। प्रत्याहार ज्ञानेंद्रियों को शांत करता है और उन्हें अंतर्मुखी बना देता है ताकि साधक दैवी शक्ति की ओर अग्रसर हो सके।

धारणा, ध्यान और समाधि

18. **धारणा** किसी एक ही बिंदु पर केंद्रित होती है अथवा उसका पूरा ध्यान इस बात पर रहता है कि साधक क्या कर रहा है। ऐसी स्थिति में मन अविचलित और उत्तेजनाविहीन रहता है। यह आंतरिक चेतना को उत्तेजित करके सतत प्रवाहित होने वाली बुद्धि को एकाग्रता प्रदान करती है। इसके फलस्वरूप सभी तनाव शांत हो जाते हैं। जब यह स्थिति अधिक समय तक बनी रहती है तो **ध्यान** में परिवर्तित हो जाती है। यह एक ऐसी अवर्णनीय स्थिति है जिसको केवल अनुभव किया जा सकता है या समझा जा सकता है।

19. जब ध्यान की अवस्था को बिना किसी अवरोध के अधिक समय तक कायम रखा जाए तो **समाधि** लग जाती है जिस स्थिति में साधक अपना वैयक्तिक अस्तित्व खो देता है।

20. समाधि में साधक अपने शरीर, श्वास, मन, बुद्धि और अहं की चेतना को खो देता है। यह अनंत शांति में जीवित रहता है। इस अवस्था में उसकी बुद्धि और शुद्धता, सादगी और नम्रता से मिलकर चमक उठती हैं। वह न केवल स्वयं ही प्रबुद्ध हो जाता है अपितु उन सभी में प्रकाश की ज्योति जगा देता है जो उसके पास सत्य की खोज में आते हैं।

21. यम, नियम, आसन और प्राणायाम कर्मयोग के आवश्यक अंग हैं। वे शरीर और मन को स्वस्थ रखते हैं ताकि उनसे वे सभी कार्य हो सकें जो ईश्वर को प्रसन्न करते हैं। प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा ज्ञानयोग के अंग हैं। ध्यान और समाधि की सहायता से साधक अपने शरीर, मन और बुद्धि को आत्मा के सागर में निमज्जित कर देता है। यह समर्पण और भक्ति का योग है।

22. ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिधाराएं योग की सरिता में प्रवाहित होती हैं और अपनी सत्ता को खो देती हैं। इस प्रकार केवल योग का पथ ही प्रत्येक साधक को मूढ़ गति से निरुद्ध गति में ला देता है और उसे स्वतंत्रता तथा परमानंद की ओर अग्रसर करता है।

3

प्राण और प्राणायाम

1. प्राण की व्याख्या करना उतना ही कठिन है जितना कि ईश्वर की व्याख्या करना। प्राण एक ऐसी ऊर्जा है जो सभी स्तरों पर ब्रह्मांड में व्याप्त है। यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लैंगिक, आध्यात्मिक और ब्रह्मांडीय ऊर्जा है। सभी कंपन करने वाली ऊर्जाएं प्राण होती हैं। सभी भौतिक ऊर्जाएं, यथा, ताप, प्रकाश, गुरुत्व, चुंबकत्व और विद्युत प्राण हैं। यह ऊर्जा सभी प्राणियों में गुप्त अथवा सशक्त रूप में होती है जो भय के समय अपनी पूरी क्षमता के साथ प्रकट हो जाती है। यह सभी क्रियाओं की मुख्य चालक है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो जन्म देती है, सुरक्षा करती है और नष्ट करती है। ओज, शक्ति, जीवन-क्षमता, जीवन और आत्मा—ये सभी प्राण के रूप हैं।

2. उपनिषदों के अनुसार प्राण जीवन का नियम और चेतना है। इसको आत्मा के समान माना जाता है। प्राण ब्रह्मांड के सभी जीवों में जीवन की श्वास है। वे इसी के द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा इसी के सहारे जीवित रहते हैं और जब वे मरते हैं तो उनकी वैयक्तिक श्वास ब्रह्मांडीय श्वास में मिल जाती है। प्राण जीवन-चक्र की धुरी है। इसमें प्रत्येक वस्तु स्थापित है। इसमें जीवनदायक सूर्य, बादल, वायु, पृथ्वी और सभी प्रकार के पदार्थ व्याप्त हैं। यह सत् और असत् है। यही सभी ज्ञान का स्रोत है। यह सांख्य दर्शन का पुरुष है। इसलिए योगी प्राण की शरण लेता है।

3. प्राण को प्रायः श्वास के रूप में माना जाता है फिर भी यह मानव-शरीर के अनेक आविर्भावों में से एक है। यदि श्वसन-क्रिया बंद हो जाती है तो जीवन समाप्त हो जाता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने यह जान लिया था कि शरीर के सभी कार्य पांच प्राणवायु द्वारा संपादित होते हैं। ये प्राण, (यह प्रजातिगत शब्द किसी अर्थ विशेष के लिए प्रयोग किया जाता है) अपान, समान, उदान और व्यान कहे जाते हैं। ये किसी एक सशक्त ब्रह्मांडीय शक्ति (वायु-शक्ति) के विशेष पक्ष हैं और सभी जीवों में जीवंतता के आदि नियम है। ईश्वर एक है किंतु विद्वान लोग उसे विभिन्न नामों से संबोधित करते हैं और यही स्थिति प्राण की है।

4. **प्राण** वायु वक्षीय क्षेत्र में गतिशील रहता है और श्वास-क्रिया पर नियंत्रण

रखता है। यह सशक्त वायुमंडलीय ऊर्जा को सोख लेता है। **अपान** निचले उदर-क्षेत्र में गतिशील रहता है और मूत्र, वीर्य, मल के निष्कासन को नियंत्रित करता है। **समान** उदर ज्वाला को प्रज्जवलित करता है, पाचन क्रिया में सहायता करता है और उदर के अवयवों को सुव्यवस्थित रूप से कार्य करने के लिए सुरक्षित रखता है। यह कुल मानव-शरीर को समेकित करता है। **उदान** गले (ग्रसनी और स्वरयंत्र) द्वारा काम करता हुआ स्वरतंत्री और वायु तथा भोजन के अंतर्ग्रहण को नियंत्रित करता है। **व्यान** समस्त शरीर में व्याप्त रहता है और भोजन तथा श्वास से प्राप्त ऊर्जा को धमनियों, शिराओं और नाड़ियों द्वारा संपूर्ण शरीर में बांटता है।

5. प्राणायाम में प्राणवायु अंतःश्वास से और अपान वायु बाह्य श्वास से क्रियाशील होती है। उदान निचली रीढ़ की हड्डी से ऊर्जा को उठाकर मस्तिष्क तक ले जाता है। व्यान वायु प्राण और अपान की क्रिया के लिए आवश्यक है क्योंकि यही एक से दूसरे तक ऊर्जा पहुंचाने का माध्यम है।

6. इसके पांच उपभाग भी होते हैं जो उपप्राण या उपवायु कहलाते हैं, यथा— नाग, कूर्म, क्रकर, देवदत्त और धनंजय। **नाग** डकार द्वारा पेट के भार को कम करता है। **कूर्म** पलकों की क्रियाओं को नियंत्रित करता है ताकि आंखों में कोई बाहरी पदार्थ न पड़ सके। यह पुतलियों के आकार को भी नियंत्रित करता है ताकि देखने के लिए प्रकाश के घनत्व को विनियमित किया जा सके। **क्रकर** छींकने या खांसने में सहायता करता है ताकि नथुनों और गले में से होकर कोई बाह्य पदार्थ भीतर न जा सके। **देवदत्त** से उबासी उत्पन्न होती है जिससे नींद आने लगती है। **धनंजय** कफ पैदा करता है, पोषण करता है तथा मृत्यु के बाद भी शरीर में बना रहता है और कभी-कभी शव को फुला देता है।

7. आयुर्वेद के अनुसार वात जो कि तीन दोषों में से एक है, प्राण का एक दूसरा नाम है। **चरकसंहिता** में वात के कार्यों का उसी प्रकार स्पष्ट वर्णन किया गया है जैसे योग की पुस्तकों में प्राण की व्याख्या की गई है। प्राण क्रिया की इंद्रियगम्य अभिव्यक्ति आंतरिक ऊर्जा द्वारा क्रियान्वित फुफ्फुसों के संचलन में महसूस की जाती है जिसके कारण श्वसन क्रिया होती है।

चित्त और प्राण

8. चित्त और प्राण में निरंतर संबंध बना रहता है। जहां कहीं चित्त होता है वहां प्राण केंद्रित होता है और जहां कहीं प्राण होता है वहां चित्त केंद्रित होता है। चित्त एक ऐसा वाहन है जिसे दो सशक्त बल, प्राण और वासना, चलाते हैं। चित्त अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली बल की दिशा में गतिशील रहता है। जिस प्रकार गेंद जमीन से टकराकर फिर उछलती है उसी प्रकार साधक भी प्राण और चित्त की गति के अनुसार उछलता है। यदि प्राण प्रबल होता है तो वासनाएं नियंत्रित हो जाती हैं, इंद्रियों पर नियंत्रण रहता है और मस्तिष्क स्थिर हो जाता है। यदि वासना प्रबल होती है तो श्वास अनियमित हो जाती है और मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है।

9. **हठयोग प्रदीपिका** के तीसरे अध्याय में स्वात्माराम ने कहा है कि जब तक

श्वास और प्राण निश्चेष्ट होते हैं, तब तक चित्त भी स्थिर रहता है और इस अवस्था में वीर्य (शुक्र) का निपात नहीं हो सकता। ऐसे समय में साधक की बढ़ी हुई ओजस्विता का उत्कृष्ट और उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उदात्तीकरण हो जाता है। ऐसे समय में वह ऊर्ध्व रेतस (ऊर्ध्व=ऊपर की ओर; रेतस =वीर्य) की अवस्था में आ जाता है यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें साधक अपनी लैंगिक ऊर्जा का उदात्तीकरण कर लेता है। और उसका चित्त शुद्ध चेतना में विलीन हो जाता है।

प्राणायाम

10. 'प्राण' का अर्थ श्वास, श्वसन, जीवन, ओजस्विता, ऊर्जा या शक्ति है। जब इसे बहुवचन में प्रयोग किया जाता है तो यह कतिपय सशक्त श्वास अथवा प्राणवायु का अर्थबोध कराता है। 'आयाम' का अर्थ फैलाव, विस्तार, प्रसार, लंबाई, चौड़ाई, विनियमन, बढ़ाना, अवरोध या नियंत्रण है। इस प्रकार 'प्राणायाम' का अर्थ श्वास का दीर्घीकरण और फिर उसका नियंत्रण है। **शिवसंहिता** में प्राणायाम को वायु साधना (वायु=श्वास ; साधना=अभ्यास, खोज) कहा गया है। पतंजलि ने अपने **योगसूत्र** (अध्याय 2, सूत्र 49-51) में प्राणायाम की व्याख्या इस प्रकार की है कि दृढ़ता से स्थापित किसी भी आसन में बैठकर श्वास लेने और निकालने की क्रिया पर नियंत्रण करना प्राणायाम कहलाता है।

11. प्राणायाम एक कला है और इसमें ऐसी तकनीकें सम्मिलित की गई हैं जो श्वसन-अवयवों को इच्छा, लय और सघनता से संचलित और प्रसारित करती हैं। इसमें पूरक क्रिया (श्वसन), रेचक क्रिया (उच्छवसन) और कुंभक क्रिया (श्वास धारण) का दीर्घ, नियंत्रित और सूक्ष्म प्रवाह शामिल है। पूरक श्वसन प्रणाली को उत्तेजित करता है। रेचक दूषित वायु और विषाक्त पदार्थ को बाहर फेंकता है और कुंभक ऊर्जा को सारे शरीर में वितरित करता है। इन संचलनों में फुफ्फुसों और पसलियों के पिंजर का दैर्घ्य (ऊर्ध्वाधर विस्तार), क्षैतिज आरोह और विशालता (परिवेशीय विस्तार) शामिल होते हैं। प्राणायाम की प्रक्रियाओं और तकनीकों की परवर्ती अध्यायों में व्याख्या की गई है।

इस प्रकार के अनुशासित श्वसन से मन केंद्रित हो जाता है और इससे साधक को अच्छा स्वास्थ्य और जीवंतता प्राप्त हो जाती है।

12. प्राणायाम शरीर और आत्मा दोनों के लिए स्वतः स्वाभाविक श्वसन-क्रिया नहीं है। अनुशासित तकनीकों द्वारा ऑक्सीजन को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करने से साधक के शरीर में सूक्ष्म रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। आसनों के अभ्यास से वे अवरोध हट जाते हैं जो प्राण के प्रवाह को रोक लेते हैं और प्राणायाम का अभ्यास संपूर्ण शरीर में प्राण के प्रवाह को विनियमित करता है। इससे साधक के सभी विचार, वासनाएं और कार्य नियमित हो जाते हैं और इससे उसे संतुलन एवं महान् इच्छा-शक्ति मिल जाती है जो कि स्वयं पर अधिकार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

4

प्राणायाम और श्वसन-प्रणाली

जब तक शरीर में श्वास है तब तक जीवन है। श्वास के निकल जाने पर जीवन का अंत हो जाता है। इसलिए श्वास को नियमित करें।

हठयोग प्रदीपिका, अध्याय 2, श्लोक-3

1. सामान्य पूरक क्रिया के समय एक औसत व्यक्ति लगभग 500 घन सेंटीमीटर वायु भीतर खींचता है; गहरी पूरक क्रिया में वायु के भीतर खींचने का आयतन लगभग छह गुना हो जाता है जो लगभग 3000 घन सेंटीमीटर होता है। अलग-अलग व्यक्तियों की क्षमता उनकी शरीर-संरचना के अनुसार अलग-अलग होती है। प्राणायाम के अभ्यास से साधक की फुफ्फुस-क्षमता बढ़ जाती है और फुफ्फुसों में अधिकतम वायु-संचार होता है।

2. **हठयोग प्रदीपिका** के दूसरे अध्याय में प्राणायाम के संबंध में विवेचन किया गया है। प्रथम तीन श्लोकों में कहा गया है : "आसनों के अभ्यास में पारंगत होने पर और अपनी ज्ञानेंद्रियों को नियंत्रित करके योगी को प्राणायाम का अभ्यास उसी प्रकार करना चाहिए जैसाकि उसके गुरु ने उसे सिखाया है और औसत तथा पोषक भोजन करना चाहिए। जब श्वास अनियमित होती है तब मन विचलित होता है; जब श्वास स्थिर होती है, तब मन भी दृढ़ होता है। इस स्थिरता को प्राप्त करने के लिए योगी को अपने श्वास पर नियंत्रण करना चाहिए। जब तक शरीर में श्वास है, तब तक जीवन है। श्वास के निकल जाने पर जीवन का अंत हो जाता है। इसलिए श्वास को नियमित करें।"

3. प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियां स्वच्छ होती हैं। ये सूक्ष्म शरीर के गोलाकार अवयव हैं और इनके द्वारा ऊर्जा प्रवाहित होती है। शरीर में कई हजार नाड़ियां हैं जिनमें से अधिकाँश हृदय और नाभि से प्रारंभ होती हैं। प्राणायाम से नाड़ियां स्वस्थ रहती हैं और उनका क्षय रुक जाता है जिससे साधक की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्राणायाम में श्वसन-क्रिया श्रोणीय कटिबंध के समीप शरीर के दोनों ओर के डायाफ्राम के आधार से प्रारंभ होती है। इस प्रकार वक्षीय डायाफ्राम और गर्दन की सहायक श्वसन मांसपेशियां विश्राम पा जाती हैं तथा

चेहरे की मांसपेशियों को भी विश्राम पाने में सहायता मिलती है। जब चेहरे की मांसपेशियां विश्राम करती हैं तब वे संवेदनशील अवयवों यथा, नेत्र, कान, नाक, जीभ और त्वचा पर अपनी पकड़ ढीली कर देती हैं और इस प्रकार मस्तिष्क का तनाव कम हो जाता है, और उसे धैर्य, तथा शांति मिल जाती है।

प्राणायामों की संख्या इतनी अधिक क्यों है ?

शरीर-संरचना विज्ञान के विभिन्न भागों—मांसपेशियों, नाड़ियों, अवयवों और ग्रंथियों—के अभ्यास के लिए विविध आसनों की उत्पत्ति की गई है जिससे पूरी शरीर-संरचना स्वस्थ और शांतिमय ढंग से कार्य कर सके। मानव परिवेश, शरीर-रचना, स्वभाव, स्वास्थ्य और मन अलग-अलग होते हैं तथा आसन भिन्न-भिन्न दशाओं में मनुष्य के रोगों को दूर करते हैं और इनमें सामंजस्य स्थापित करते हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार के प्राणायामों का विकास किया गया है और साधकों की परिवर्तनशील दशाओं में उनकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें निरूपित किया गया है।

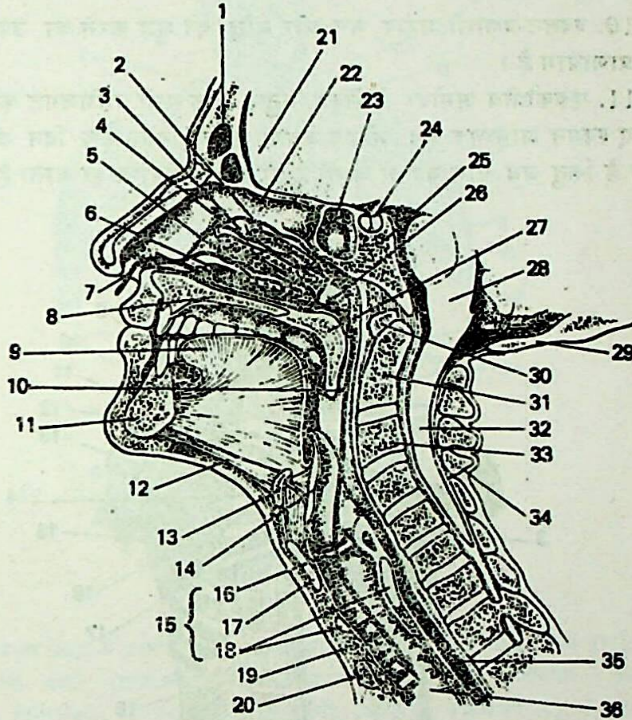
प्राणायाम की चार अवस्थाएं

5. **शिवसंहिता** के तीसरे अध्याय में प्राणायाम की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। ये चार अवस्थाएं हैं (क) आरंभ, (ख) घट, (ग) परिचय और (घ) निष्पत्ति।

6. **आरंभ** की अवस्था में साधक की रुचि प्राणायाम में जागृत होती है। प्रारंभ में वह उतावला होता है, और शीघ्र ही थक जाता है। जिस तीव्र गति से वह परिणाम चाहता है, उससे उसका शरीर कांपने लगता है और उसे पसीना आ जाता है। किंतु जब वह धैर्य के साथ अभ्यास करता रहता है तो उसे कांपना और पसीना आना बंद हो जाता है तथा साधक दूसरी अवस्था में पहुंच जाता है जो **घटावस्था** कहलाती है। घट का अर्थ जल का घड़ा है। शरीर की तुलना घड़े से की गई है। यह भौतिक शरीर बिना पके हुए मिट्टी के घड़े के समान है जो नष्ट हो जाता है। किंतु प्राणायाम की अग्नि में उसे अगर खूब तपायें तो स्थिरता आ जाती है। इस अवस्था में पांच कोष और तीन शरीर सम्मिलित होते हैं। इस समन्वय के बाद साधक **परिचयावस्था** में प्रवेश करता है और इस स्थिति में उसे प्राणायाम के अभ्यासों तथा अपने बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। जिसकी सहायता से वह अपने गुणों पर नियंत्रण करता है और अपने कर्मों के कारणों को महसूस करता है। इसके बाद साधक **निष्पत्ति अवस्था** की ओर बढ़ता है और यह परम गति की अंतिम अवस्था है। अब उसके प्रयत्न सफल हो जाते हैं, उसके कर्म के बीज जल जाते हैं। वह गुणों की बाधाओं को पार कर गुणातीत हो जाता है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् वह जीवनकाल में ही आत्मज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यह वह स्थिति है जिसमें वह आनंद का अनुभव कर चुका है।

7. प्राणायाम से शरीर को क्या लाभ हैं—इसे सम्यक् रूप से जानने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक को श्वसन-प्रणाली के बारे में थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य हो। इसकी चर्चा आगे की जा रही है।

8. यह सर्वविदित है कि मानव-शरीर को आधारभूत ऊर्जा मुख्य रूप से ऑक्सीजन



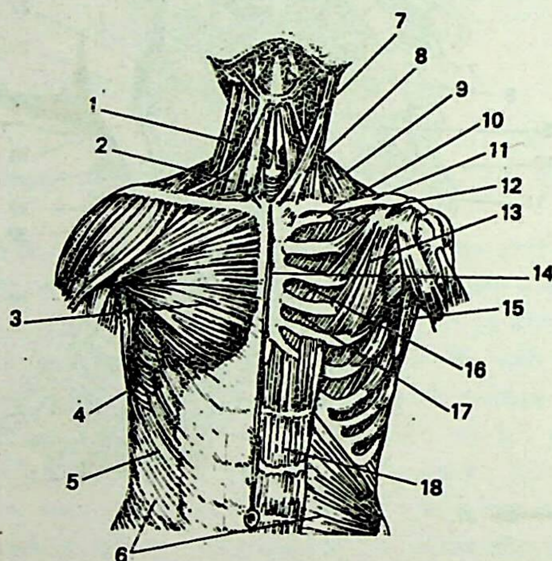
आकृति 1. 1. ललाट शिरानाल. 2. ऊर्ध्व शुक्तिका. 3. मध्य शुक्तिका. 4. ऐगार नासिका. 5. अवर शुक्तिका. 6. ललाट, ऊर्ध्वहनु और झर्झरिका शिरानाल का अग्रभाग. 7. नासा प्रघ्राण. 8. कठोर तालु. 9. जिह्वा. 10. ग्रसनी. 11. अधोहनु. 12. मुख के आधार पर डायाफ्राम (चिवुक कंठिका और चिवुक मांसपेशियाँ). 13. कंठिकास्थि. 14. कंठच्छद. 15. स्वरयंत्र. 16. स्वर रज्जु 17. अवटु उपास्थि. 18. उपास्थि. 19. श्वास प्रणालीय वलय. 20. अवटु ग्रंथि- 21. मस्तिष्क का ललाट खंड. 22. घ्राण कोशिकाएं. 23. जतुकी शिरानाल. 24. पर्याणिका में पीयूषिका ग्रंथि. 25. कपाल का जतुक भाग. 26. श्रवणनली का अग्रभाग. 27. कोमल तालु- 28. मस्तिष्क वृत्त. 29. अनुकपाल. 30. शीर्षधर. 31. अक्ष (शरीर). 32. सुषुम्ना. 33. ग्रीव कशेरुकी (तीन) का अंग. 34. ग्रीव कशेरुकी (चार) की सुषुम्ना. 35. भोजन नली. 36. श्वास नली. 37. नासिका, ग्रसनी, स्वरयंत्र और श्वास प्रणाली द्वारा अंतश्वसन के समय वायु मार्ग.

तथा ग्लूकोज़ से मिलती है। ऑक्सीजन व्यर्थ पदार्थ के ऑक्सीकरण द्वारा निर सन की प्रक्रिया में सहायता करती है जबकि ऑक्सीजन की आपूर्ति के साथ ग्लूकोज़ श्वसन के प्रवाह में शरीर की कोशिकाओं का पोषण करता है।

9. प्राणायाम का उद्देश्य श्वसन-प्रणाली को अति उत्तम बनाना है। इससे स्वतः रक्त-संचार-प्रणाली उन्नत होती है जिसके बिना पाचन और निष्कासन-क्रियाओं को हानि होती है। जीव-विष एकत्र हो जाता है। शरीर में रोग फैल जाते हैं और शरीर अस्वस्थ रहने लगता है।

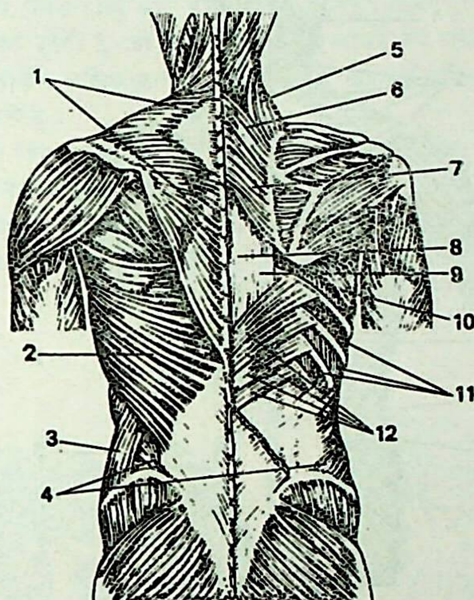
10. श्वसन-प्रणाली शरीर, मन और बुद्धि को शुद्ध करने का उपाय है जिसकी कुंजी प्राणायाम है।

11. एककोषीय अमोवा से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणिजगत को बनाए रखने के लिए श्वसन आवश्यक है। भोजन अथवा जल के बिना कुछ दिन जीवित रहा जा सकता है किंतु जब सांस बंद हो जाती है तो जीवन समाप्त हो जाता है।



आकृति 2 श्वसन क्रिया में प्रयुक्त धड़ की अग्रमांसपेशियां : 1. स्केलीय मध्यमा (अंतःश्वसन) 2. स्केलीन अग्रभाग, (अंतःश्वसन). 3. अंसीय बृहद् का पीछे की ओर सिरा (अंतःश्वसन, यदि भुजाएं स्थिर की जाती हैं). 4. सेरेटसपेशी (क्रकचिनी) का अग्रभाग (अंतःश्वसन). 5. बाह्य तिर्यक् पेशी (निःश्वसन). 6. उदरीय मांसपेशियां—बाह्य तिर्यकपेशी, आंतरिक पेशी, अनुप्रस्थ उदर (निःश्वसन और प्राणायाम—श्वसन के दौरान प्रारंभिक अंतःश्वसन). 7. पश्च कंठिका (अंतःश्वसन). 8. उरःकर्णमूल (अंतःश्वसन). 9. समलंबक अवस्थि (अंतःश्वसन). 10. पसली (एक). 11. जत्रुक. 12. अवजत्रुक (अंतःश्वसन). 13. वक्ष माइनर (अंतःश्वसन). 14. उरोस्थि. 15. लैटिसीमस डोर्सी (अंतःश्वसन). 16. आंतरिक अंतरापर्शुक. 17. बाह्य और आंतरिक अंतरापर्शुक, ऋजुपेशी उदर (निःश्वसन).

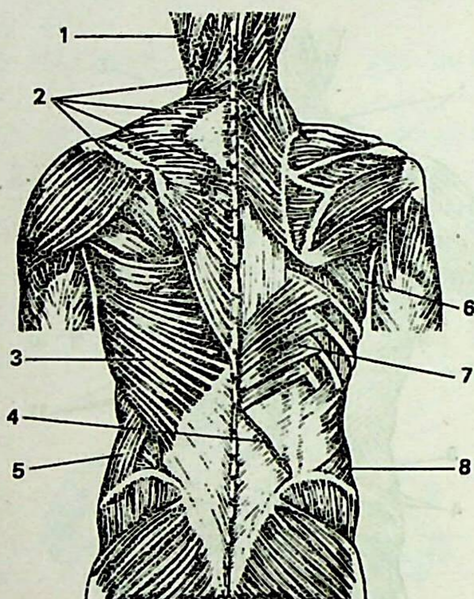
छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है, 'जसे तीलियां धुरी से कसी जाती हैं इसी प्रकार श्वास जीवन को बांधे हुए है। जीवन प्राणवायु के साथ आगे बढ़ता है। इसी श्वास से प्राणी को जीवन मिलता है। प्राणवायु उसका पिता है,…उसकी माता है,…उसका भाई है,…उसकी बहन है,…और उसका गुरु है,…ब्रह्म है। वस्तुतः जो इसे देखता, जानता और समझता है वह परमज्ञानी हो जाता है' (एस० राधाकृष्णन : **द प्रिंसिपल उपनिषद्**, सात, 15, 1-4)



आकृति 3 श्वसन क्रिया में प्रयुक्त धड़ की पश्च मांसपेशियां : 1. समलंबक अस्थि (अंतःश्वसन). 2. लैटिसमस डोर्सी (अंतःश्वसन और निःश्वसन). 3. बाह्य तिर्यकपेशी (निःश्वसन). 4. आंतरिक तिर्यकपेशी (निःश्वसन). 5. उन्नयनी स्कंधास्थि (अंतःश्वसन). 6. लघु समांतर असम चतुर्भुजवत् पेशी (अंतःश्वसन). 7. बृहद् समांतर असम चतुर्भुजवत् पेशी (अंतःश्वसन). 8. त्रिक-मेरुकंटक (अंतःश्वसन). 9. पार्श्विक त्रिक-मेरुकंटक (निःश्वसन). 10. दंतुर अग्रभाग (अंतःश्वसन). 11. अंतरापर्शुक (अंतःश्वसन और निःश्वसन). 12. सेरेटसपेशी (क्रकचिनी) पश्चभाग अवरूप (निःश्वसन) ।

12. **कौषीतक्युपनिषद्** में कहा गया है, 'व्यक्ति वाणी के बिना रह सकता है क्योंकि हम गूंगों को देखते हैं; वह दृष्टि के बिना जीवित रह सकता है क्योंकि हम अंधों को देखते हैं; वह बिना सुने रह सकता है क्योंकि हम बहरों को जीवित देखते हैं; व्यक्ति मन के विक्षिप्त होने पर भी रह सकता है क्योंकि हम मूर्खों को जीवित देखते हैं, वह हाथ-पैर के बिना जीवित रह सकता है क्योंकि हम इस प्रकार के पंगु व्यक्ति

को जीवित देखते हैं। लेकिन यह श्वास खींचने वाला ही आत्मा है जो चेतन है और इस शरीर को नियंत्रण में रखता है तथा इसे ऊंचा उठाता है। इसी प्राण आत्मा में सभी कुछ निहित है। यह प्राण आत्मा क्या है? यह चेतन आत्मा है। यह चेतन आत्मा क्या है—यही प्राण आत्मा है। यह दोनों इस शरीर में साथ-साथ रहते हैं और शरीर से एक साथ ही निकलते हैं। (एस० राधाकृष्णन—**द प्रिंसिपल उपनिषद्,** तीन, 3.)



आकृति 4 अंतःश्वसन की सहायक मांसपेशियां : 1. उरःकर्णमूल. 2. समलंबक अस्थि (चार भाग). 3. लैटिसीमस डोर्सी. 4. लैटिसीमस डोर्सी का कटा हुआ किनारा. 5. उदर की बाह्य तिर्यकपेशी।

निःश्वसन की सहायक मांसपेशियां : 6. सेरेटसपेशी (ऋकचिनी) का अग्रभाग. 7. सेरेटसपेशी (ऋकचिनी) का पश्चभाग अवरूप. 8. उदर की आंतरिक तिर्यक्पेशी.

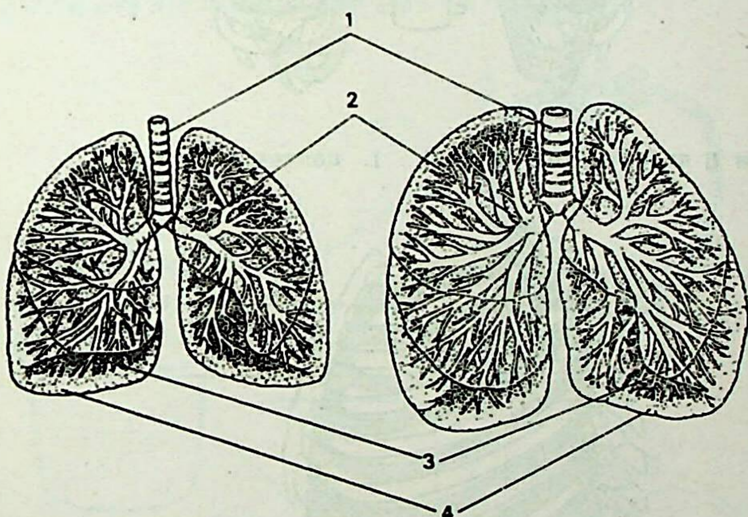
13. श्वसन-क्रिया बच्चे के माता के गर्भ से बाहर आने के साथ ही प्रारंभ हो जाती है और जीवन समाप्त होने के साथ ही इसका अंत भी हो जाता है। जब शिशु गर्भ में होता है तो उसे ऑक्सीजन मां के रक्त से मिलती है और उसे अपने फुफ्फुसों को चलाने की आवश्यकता नहीं होती। जब वह जन्म लेता है तो जीवन की पहली श्वास मस्तिष्क के आदेश से प्रारंभ होती है।

14. किसी व्यक्ति के अधिकांश जीवन में श्वसन की गति और गहराई तंत्रिका प्रणाली द्वारा स्वतः ही नियमित होती है ताकि श्वसन के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके

तथा शुद्ध ऑक्सीजन नियमित और नियंत्रित मार्ग से प्राप्त हो सके, क्योंकि कोशिकाओं को ऑक्सीजन की निरंतर आवश्यकता होती है और उनमें जो कार्बनडाईऑक्साइड एकत्र हो जाती है, उसे ऑक्सीजन निकाल बाहर करती है।

15. हममें से अधिकांश यह अनुमान लगाते हैं कि श्वसन-क्रिया प्रायः स्वचालित है और हमारे सक्रिय नियंत्रण से परे है। यह बात सही नहीं है। प्राणायाम में फुफ्फुस और तंत्रिका-प्रणाली को परिश्रमपूर्वक प्रशिक्षित करने पर श्वसन-क्रिया को उसकी गति, गहराई और गुणवत्ता में परिवर्तित करते हुए अधिक दक्ष बनाया जा सकता है। बड़े-बड़े व्यायामी, पर्वतारोही और योगियों की फुफ्फुस-क्षमता साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है जो उन्हें असाधारण कार्यों को संपन्न करने में सहायता करती है। अपेक्षाकृत अधिक अच्छी श्वसन-क्रिया का अर्थ अपेक्षाकृत अधिक अच्छा और स्वस्थ जीवन है।

16. श्वसन-क्रिया को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि साधारणतया फुफ्फुस प्रति मिनट सोलह से अठारह बार फूल जाते हैं। जीवन देने वाली ऑक्सीजन मिश्रित शुद्ध वायु उनमें भर जाती है और शरीर के तंतुओं में कार्बन डाईआक्साइड मिश्रित गैसें श्वसन-मार्गों द्वारा बाहर आ जाती हैं।

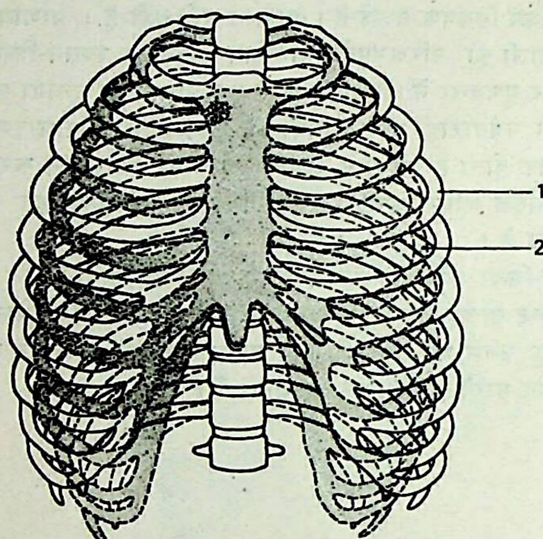


आकृति 5 फुफ्फुस : 1. श्वास नली. 2. बृहद्श्वसनिका. 3. लघु श्वसनिका. 4. फुफ्फुसावरणी झिल्ली।

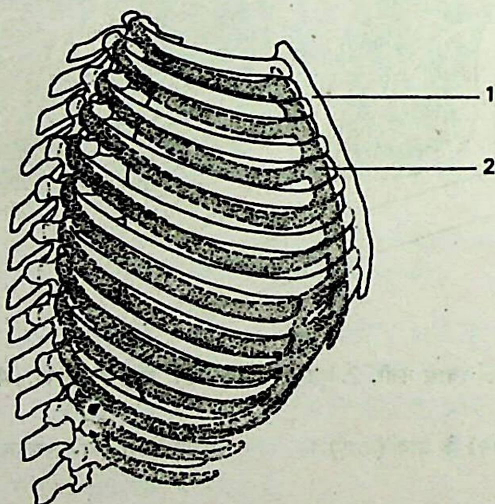
रेचक क्रिया (निःश्वसन) के बाद (बाएं)। पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) के बाद (दाएं)

शहद के छत्ते जैसी मुलायम फुफ्फुस की धौंकनी लयात्मक प्रसार को पसली-पिंजर और डायाफ्राम की गतियों से बराबर बनाए रखती है। इसके फलस्वरूप परवर्ती

अवयव उन मनोवेगों से संचालित होते हैं अथवा शक्ति पाते हैं जो मस्तिष्क में श्वसन केंद्र द्वारा भेजे जाते हैं और नाड़ियों के माध्यम से संगत मांसपेशियों तक जाते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क उत्तेजक का कार्य करता है जिसके द्वारा श्वसन-क्रिया और तीन



आकृति 6 पसली पिंजर (सामने का दृश्य) : 1. अंतःश्वसन. 2. निःश्वसन.



आकृति 7 पसली पिंजर (किनारे का दृश्य) : 1. अंतः श्वसन. 2. निःश्वसन.

मानसिक कार्य—विचार, इच्छा-शक्ति और चेतना—नियमित होते हैं।

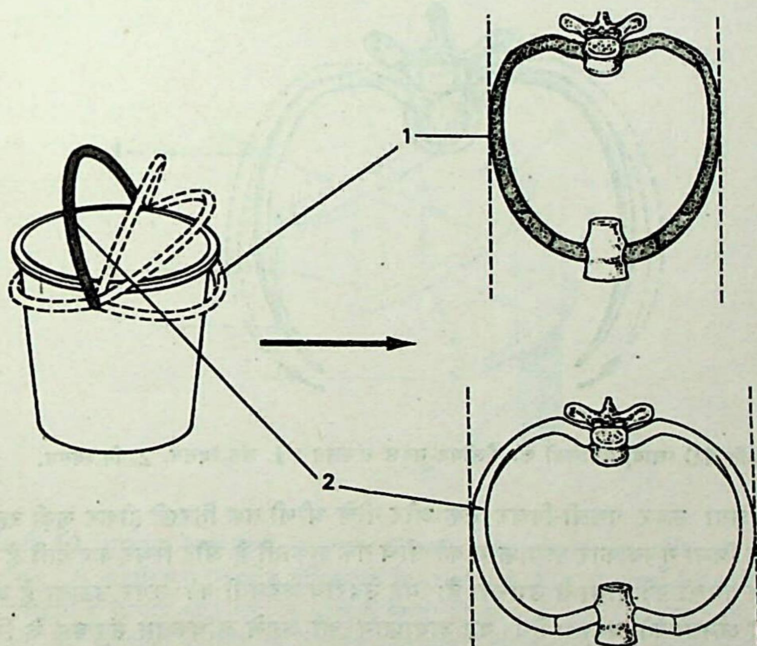
17. श्वसन-चक्र में तीन भाग होते हैं: पूरक क्रिया (अंत:श्वसन), रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) और कुंभक क्रिया (धारण)। पूरक क्रिया सीने के प्रसार की एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा फुफ्फुस में ताज़ी वायु भर जाती है। रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) सीने की लचीली दीवार का सामान्य और निष्क्रिय प्रतिक्षेप है जिसके द्वारा दूषित वायु बाहर आ जाती है और फुफ्फुस खाली हो जाते हैं। कुंभक क्रिया (श्वास-धारण) प्रत्येक पूरक क्रिया और रेचक क्रिया के अंत में एक विराम है। ये तीनों क्रियाएं मिल-कर श्वसन-चक्र बनाती हैं। श्वसन से हृदय की गति प्रभावित होती है। श्वास को अधिक समय तक रोकने की अवधि में हृदय की गति धीमी हो जाती है जिससे हृदय की मांसपेशी को अपेक्षाकृत अधिक आराम मिल जाता है।

18. श्वसन क्रिया को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) उच्च अथवा अक्षक श्वसन, जहां गर्दन की संगत मांसपेशियां मुख्यतया फुफ्फुस के ऊपरी भागों को क्रियाशील बनाती हैं।

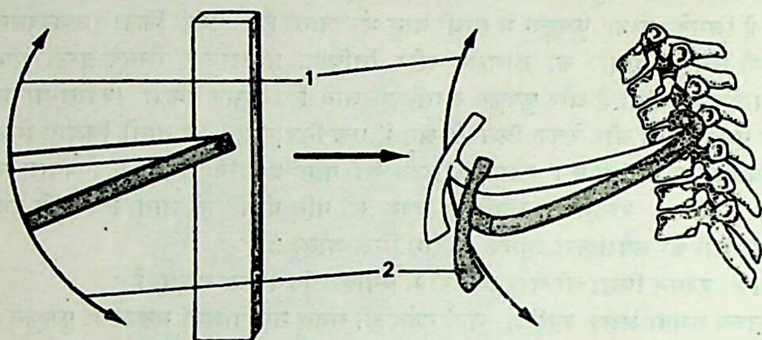
(ख) अंतरापर्शुक अथवा मध्य श्वसन, जहां फुफ्फुस के केंद्रीय भाग ही क्रियाशील होते हैं।

(ग) कम अथवा डायाफ्राम श्वसन, जहां फुफ्फुस के निचले भाग मुख्यतया क्रिया करते हैं जबकि उच्च और मध्य के भाग अपेक्षाकृत कम क्रियाशील होते हैं।



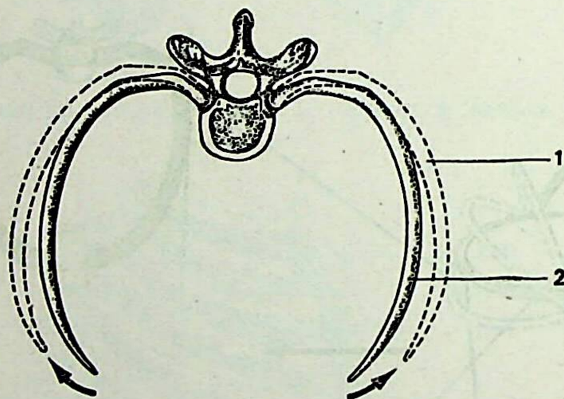
आकृति 8 पसलियों का बाल्टी के हैंडिल सदृश संचलन : 1. अंत:श्वसन. 2. नि:श्वसन.

(घ) पूर्ण अथवा प्राणायाम श्वसन, जहां कुल फुफ्फुस अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार प्रयुक्त किए जाते हैं।



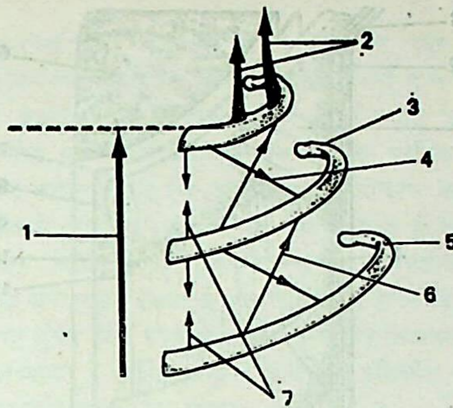
आकृति 9 श्वास-प्रश्वास में पसलियों का अग्रपश्च संचलन : 1. अंतःश्वसन. 2. निःश्वसन.

प्राणायाम की अंतःश्वसन क्रिया में डायाफ्राम संकुचन की क्रिया तब तक रुकी रहती है जब तक अग्रवर्ती और पार्श्विक उदरीय दीवार की मांसपेशियां न सिकुड़ जाएं। ये

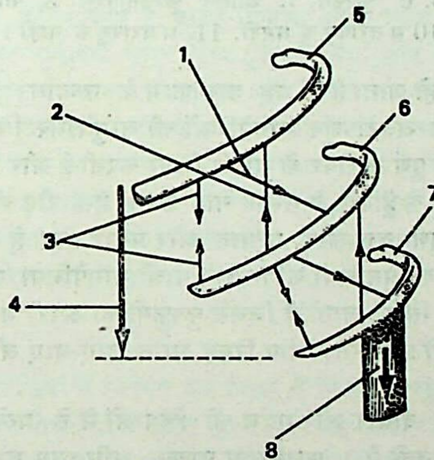


आकृति 10 प्लावी पसलियों का कैलीपर सदृश संचलन : 1. अंतःश्वसन. 2. निःश्वसन.

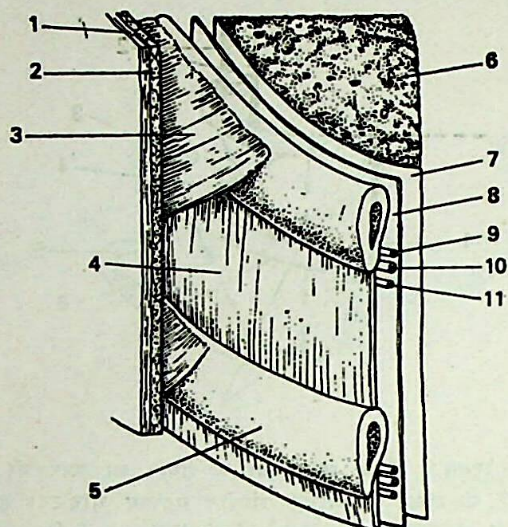
मांसपेशियां ऊपर पसली-पिंजर तक और नीचे श्रोणी तक तिरछी होकर जुड़ी रहती हैं। यह क्रिया गुंबदाकार डायाफ्राम को नीचे तक झुकाती है और स्थिर कर देती है जो निचली पसली की सीमा से उभरता है; यह उदरीय अवयवों को ऊपर उठाता है और वक्ष की क्षमता को बढ़ाता है। यह डायाफ्राम को अगले अधिकतम संकुचन के लिए तैयार करता है और अभिकेंद्रीय खिंचाव को घटाते हुए उसकी क्षमता को बढ़ाता है। इससे परवर्ती क्रमिक क्रिया, जैसे ऊपर उठती हुई निचली पसलियों के उत्थान और



आकृति 11 अंतःश्वसन के दौरान ऊपरी वक्षीय दीवार का ऊपर की ओर संचलन : 1. अंतःश्वसन. 2. अंतःश्वसन के दौरान स्केलीन अग्रभाग और उठी हुई पहली पसली 3. दूसरी पसली. 4. आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियों के खिंचाव की दिशा. 5. तीसरी पसली. 6. वाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियों के खिंचाव की दिशा. 7. अंतरापर्शुक द्वारा पहली पसली को ओर खिंची हुई दूसरी और तीसरी पसलियां ।



आकृति 12 बलपूर्वक रेचक क्रिया के दौरान निचली वक्षीय दीवार का नीचे की ओर संचलन : 1. आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियों के खिंचाव की दिशा. 2. वाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियों के खिंचाव की दिशा. 3. बारहवीं पसली की ओर अंतरापर्शुक द्वारा खिंची हुई दसवीं और ग्यारहवीं पसलियां. 4. बलपूर्वक निःश्वसन, दसवीं पसली. 6. ग्यारहवीं पसली (प्लावी पसली). 7. बारहवीं पसली (प्लावी पसली) 8. बलपूर्वक निःश्वसन के दौरान स्थिर हुई चतुरस कटि अथवा झुकी हुई बारहवीं पसली ।



आकृति 13 वक्षीय दीवार की संरचना : 1. त्वचा. 2. सतही पट्टी. 3. मांसपेशी (सेरेटसपेशी का अग्रभाग). 4. अंतरापर्शुक मांसपेशी की तह (बाह्य अंतरापर्शुक, आंतरिक अंतरापर्शुक, अनुप्रस्थ वक्ष). 5. पसली. 6. फुफ्फुस. 7. आंत्रिक फुफ्फुसावरण. 8. पार्श्विक फुफ्फुसावरण. 9. अंतरापर्शुक शिरा. 10 अंतरापर्शुक धमनी. 11. अंतरापर्शुक नाड़ी।

प्रसार में अवरोध कम हो जाता है। यह डायाफ्राम के उर्ध्वाधर खिंचाव से संपन्न होता है और इसके बाद अंतरापर्शुक मांसपेशियों की आनुक्रमिक क्रिया प्रारंभ होती है जिससे प्लावी पसलियां पूर्ण कैलीपर के समान क्रिया करती हैं और जिसके फलस्वरूप ही प्रत्येक पसली बाल्टी के हैंडिल के समान गति करती है। रीढ़ की हड्डी के प्रारंभ से ही पसली-पिंजर का पूर्ण वृत्ताकार उत्थान और प्रसार होता है। अंत में उच्चतम अंतरापर्शुक और ऊपर की पसलियों को मिलाने वाली मांसपेशियां, उरोस्थि और गर्दन तथा खोपड़ी की हंसली सिकुड़ जाती है जिससे फुफ्फुसों का ऊपरी भाग भर जाता है। इसके पश्चात् पहले से ही प्रसारित वक्षीय रिक्त स्थान दाएं-बाएं और आगे-पीछे की ओर फैल जाते हैं।

19. उदर, वक्षीय दीवार और गर्दन की क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया आगामी क्रिया के लिए आधार बनती है। फलस्वरूप फुफ्फुस अधिकतम भर जाते हैं। इससे आने वाली वायु के लिए प्रत्येक फुफ्फुस के प्रत्येक कोने में पहुंचने का स्थान बन जाता है।

20. साधक को सर्वप्रथम अपने चेतन शरीर के ज्ञान को विशेष रूप से बुद्धिमत्तापूर्वक श्रोणि के ठीक ऊपर निचली बाह्य, उदरीय दीवार की ओर निर्दिष्ट करना चाहिए। इसके लिए उसे निचली उदरीय दीवार को रीढ़ की हड्डी की ओर और डायाफ्राम की ओर संचलित करना चाहिए जैसे वह त्वचा से लेकर मांसपेशियों, और

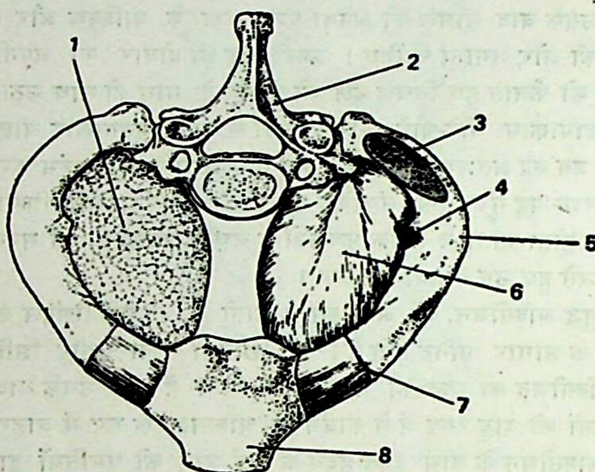
मांसपेशियों से लेकर आंतरिक अवयवों की मालिश कर रहा हो। डायाफ़ाम की संकुंचन की अनुभूति त्वचा की ऊपरी तथा गहनतम परतों में से उदर की दीवार की ओर दिखाई पड़ने वाली गतियों से संबद्ध होती है और इसे इच्छानुसार किया जा सकता है। उसके बाद साधक को अपना ध्यान वक्ष के पार्श्विक और परवर्ती क्षेत्रों को फैलाने की ओर लगाना चाहिए। ऊपरी वक्ष की दीवार को अपनी त्वचा और मांसपेशियों को फैलाते हुए निचले वक्ष की दीवार के साथ ही साथ उठाना चाहिए। इस प्रकार डायाफ़ाम धीरे-धीरे और सरलता से अपनी गुंवदाकार आकृति को ग्रहण कर लेता है जब वह अंतःश्वसन-क्रिया के अंत में विश्राम करना प्रारंभ करता है। रेचक क्रिया के दौरान यह गुंवद फिर संचलित होता है। यह निःश्वसन-क्रिया प्रारंभ करते समय सक्रिय होता जाता है ताकि फुफ्फुसों के लचीले प्रतिक्षेप को सरल धीमी गति से प्रारंभ करते हुए उसे बढ़ाया जा सके।

21. शुद्ध ऑक्सीजन, जो अंदर खींची जाती है, को ऐसे छिद्रिल कोष छानते हैं जो फुफ्फुस के आधार यूनिट होते हैं। इन छिद्रिलों के चारों ओर झिल्लियां होती हैं जो इस ऑक्सीजन को रक्त की धारा में ले जाती हैं और उसके बाद रेचक-क्रिया द्वारा फुफ्फुसों की वायु रक्त में से कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में बाहर निकल जाती है। शुद्ध ऑक्सीजन के साथ रक्त हृदय के बाईं ओर की धमनियों द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग में कोषों द्वारा पहुंचता है। इस प्रकार जीवन-प्रदायिनी ऑक्सीजन का भंडार भरता है। प्रत्येक कोष से बाहर निकला व्यर्थ पदार्थ (मुख्यतः कार्बन-डाइ-ऑक्साइड रक्त की विषाक्त धारा द्वारा हृदय के दाईं ओर से फेफड़ों की ओर बाहर फेंकने के लिए पहुंचाया जाता है। हृदय प्रति मिनट औसतन 70 गुना गति से इस रक्त को शरीर में फेंकता है इसलिए हमें उचित रूप से श्वास लेने के लिए शरीर के सभी संगत भागों के सरल समन्वय की आवश्यकता होती है, शरीर के भाग इस प्रकार हैं : तंत्रिका-प्रणाली (शक्ति अथवा नियंत्रण गृह); फुफ्फुस (धौंकनी); हृदय (पंथ); धमनियां और शिराएं (नलकारी प्रणाली); इनके अलावा आंतों और (डायाफ़ाम) को गतिशील करने वाली मोटर।

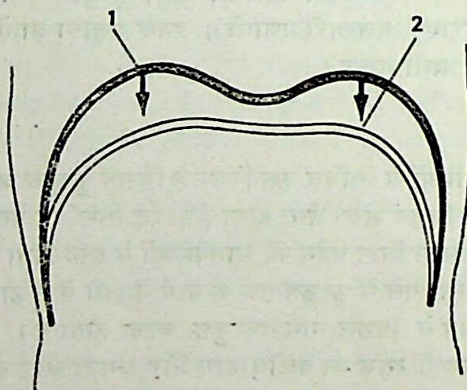
वक्ष

22. वक्ष पसलियों से निर्मित एक पिंजर है जिसमें फुफ्फुस और हृदय स्थित होते हैं। इसका आकार विकृत शंख जैसा होता है। यह सिरे पर पतला और नीचे चौड़ा होता जाता है। इसका सिरा गर्दन की मांसपेशियों से ढका होता है और यह हंसली से जुड़ा रहता है। नली गले से फुफ्फुस तक के मार्ग में इसी में से होकर गुजरती है। यह विकृत शंख अग्रभाग से पिछले भाग तक कुछ चपटा होता है। इसकी हड्डीदार सतहों में बीचों-बीच कशेरुकी स्तंभ का वक्षीय भाग और अगली ओर वक्षीय प्लेट सम्मिलित होती हैं। इनमें चपटी पसलियों के बारह जोड़े होते हैं जो पिछली ओर की रीढ़ की हड्डी और अगली ओर की वक्षीय हड्डी के बीच खाली स्थान में गोलाई में आर-पार होते हैं और प्रत्येक ओर अर्धवृत्ताकार पुलों जैसा रूप धारण करते हैं। पसलियों के बीच की जगह आंतरिक और बाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियों से भरी रहती है। इसके

अलावा बारहवीं पसली श्रोणि और पहली पसलां ग्रव रीढ़ की हड्डी को ज़ोड़ने वाली मांसपेशियां भी होती हैं। मांसपेशियों के कुल मिलाकर ग्यारह जोड़े होते हैं।

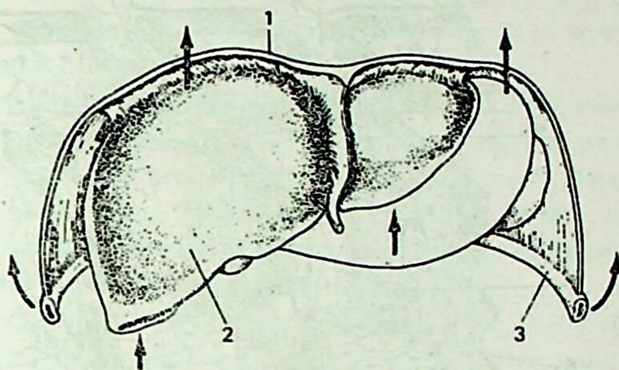


आकृति 14 प्राणायाम अंतःश्वसन के अंत में प्रयोग में लाई गई ग्रीवा मांसपेशियों का निवेशन : 1. फुफ्फुस का शीर्ष. 2. कशेरुकी (ग्रीवा सात). 3. स्केलीन मीडियम का संचलन. 4. स्केलीन वाह्य का निवेशन. 5. पसली एक 6. स्केलीन मिनीमस के निवेशन श्रौर स्केलीन से उभरे हुए तंतुओं को शामिल करते हुए ऊपरी फुफ्फुसावरणी झिल्ली. 7. कोस्टोकाड्रन संधि अथवा पर्शुका उपास्थि अर्बुद संधि. 8. उरोस्थि मुष्टि।



आकृति 15 प्राणायाम के दौरान डायाफ्राम के गति-संचलन : 1. दाहिना गुंबद. निःश्वसन का अंत 2. बाया गुंबद, अंतःश्वसन का अंत,

वक्ष का प्रसार और संकुचन इन्हीं मांसपेशियों और डायाफ्राम द्वारा नियंत्रित होते हैं। वक्षीय पृष्ठ भाग केले के पत्ते के समान चौड़ा बीच का भाग है, रीढ़



आकृति 16 अंतःश्वसन में प्लावी पसलियों को उठाने वाला डायाफ्राम : 1. डायाफ्राम. 2. यकृत. 3. पसली बारह।

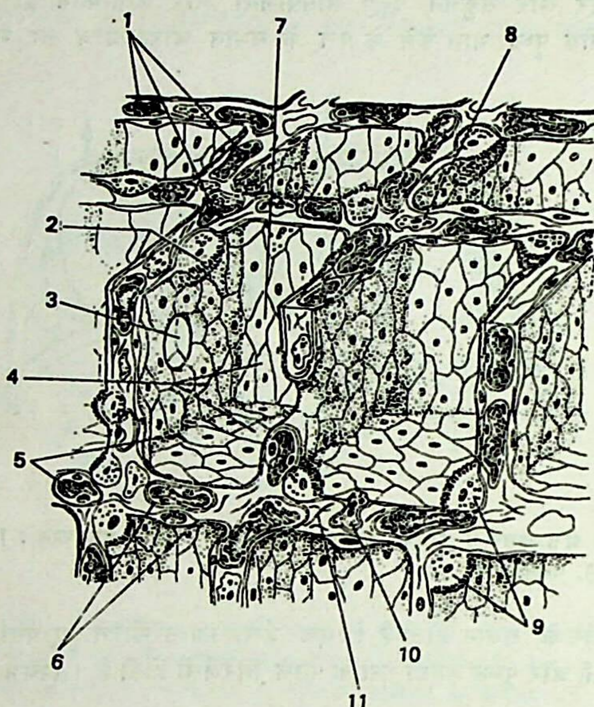
की हड्डी तने के समान होती है। एक जैसा स्थान छोड़ते हुए पसलियां शिराएं जैसी होती हैं और पुच्छ हड्डी पत्ते के पतले सिरेजैसी होती है। (चित्र 1 और 2)।

फुफ्फुस और श्वसन-वृक्ष

23. दाएं और बाएं फुफ्फुस की आकृति और क्षमता अलग-अलग है। हममें से अधिकांश के हृदय का अधिकांश भाग बाईं ओर होता है। इसका आकार लगभग मुट्ठी के बराबर होता है। इसके फलस्वरूप फुफ्फुस अपेक्षाकृत छोटा होता है। यह दो खंडों में विभाजित होता है जबकि दाहिनी ओर के फुफ्फुस में तीन खंड होते हैं (आकृति 5)।

24. फुफ्फुस एक झिल्ली से ढके रहते हैं जिसे फुफ्फुसावरणी कहते हैं और फूलने पर उनकी आकृति फुटबॉल के ब्लैडर के समान बन जाती है।

25. दाएं डायाफ्राम का गुंबद बाएं डायाफ्राम की अपेक्षा अधिक ऊंचा होता है। इसी के नीचे यकृत (जिगर) होता है जो उदर का सबसे अधिक बड़ा ठोस अवयव है। यह पेट की अपेक्षा कम संपीड़ित होने वाला तथा दबने वाला होता है। बाएं डायाफ्राम के नीचे तिल्ली होती है। पूर्ण पूरक क्रिया में जब फुफ्फुसों को भरने का प्रयत्न किया जाता है तब यदि व्यक्तियों का ध्यान उस क्षेत्र की ओर आकर्षित किया जाए तो अधिकांश व्यक्ति यह महसूस करेंगे कि डायाफ्राम, की दाहिनी ओर से नीचे बढ़ता हुआ एक गतिरोध है, जहां यकृत (जिगर) होता है। दोनों फुफ्फुसों को निचले और दाएं-बाएं भाग से समान रूप से भरने के लिए दाहिनी ओर डायाफ्राम और वक्षीय



आकृति 17 फुफ्फुसी वायु कोशिकाओं की सूक्ष्म संरचनाएं जो आर-पार झिल्लियों को दिखाती हैं। ये संरचनाएं वायु और रक्त के बीच गैसों का विनिमय करती हैं।
1. लगातार अंतःस्तर कोशिका स्तर सहित कोशिकाएं. 2. आंतरिक दंत-उलूखल दीवार. 3. आंतरिक दंत-उलूखल छिद्र. 4. लगातार उपकला-कोशिकाओं के अस्तर सहित दंत-उलूखल झिल्ली. 5. झिल्लियों का पिघला हुआ आधार. 6. दंत-उलूखल और कोशिका झिल्लियों के बीच का स्थान. 7. दंत उलूखल. 8. दंत-उलूखल बृहत् भक्षक (अपमार्जक कोशिका). 9. पटीय कोशिका. 10. दंत-उलूखल बृहत्-भक्षक (अपमार्जक कोशिका). 11. कोलेजन और प्रत्यास्थ तंतु.

दीवार की गतियों को दाहिनी ओर निर्दिष्ट करना चाहिए और इसके लिए विशेष ध्यान देना व प्रयत्न करना चाहिए।

26. वक्षीय प्रणाली जो वायु-नली और वायु-कोष को मिलाती है, वक्षीय पिंजर में होती है। यह एक उल्टे वृक्ष के समान होती है जिसकी जड़ें हलक की ओर होती हैं जबकि शाखाएं नीचे डायाफ्राम की ओर और वक्षीय कोष्ठ के किनारे की दीवारों की ओर फैली होती हैं।

27. गले में वायुनलिका एक नली है जो लगभग चार इंच लंबी तथा एक इंच से कम मोटी होती है और जिसकी शाखाएं दो प्रमुख श्वसनी में बंट जाती हैं। दोनों श्वसनी प्रत्येक फुफ्फुस की ओर जाती है। इसके पश्चात् दोनों असंख्य छोटे-

छोटे वायु मार्गों में बंट जाती हैं जिन्हें श्वसनी कहा जाता है। इन्हीं श्वसनियों में से प्रत्येक श्वसनी के अंत में वायुकोष होते हैं। छोटी-छोटी वायु की थैलियां अंगूर के गुच्छों के समान होती हैं, लगभग 30 करोड़ थैलियां प्रत्येक फुफ्फुस में होती हैं और उनकी सतह लगभग 80 से लेकर 100 वर्गगज को आच्छादित कर सकती है। मानव-त्वचा जितना स्थान घेरती है, उसकी अपेक्षा इन थैलियों का आकार 40 से 50 गुना होता है।

28. यह वायु-कोष असंख्य बहुत छोटे-छोटे, थैलीनुमा चैंबरों के समान होते हैं जिनमें अपूर्ण कोशिकाओं की परतें होती हैं। इन कोशिकाओं (आभ्यंतर स्थान) के मध्य खाली स्थान में तरल पदार्थ भरा होता है। वायुकोष की बाहरी दीवार के चारों ओर छोटी-छोटी धमनियां (रक्त-कोष) होती हैं। वायुकोष और लाल रक्त कोशिकाओं के बीच में गैसों का विनिमय होता है और रक्त का प्लाज़्मा वायुकोष या आभ्यंतर स्थान में तरल पदार्थ द्वारा प्रवाहित होता है।

29. वायुकोष में जो वायु होती है उसमें ऑक्सीजन अधिक होती है और कार्बन डाइऑक्साइड अपेक्षाकृत कम होती है जबकि रक्त की स्थिति इसके विपरीत होती है जो फुफ्फुसों की कोशिकाओं में से होकर बहता है। ऑक्सीजन और कार्बन डाइ-ऑक्साइड के विनिमय के दौरान ऑक्सीजन के अणु रक्त में घुल-मिल जाते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड रक्त से बाहर निकल आती है।

मेरुदंड

30. मेरुदंड को वृक्ष के तने के समान बड़ा सशक्त रखना चाहिए। मेरु रज्जु तेंतीस कशेरुकी द्वारा सुरक्षित होती है। गर्दन की सात कशेरुकी को ग्रीवा कहा जाता है। इनके नीचे बारह पृष्ठीय अथवा वक्षीय कशेरुकी होती हैं जो पसलियों से जुड़ी रहती हैं तथा एक ऐसा पिंजर बनाती हैं जिनमें फुफ्फुस और हृदय सुरक्षित रहते हैं। दोनों ओर ऊपरी दस पसलियां सामने से भीतरी छाती की हड्डी से जुड़ी रहती हैं लेकिन निचली दो प्लावी पसलियां स्वतंत्र होती हैं। प्लावी पसलियों को तैरता हुआ इसलिए माना जाता है क्योंकि वह छाती की हड्डी पर आश्रित नहीं होतीं। नीचे पृष्ठीय भाग में कटि कशेरुकी होती है तथा इसके भी नीचे भाग में त्रिक और अनुत्रिक होते हैं और ये दोनों पिघली हुई कशेरुकी से निर्मित होती हैं। सबसे निचली अनुत्रिक कशेरुकी आगे की ओर मुड़ जाती है।

छाती की हड्डी

31. छाती की हड्डी के तीन भाग होते हैं। श्वसन की क्रिया में सबसे ऊपर और नीचे का भाग सतह से लंब रूप में रखना चाहिए। आस-पास की पसलियों को उठाने के लिए यह बाल्टी के हैंडिल के समान सहायक होता है। इस प्रकार किनारों तथा ऊपर की ओर फुफ्फुसों के प्रसार द्वारा अपेक्षाकृत अधिक स्थान बना लेना चाहिए।

32. फुफ्फुस किनारों की ओर खुलते हैं और उनके प्रसार के लिए स्थान

अंतरापर्शुक मांसपेशियों की सहायता से बनाया जाता है। यदि पीठ की त्वचा अंतरापर्शुक मांसपेशियों के साथ समन्वय नहीं कर पातीं तो श्वसन क्रिया कम हो जातो है और ऑक्सीजन का प्रवेश कम हो जाता है जिससे शारीरिक दुर्बलता बढ़ती है तथा शरीर में प्रतिरोध शक्ति कम हो जाती है

त्वचा

33. जैसे एक ढोलकिया प्रतिध्वनि के लिए अपने ढोल की खाल कस लेता है और एक वायलन वादक ध्वनि की स्पष्टता के लिए अपने वायलन के तारों को कस लेता है, उसी प्रकार योगी :अपने धड़ की त्वचा का समायोजन करता है तथा उसे फैलाता हैं ताकि अंतरापर्शुक मांसपेशियों से अधिकाधिक प्रतिक्रिया पैदा कर सके जिससे श्वास-प्रश्वास में उस समय सहायता मिले जब प्राणायाम का अभ्यास किया जाए।

34. प्लावी पसलियां सामने से उरोस्थि तक जुड़ी नहीं होतीं और वे कैलीपर के समान फैली होती हैं ताकि वक्ष में अपेक्षाकृत अधिक स्थान बना सकें। पार्श्विक रूप से, मध्य की मोटी पसलियों का भी पार्श्वीय प्रसार होता है और इस प्रकार पसलियों का पिंजर चौड़ा हो जाता है तथा ऊपर उठ जाता है। इससे ऊपर की पसलियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। फुफ्फुसों के सबसे ऊपर के स्थान को भरने के लिए प्रशिक्षण और ध्यान की आवश्यकता होती है। ऊपरी आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियों तथा उरोस्थि का प्रयोग करना चाहिए। पसली पिंजर को आंतरिक संरचना से बाहर की ओर फैलाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से अंतरापर्शुक मांसपेशियां फैलती हैं।

डायाफ्राम

35. डायाफ्राम बृहद् गुंबदनुमा मांसपेशी जैसा एक विभाजक है जो वक्षीय रिक्त स्थान को पेट के भाग से अलग करता है। निचले वक्षीय पिंजर की परिधि के चारों ओर आश्रित होकर यह कटि-कशेरुकी से पीठ तक, नीचे की छह पसलियों के किनारे और छाती की हड्डी के खंजरनुमा उपास्थि के सामने संबद्ध रहता है। इसके ऊपर हृदय और फुफ्फुस होते हैं तथा इसके नीचे दाहिनी ओर जिगर होता है और बाईं ओर उदर तथा तिल्ली होते हैं।

सहायक मांसपेशियां

36. गला, धड़, मेरुदंड और उदर की श्वास-प्रश्वास संबंधी मांसपेशियां, सहायक मांसपेशियां कहलाती हैं जिनका श्वास लेने में उपयोग किया जाता है जो साधारणतया डायाफ्राम के अधिकार में होती हैं। इसके अतिरिक्त जिन मांसपेशियों का पहले ही उल्लेख किया गया है और जिनमें गर्दन की मांसपेशियां, विशेषकर उर:कर्णमूल और अध:कुल्या, अपनी भूमिका अदा करती हैं। वे श्वास-प्रश्वास क्रिया में बहुत कम योगदान करती है परंतु उस समय सक्रिय हो जाती हैं जब श्वास-प्रश्वास की गति

अथवा गहनता बढ़ जाती है और उस समय निश्चेष्ट हो जाती हैं जब सांस रोक ली जाती है। श्वसन में सहायक मांसपेशियों के प्रयोग विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होते हैं। ये एक ही व्यक्ति में समय-समय पर अलग-अलग होते हैं जो इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी शक्ति, कितनी दक्षता तथा कितनी गंभीरता से सांस लेने और छोड़ने का प्रयास करता है।

37. हम सभी श्वास लेते हैं लेकिन हममें से कितने व्यक्ति सही ढंग से और ध्यानपूर्वक श्वास लेते हैं? गलत आसन, विकृत अथवा झुका हुआ वक्ष, स्थूलता, संवेगीय विकृतियां, फुफ्फुस के विभिन्न कष्ट, धूम्रपान और श्वास-प्रश्वास संबंधी मांसपेशियों का बेतुका प्रयोग अनुचित श्वसन की ओर उन्मुख करता है जो व्यक्ति की क्षमता से कम होता है। हम उस असुविधा और असमर्थता को जानते हैं जो इसके बाद उत्पन्न होती है। दुर्बल श्वसन और अशुद्ध आसन के फलस्वरूप हमारे शरीर में कई आंतरिक परिवर्तन हो जाते हैं जैसे गंभीर श्वसन, अपर्याप्त फुफ्फुस क्रिया और हृदय रोग को बढ़ावा देना। प्राणायाम इन दोषों को दूर करने में सहायता करता है और इन्हें रोकने तथा इनके उपचार में मदद करता है ताकि व्यक्ति पूर्ण और सुखी जीवन जी सके।

जिस प्रकार सूर्य के गोले से प्रकाश विकेंद्रित होता है, इसी प्रकार फुफ्फुसों में से वायु फैलती है। वक्ष को ऊपर और नीचे हिलाएं। यदि वक्षीय हड्डी के मध्य भाग के ऊपर की त्वचा लंब रूप में ऊपर और नीचे गति करती हो और उसका परिधि रूप में एक किनारे से दूसरे किनारे तक प्रसार हो सके तो इससे यह विदित होगा कि फुफ्फुसों में अपनी पूरी क्षमता के अनुसार वायु भर गई है।

5

नाड़ी और चक्र

1. नाड़ी शब्द 'नाड' शब्द से निकला है जिसका अर्थ 'खोखला डंठल, ध्वनि, तरंग और प्रतिध्वनि' है। नाड़ियां नलिकाएं, वाहिनियां अथवा प्रणालिकाएं होती हैं जो वायु, जल, रक्त, पोषक और अन्य पदार्थों को पूरे शरीर में ले जाती हैं। वे हमारे शरीर की धमनियां, शिराएं, कोशिकाएं, श्वसनियां और इसी प्रकार के अन्य अवयव हैं। हमारे तथाकथित आंतरिक और आध्यात्मिक शरीरों में, जिनको न तो तोला जा सकता है और न ही नापा जा सकता है, ये प्रणालिकाएं सृजनात्मक, सशक्त, प्रजननात्मक और अन्य ऊर्जाओं के अतिरिक्त संवेगों, चेतना और आध्यात्मिक पूर्वाभास के लिए होती हैं जो विभिन्न कार्यप्रणालियों के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारी जाती हैं। नाड़ियां बहुत छोटी-छोटी होती हैं और नाड़ी चक्र समस्त तीनों शरीरों—पूर्ण, सूक्ष्म और कारण शरीर—में परस्पर अंतर्गुंफित गुच्छिकाएं होती हैं। वैज्ञानिक अथवा चिकित्सक अभी भी सूक्ष्म और कारण शरीर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं।

2. **वराहोपनिषद्** (पांच, 54/5) में कहा गया है कि नाड़ियां पैरों के तलवों से लेकर सिर के उच्च भाग तक शरीर में व्याप्त रहती हैं। उन्हीं में प्राण होता है जो जीवन का श्वास है और उसी जीवन में आत्मा का निवास होता है जो शक्ति का आवास और सजीव तथा निर्जीव जगत् का सृजक है।

3. सभी नाड़ियों की उत्पत्ति इन दो केंद्रों में से किसी एक केंद्र से होती है। ये दो केंद्र हैं : (क) कंदास्थान जो नाभि से कुछ नीचे होता है, और (ख) हृदय। योग संबंधी पुस्तकों में उनके उद्गम के बारे में सहमति है परंतु कुछ नाड़ियों के अंत होने के स्थान के बारे में मतभेद है।

नाभि के नीचे से शुरू होने वाली नाड़ियां

4. गुदा और जननेंद्रिय के ठीक बारह अंगुलि ऊपर तथा नाभि के ठीक नीचे अंडानुमा एक बल्ब होता है जिसे कंदा कहते हैं। यह बताया जाता है कि इसी स्थान से 72,000 नाड़ियां समस्त शरीर में जाती हैं और प्रत्येक नाड़ी से 72,000 शाखाएं

फूटती हैं। वे प्रत्येक दिशा में गतिशील होती हैं और उनके अनेक कार्य होते हैं।

5. **शिवसंहिता** में 3,50,000 नाड़ियों का उल्लेख किया गया है जिनमें से 14 नाड़ियों को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। आगे की तालिका में इन नाड़ियों के अतिरिक्त कुछ अन्य नाड़ियों के कार्यों का उल्लेख किया गया है। तीन नाड़ियां जो सबसे

नाभि के नीचे कंदा से प्रारंभ होने वाली नाड़ियों की तालिका

क्र० सं०	नाड़ी	शरीर में स्थान	अंतिम स्थान	कार्य
1	सुषुम्ना	रीढ़ का केंद्र	सिर का सर्वोच्च	अग्नि (सत्व) चमक
2	इड़ा	सुषुम्ना की बाईं ओर	स्थान बायां नासारंध्र	चंद्र शीतलन (तमस्) क्रिया
3	पिंगला	सुषुम्ना की दाईं ओर	दायां नासारंध्र	सूर्य ज्वलन (रजस् क्रिया)
4	गांधारी	इड़ा के पीछे	बायां नेत्र	देखना
5	हस्ति-जिह्वा	इड़ा के सामने	दाहिना नेत्र	देखना
6	पूषा	पिंगला के पीछे	दाहिना कान	सुनना
7	यशस्विनी	पिंगला से पहले गांधारी और सरस्वती के बीच में	बायां कान और बायां अंगूठा	—
8	अलंबुसा	मुख और गुदा को अलग करती है		
9	कुहू	सुषुम्ना के सामने		मलोत्सर्जन
10	सरस्वती	सुषुम्ना के पीछे	जिह्वा	वाणी पर नियंत्रण करती है तथा उदर के सभी अवयवों को रोगों से मुक्त रखती है
11	वारुणी	यशस्विनी और कुहू के बीच	पूरे शरीर में प्रवाहित	मूत्र परित्याग करती है
12	विश्वधारी	हस्ति-जिह्वा और कुहू के बीच		भोजन पचाती है
13	पयस्विनी	पूषा और सरस्वती के बीच में	दाहिना अंगूठा	
14	शंखिनी	गांधारी और सरस्वती के बीच में	जननेंद्रिय	भोजन का सार ले जाती है
15	शुभ			
16	कौशिकी		बड़ा अंगूठा	
17	शूरा		भौं के बीच में	
18	राका			भूख और प्यास को उत्पन्न करती है, कोटर में कफ एकत्र करती है
19	कूर्म			शरीर और मनको शांत करती है
20	विज्ञान-नाड़ियां			चेतना की वाहिकाएं

अधिक सशक्त होती हैं वे हैं—सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला।

6. सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी के बीच में से होकर गुजरती है, वह मूल में अलग-अलग होती है और सिर के सर्वोच्च भाग में सहस्रदल कमल जैसे आकार में समाहित होती है और यही अग्नि का स्थान है। **वराहोपनिषद्** (पांच, 29, 30) में इसको ज्वलंत और चमकदार बताया गया है और इसे नादरूपिणी कहा गया है। इसे विश्वधारणी (विश्व=ब्रह्मांड और धारणी=सहायक) कहा गया है। इसे ब्रह्मांडी तथा ब्रह्मरंध्र भी कहा जाता है। यही सत्व है। इसीसे साधक को आनंद की प्राप्ति तब होती है जब प्राण इसमें प्रवेश करता है और कालातीत हो जाता है।

हृदय से प्रारंभ होने वाली नाड़ियां

7. **कठोपनिषद्** (छह 16, 17) और **प्रश्नोपनिषद्** (तीन, 6) के अनुसार आत्मा का निवास हृदय में होता है और इसका आकार अंगूठे के बराबर बताया जाता है। इसी में सैकड़ों नाड़ियों का वितरण होता है। **छांदोग्योपनिषद्** (तीन 12, 4) में बताया गया है कि मनुष्य का बाहरी आवरण भौतिक शरीर है, उसका आंतरिक भाग हृदय है (आठ 3, 3) जिसमें आत्मा रहता है। इसी को अंतरात्मा (आत्मा, हृदय और मन), अंतःकरण (विचार, भावना और चेतना का स्रोत) तथा चिदात्मा (तर्क और चेतना की शक्ति) भी कहते हैं।

8. यहां हृदय का तात्पर्य भौतिक और आध्यात्मिक दोनों से भी है। सभी सशक्त श्वास अथवा वायु यहां स्थापित हो जाती है और इससे परे नहीं जाती। यहीं पर प्राण कार्यों को उत्तेजित करते हैं तथा प्रज्ञा (बुद्धि) को सचेत करते हैं। प्रज्ञा विचार, कल्पना और इच्छा शक्ति का स्रोत बन जाता है। जब मन पर नियंत्रण हो जाता है और प्रज्ञा तथा हृदय मिल जाते हैं तो आत्मज्ञान हो जाता है (**श्वेताश्वतरोपनिषद्** चार 17)।

9. इन 101 नाड़ियों में प्रत्येक नाड़ी में से एक सौ सूक्ष्म नाड़ियां निकलती हैं और उनमें से प्रत्येक नाड़ी में 72,000 शाखाएं फूटती हैं। यदि पांचों वायु, प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान) और इन नाड़ियों में साम्य स्थापित हो जाता है तो शरीर पृथ्वी पर स्वर्ग हो जाता है, परंतु साम्य स्थापित न होने पर यह शरीर रोगों की युद्धभूमि बन जाता है।

10. इन 101 नाड़ियों में से केवल चित्रा नाड़ी ही सुषुम्ना नाड़ी के मूल में दो भागों में विभक्त हो जाती है। चित्रा नाड़ी का एक भाग उसके भीतर गति करता है और सहस्रचक्र के ऊपर सर्वोच्च सिर में ब्रह्मरंध्र की ओर प्रसारित होता है। यही परब्रह्म का द्वार है। चित्रा का दूसरा भाग निचले भाग में जननेंद्रिय की ओर वीर्य स्खलन के लिए जाता है। कहा जाता है कि योगी और संन्यासी मृत्यु के समय होश में रहते हुए इसी ब्रह्मरंध्र में से शरीर त्यागते हैं। चूंकि यह द्वार आध्यात्मिक अथवा कारण शरीर में होता है अतः इसे न देखा जा सकता है और न ही नापा जा सकता है। जब प्राण चक्रों में से होकर चित्रा नाड़ी द्वारा ऊपर उठता है तो यह वीर्य में छिपी सृजनात्मक शक्ति ओज को अपने साथ ले जाता है। चित्रा नाड़ी ब्रह्म नाड़ी या

परानाड़ी (सर्वोच्च) में परिवर्तित हो जाती है। ऐसी स्थिति में साधक अपनी वासना की भूख का दमन कर लेता है (वह ऊर्ध्वरेतस् हो जाता है) और सभी प्रकार की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है।

धमनी और शिरा

11. नाड़ियां, धमनियां और शिराएं नलिकाओं रूपी अवयव या नलियां होती हैं जो विभिन्न रूपों में भौतिक और सूक्ष्म शरीर में ही ऊर्जा लाती और ले जाती हैं 'धमनी' शब्द 'धमन' से निकला है जिसका अर्थ 'धौंकनी' होता है। इसका उदाहरण नारंगी है। जिसका वाह्य रूप स्थूल को, झिल्ली सूक्ष्म रूप को और तरल पदार्थ कारण शरीर को दर्शाते हैं। नाड़ियां वायु ले जाती हैं। धमनियां रक्त ले जाती हैं और शिराएं सूक्ष्म शरीर में सशक्त वीर्य संबंधी ऊर्जा का वितरण करती हैं।

12. आयुर्वेद जीवन और आयु का विज्ञान है। आयुर्वेद की पुस्तकों, जिनमें भारतीय औषधिज्ञान की चर्चा की गई है, के अनुसार शिराएं हृदय से निकलती हैं। वे हृदय से हृदय तक रक्त और ओज को प्रवाहित करती हैं। शिराएं हृदय में अपेक्षाकृत मोटी होती हैं और जैसे ही उनमें शाखाएं फूटती हैं वे पत्ते की शिराओं जैसी पतली हो जाती हैं। इनमें से 700 नाड़ियां महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। जिन्हें समान रूप से चार वर्गों में विभाजित किया गया है। और जिनमें से प्रत्येक किसी न किसी देहदोष की पूर्ति करती है: शरीर की समुचित क्रियाओं के लिए वात, अंगों के सामंजस्य के लिए पित्त और जोड़ों की मुक्त गति के लिए कफ, तथा रक्त जो ऑक्सीजन और अपनी शक्तिशाली ऊर्जा के अंश को परिचलित करता है।

नाड़ियां और परिसंचरण

13. **शिवसंहिता** (पांच 52-55) में बताया गया है कि जब भोजन पच जाता है, तो नाड़ियां सूक्ष्म शरीर के पोषण के लिए सर्वोत्तम अंश ले जाती हैं, स्थूल शरीर के लिए सर्वोत्तम अंश और तत्पश्चात् तुच्छ अंश विष्ठा, मूत्र, और पसीने के रूप में विसर्जित होता है।

14. जिस भोजन का उपभोग होता है, वह क्षारान्न में परिवर्तित हो जाता है। यही क्षारान्न कतिपय प्रवाहिनियों द्वारा शरीर में फैल जाता है। इन प्रवाहिनियों को आयुर्वेद की पुस्तकों में स्रोत कहा गया है। स्रोत नाड़ियों का पर्याय है। उनके अनेक कार्य होते हैं क्योंकि वे शक्तिशाली ऊर्जा अथवा प्राण नामक वायु, जल, रक्त और अन्य सामग्री को विभिन्न ऊतकों, मज्जा और स्नायु तक ले जाते हैं तथा वीर्य, मूत्र, विष्ठा और पसीने को विसर्जित करते हैं।

15. श्वसन क्रिया में नाड़ियां, धमनियां और शिराएं दोहरे कार्य करती हैं, एक ओर वे अंदर आने वाली वायु से सशक्त ऊर्जा ग्रहण करती हैं तो दूसरी ओर अवशिष्ट जीव विष को बाहर फेंकती हैं। अंतःश्वास वायुनलिका में से होकर फुफ्फुसों तक जाती है, उसके बाद वह धमनियों में से गुजरती है और फिर शिराओं में प्रवाहित होती है। रक्त ऑक्सीजन से ऊर्जा ले लेता है और नाड़ियों में प्राण की सहायता से धमनियों के

अंदर छान देता है। इस निःसरण की क्रिया से अर्धतरल पदार्थ ओज में परिवर्तित होकर शिराओं में विसर्जित हो जाता है और शिराएं इस ओज को शरीर तथा मस्तिष्क को सशक्त बनाने के लिए वितरित कर देती हैं। उसके बाद शिराएं प्रयुक्त ऊर्जा का विसर्जन करती हैं और कार्बन डाइआक्साइड द्वारा एकत्र हुए जीवविष को धमनियों में लौटा देती हैं जहां से यह जीवविष वायुनलिका में चला जाता है और वहां से श्वास द्वारा बाहर निकल जाता है।

16. **वराहोपनिषद्** (पांच, 30) ने शरीर को 'रत्न' कहा है जो आवश्यक संघटकों (रत्न पूरित-धातु) से भरा होता है। प्राणायाम में आवश्यक संघटक (धातु) को रक्त कहते हैं और इसे रत्न के समान ही द्विगुणित तथा परिशोधित कर लिया जाता है क्योंकि इसमें विभिन्न ऊर्जाओं का शोषण होता है। नाड़ियां, धमनियां और शिराएं गंध, स्वाद (भोजन का तत्व), रूप, ध्वनि और ज्ञान भी प्रवाहित करती हैं। योग से इन सभी को उचित रूप से कार्य करने में सहायता मिलती है, ये सभी प्रणालियां शुद्ध हो जाती हैं, शरीर रोगों से मुक्त हो जाता है और बुद्धि प्रखर हो जाती है, जिससे साधक को अपने शरीर, मन और आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है (**वराहोपनिषद्**, पांच 46-9)।

17. कतिपय नाड़ियां, धमनियां और शिराएं, श्वास-प्रश्वास और परिसंचरण प्रणालियों की धमनियों, शिराओं और कोशिकाओं के समान होती हैं। वे भौतिक और दैहिक क्रिया शरीर की नाड़ीय, लसीका-संबंधी, ग्रंथीय, पाचन और जनन-मूत्रीय प्रणालियों की नाड़ियों, प्रणालिकाओं तथा प्रवाहिकाओं की द्योतक हैं। अन्य नाड़ियां सशक्त ऊर्जा (प्राण) को मानसिक शरीर तक, बौद्धिक ऊर्जा (विज्ञान) को बौद्धिक शरीर तक और आध्यात्मिक ऊर्जा को कारण अथवा आध्यात्मिक शरीर (आत्मा) तक ले जाती हैं। वे विभिन्न ऊर्जाओं की अंतर्वाहिनी और बाह्य वाहिनी का काम करती हैं। कुल मिलाकर उनमें से 59 खरब नाड़ियां स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में प्रवाहित रहती हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शरीर नाड़ियों से भरपूर है।

कुंडलिनी

18. कुंडलिनी दैवी ब्रह्मांडीय ऊर्जा है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'कुंडल' शब्द से हुई है जिसका अर्थ मुद्रिका अथवा कुंडली है। प्रच्छन्न ऊर्जा का प्रतीक साढ़े तीन कुंडलियां लगाए हुए सोता हुआ सांप है; जिसकी पूंछ उसके मुख में रहती है जो नीचे की ओर होता है। वह ऊर्जा सुषुम्ना के खाली आधार पर स्थिर होती है, जो जनेंद्रिय के दो अंगुलि नीचे और गुदा के दो अंगुलि ऊपर होती है।

19. तीन कुंडलियां मन की तीन अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, अर्थात् जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। चौथी अवस्था को तूरीय अवस्था कहते हैं जो अन्य अवस्थाओं का मिलान कराती है तथा उनसे ऊपर उठ जाती है। इस तूरीय अवस्था को अंतिम अर्द्ध कुंडली माना जाता है। यह अवस्था समाधि में प्राप्त होती है।

20. **हठयोग प्रदीपिका** (तीन 1) में बताया गया है कि सर्पराज आदिशेष

ब्रह्मांड को उठाए हुए है, इसी प्रकार कुंडलिनी योग की सभी विद्याओं को समाहित किए रहती है।

21. जो ऊर्जा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना में से होकर गुजरती है, वह विंदु कहलाती है। यह केवल विंदु ही है जिसके न भाग होते हैं और न परिमाण होता है। ये तीनों नाड़ियां क्रमशः चंद्रमा, सूर्य और अग्नि की नाड़ियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'कुंडलिनी' शब्द के प्रयोग में आने से पूर्व 'अग्नि' शब्द को दैवी शक्ति के रूप में प्रयोग किया जाता था जो अग्नि के समान शुद्ध करती है और उत्थान कराती है। योग की विद्या के माध्यम से ऊर्जा प्रवाहित करने वाली सर्पनुमा कुंडलिनी के मुख की दिशा को ऊर्ध्वगामी बना दिया जाता है। यह चित्रा नाड़ी (हृदय से उद्भूत) के माध्यम से सुषुम्ना में से होकर वाष्प के समान ऊपर उठती है जब तक कि सहस्त्रार तक न पहुंच जाए। जब कुंडलिनी की रचनात्मक शक्ति जागृत होती है, इड़ा और पिंगला नाड़ियां सुषुम्ना में समाहित हो जाती हैं, (**शिवसंहिता**, पांच 13)।

22. धातु को जलाकर उसे शुद्ध किया जाता है। योग विद्या की अग्नि से साधक अपने मन के विकारों, तथा, इच्छा, क्रोध, लोभ, प्रेमांधता, गर्व और द्वेष को भस्म कर देता है। उसके बाद उसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है। तत्पश्चात् साधक की आंतरिक प्रच्छन्न शक्ति ईश्वर और गुरु की कृपा से जागृत हो जाती है (**हठयोग प्रदीपिका**, तीन 2)। जैसे-जैसे यह शक्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे वह दैवी शक्ति में लीन हो जाता है। वह कर्मफल की इच्छा से मुक्त (कर्ममुक्त) हो जाता है और जीवन से विरक्त (जीवन-मुक्त) हो जाता है।

23. तंत्रविद्या के ग्रंथों के अनुसार प्राणायाम का उद्देश्य उस प्रच्छन्न शक्ति को जागृत करना है जो कुंडलिनी कहलाती है। यह वह दैवी शक्ति है जो मूलाधार चक्र में रीढ़ के स्तंभ के आधार में स्थित रहती है। मूलाधार चक्र नाड़ियों का वह गुंजाल है जो रीढ़ की हड्डी के मूल में गुदा के ऊपर श्रोणि में स्थित होता है। इस शक्ति को जागृत करना होता है और इसे सुषुम्ना द्वारा मूलाधार चक्र से मस्तिष्क की नाड़ियों के पिंजर रूपी सहस्रदलकमल अर्थात् सहस्रार तक ऊपर उठाना होता है। अंतर्ग्रथित चक्रों में से गुजरने के बाद यह शक्ति अंतिम रूप से सर्वोच्च आत्मा में समाहित हो जाती है। इस बृहत् तरलीय शक्ति का अन्योक्तिपरक वर्णन है। यह शक्ति उड्डीयान, मूल बंध (अध्याय 13) और आत्म संयम से प्राप्त होती है। वासना के दमन के उल्लेख के लिए यह एक प्रतीक मार्ग है।

24. जब कुंडलिनी सहस्रार तक पहुंचती है तो साधक को अपने अस्तित्व का अहसास नहीं होता और उस समय उसके लिए कुछ भी विद्यमान नहीं होता। वह काल और स्थान से परे हो जाता है तथा ब्रह्मांड से एकाकार हो जाता है।

चक्र

25. 'चक्र' का अर्थ पहिया या मुद्रिका है। चक्र चलते हुए पहिए हैं जो रीढ़ की हड्डी के आसपास स्थित महत्वपूर्ण केंद्रों में ऊर्जा का विकिरण करते हैं तथा विभिन्न कोषों को नाड़ियों से मिलाते हैं।

26. जैसे एक एंटीना रेडियो तरंगों को ग्रहण करके रिसीविंग सैट के माध्यम से उनको ध्वनि में परिवर्तित करता है, उसी प्रकार चक्र ब्रह्मांडीय तरंगों को ग्रहण करके उन्हें नाड़ियों, धमनियों और शिराओं के माध्यम से पूरे शरीर में वितरित कर देते हैं। शरीर ब्रह्मांड का प्रतिरूप है जो स्थूल, सूक्ष्म और आध्यात्मिक स्तरों पर पूर्ण ब्रह्मांड के भीतर अणु विश्व होता है।

27. योग की पाठ्य पुस्तकों के अनुसार दो प्रकार की महत्वपूर्ण ऊर्जा शरीर में व्याप्त है, पिंगला नाड़ी के द्वारा विकरित ऊर्जा सूर्य से और इड़ा नाड़ी के द्वारा विकरित ऊर्जा चंद्रमा से उत्पन्न होती है। दोनों ही धाराएं चक्रों के आड़े-तिरछे होती हैं, जो सुषुम्ना नाड़ी के किनारे पर स्थित महत्वपूर्ण केंद्र हैं। सुषुम्ना को अग्नि की नाड़ी कहा जाता है जो रीढ़ की हड्डी में स्थित होती है।

28. शरीर के भीतर उत्पन्न ऊर्जा को संरक्षित करने और उनके क्षय को रोकने के लिए आसन और मुद्राएं, प्राणायाम और बंध निर्धारित किए गए थे। इस प्रकार जो ताप उत्पन्न होता है, वह कुंडलिनी को जागृत करता है। कुंडलिनी अपना सिर ऊंचा करती है, सुषुम्ना में प्रवेश करती है और वह एक के बाद दूसरे चक्र में से होती हुई बलपूर्वक सहस्रार में धकेल दी जाती है।

29. मानव-जीवन-प्रणाली में प्राण की उत्पत्ति और वितरण की तुलना वैद्युत ऊर्जा प्रणाली से की जा सकती है। गिरते हुए जल अथवा उठती हुई वाष्प से उत्पन्न ऊर्जा के द्वारा टर्बाइनों को चुंबकीय क्षेत्र में घुमाकर विद्युत उत्पन्न की जाती है। इसके बाद विद्युत को संग्राहकों में एकत्र कर लिया जाता है और उन ट्रांसफार्मरों की सहायता से विद्युत शक्ति को बढ़ाया या घटाया जाता है जो वोल्टेज अथवा धारा को नियमित करते हैं। इसके बाद विद्युत शहरों में प्रकाश करने तथा मशीनों को चलाने के लिए केबिलों द्वारा भेज दी जाती है। प्राण गिरते हुए जल अथवा उठती हुई वाष्प के समान है। वक्षीय क्षेत्र चुंबकीय क्षेत्र के समान है। पूरक, रेचक और कुंभक की श्वसन क्रियाएं टर्बाइनों के समान हैं और चक्रों को संग्राहक और ट्रांसफार्मर कहा जा सकता है। प्राण द्वारा उत्पन्न ओज विद्युत के समान है जो चक्रों की सहायता से बढ़ाया या घटाया जा सकता है और ऐसी नाड़ियों, धमनियों और शिराओं के सहारे समस्त शरीर में वितरित किया जा सकता है जो प्रेषण-लाइनें कहलाती हैं। यदि उत्पन्न शक्ति का समुचित वितरण न किया जाए तो इससे मशीन और उपकरण दोनों नष्ट हो जाते हैं। यही बात प्राण और ओज के लिए कही जा सकती है क्योंकि वे साधक के शरीर और मन को नष्ट कर सकते हैं।

30. मुख्य चक्र इस प्रकार हैं: (1) मूलाधार (मूल=स्रोत, आधार=सहायता, सशक्त भाग), जो गुदा के ऊपर श्रोणि में स्थित होता है; (2) स्वाधिष्ठान (बृहद् शक्ति का स्थान), जननेंद्रियों के ऊपर स्थित; (3) मणिपूरक, नाभि में स्थित; (4) सूर्य; (5) मनस् (मन) नाभि और हृदय के बीच में; (6) अनाहत (हृदय), हार्दिक क्षेत्र में; (7) विशुद्धि (शुद्ध), ग्रसनी क्षेत्र में; (8) आज्ञा (आदेश), भ्रकुटियों के बीच में; (9) सोम, मस्तिष्क के मध्य चंद्रमा; (10) ललाट, माथे के ऊपर; और (11) सहस्रार जो मस्तिष्क में स्थित होता है और जिसे सहस्रदल कमल कहा जाता है। इनमें से

सबसे प्रमुख मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार चक्र होते हैं।

31. **मूलाधार चक्र** का स्थान पृथ्वी तत्व है और वह गंध का द्योतक है। यह शरीर का पोषक करने वाले अन्नमय कोष का आधार है। इसका संबंध भोजन के शोषण तथा विष्ठा के निष्कासन से है। जब यह चक्र गतिमान होता है तो साधक की जीवन शक्ति दृढ़ हो जाती है और वह ऊर्ध्वरेतस् अर्थात् काम-शक्ति के दमन करने के लिए तैयार हो जाता है।

32. **स्वाधिष्ठान चक्र** का स्थान जल (अप) तत्व में है और यह स्वाद का द्योतक है। जब यह चक्र गतिमान होता है तब साधक रोग से मुक्त हो जाता है और स्फूर्ति-दायक स्वास्थ्य प्राप्त कर लेता है। उसे थकान महसूस नहीं होती और वह मित्रवत् तथा उदार प्रवृत्ति का हो जाता है।

33. **मणिपूरक चक्र** अग्नि-तत्व का स्थान है और जब यह गतिमान होता है तो साधक को शांति मिल जाती है, चाहे परिस्थितियां कितनी ही विपरीत क्यों न हों।

34. स्वाधिष्ठान और मणिपूरक चक्र प्राणायाम अर्थात् भौतिक शरीर के आधार होते हैं। दोनों को एक साथ ही गतिमान होना पड़ता है और वे प्राणायाम में पूरक क्रिया तथा रेचक क्रिया के दौरान अपनी क्रियाओं का समन्वय करते हैं।

35. **सूर्य चक्र** को आमतौर पर सौरजालक कहते हैं। यह नाभि तथा डायाफ्राम के मध्य स्थित होता है। इससे उदरीय अवयव स्वस्थ रहते हैं और आयु बढ़ती है।

36. **मनस् चक्र** सूर्य और अनाहत के बीच में होता है। यह भावना का स्थान है। इससे कल्पना और सृजनता प्रेरित होती है। इसको प्राणायाम से सुस्थिर किया जा सकता है जिसमें कुंभक क्रिया सहायक होती है।

37. **अनाहत चक्र** का स्थान भौतिक और आध्यात्मिक हृदय के क्षेत्र में है। यह वायु तथा स्पर्श का तत्व है।

38. मनस् और अनाहत चक्र भौतिक शरीर (मनोमय कोष) का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों चक्र जब गतिमान होते हैं तब वे हृदय को शक्ति प्रदान करते हैं और भक्ति तथा ज्ञान का विकास करते हैं। वे साधक को सांसारिक सुखों से मुक्त करते हैं और उसे अध्यात्म के मार्ग का अनुसरण करने के लिए समर्थ बनाते हैं।

39. **विशुद्धि चक्र** का स्थान वक्ष के ऊपर गले के क्षेत्र और गर्दन के आधार पर होता है। यह आकाश (ईथर) का तत्व है। यह विज्ञानमय कोष का प्रतिनिधित्व करता है। जब यह गतिमान होता है तब साधक की समझ शक्ति बढ़ जाती है। वह बौद्धिक रूप से सचेत हो जाता है। उसकी वाणी स्पष्ट, स्वच्छ और प्रवाहमयी हो जाती है।

40. **आज्ञा चक्र** आनंदमय कोष का प्रतिनिधित्व करता है। जब यह गतिमान होता है तब साधक अपने शरीर पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लेता है और आध्यात्मिक परिवेश का विकास कर लेता है।

41. **सोम चक्र** शरीर के तापमान को विनियमित करता है।

42. जब **ललाट चक्र** गतिमान होता है, तब साधक अपना भाग्य-विधाता बन जाता है।

43. सहस्रार चक्र सर्वोच्च आत्मा (परब्रह्म) का स्थान है। इसे सहस्रदल (दल=दलों का एक भाग, दलों का अभिप्राय काफी संख्या से है) भी कहते हैं। इसकी स्थिति ब्रह्म नाड़ी अथवा सुषुम्ना के अंत में होती है।

44. जब तक कुंडलिनी शक्ति सहस्रार तक पहुंचती है तब तक साधक सभी बाधाओं को पार कर चुका होता है और मुक्त (सिद्ध) आत्मा बन जाता है। इस अवस्था का वर्णन **षट्चक्रनिरूपण** (श्लोक 40) में शून्यावस्था (शून्य देश) के रूप में किया गया है।

6

गुरु और शिष्य

1. गुरु (शिक्षक) और उसका शिष्य दोनों ही ब्रह्म विद्या से संवंधित हैं। गुरु सर्वप्रथम अपने शिष्य का अध्ययन करता है और उससे यह चर्चा करता है कि वह क्या जानता है जबकि शिष्य भी गुरु का अध्ययन करता है और उस विषय पर विचार करता है जिसकी उसे शिक्षा दी जा रही है। इसके बाद शिष्य तप की अवधि को उस समय तक वढ़ाता रहता है जब तक उसे विषय का पूर्ण ज्ञान न हो जाए। प्रथम अनुभव के फलस्वरूप समयानुसार उसकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है और गुरु तथा शिष्य दोनों मिलकर इसकी खोज करते हैं।

2. गुरु संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति दो धातुओं से हुई है। 'गु' का अर्थ अंधकार और 'रु' का अर्थ प्रकाश है। पवित्र ज्ञान के शिक्षक के रूप में गुरु अज्ञान का अंधकार हटाता है और अपने शिष्य को प्रकाश तथा सत्यता की ओर ले जाता है। गुरु ही ऐसा व्यक्ति है जिससे हम शुद्ध आचरण सीखते हैं अथवा जिसके अधीन शिष्य यह सीखता है कि अच्छा जीवन किस प्रकार विताया जाए। घृणा से मुक्त होकर वह सत्य की व्यापक खोज करता है। वह अपने आध्यात्मिक ज्ञान को व्यवहार में वदलता है। वह केवल सैद्धांतिक स्तर पर ही नहीं अपितु उदाहरण देकर यह वताता है कि उसने क्या अनुभव किया है और वैसा ही जीवन विताता है जिसका वह उपदेश देता है। गुरु को (क) अभिज्ञान और ज्ञान में स्पष्ट होना चाहिए; (ख) आध्यात्मिक व्यवहार अर्थात् अनुष्ठान नियम से करना चाहिए; (ग) सतत अभ्यास करना चाहिए और उसमें दृढ़ रहना चाहिए; (घ) कर्मफल की इच्छा से मुक्त (कर्मफल त्यागी अथवा विरक्त) होना चाहिए; और (ङ) शिष्यों का परतत्त्व के विषय में मार्ग-दर्शन करने के लिए वह जो करे, उसमें उसे शुद्ध होना चाहिए। वह अपने शिष्यों को बताता है कि किस प्रकार वे अपने संवेगों और बुद्धि को अपने भीतर की ओर मोड़ें ज़िससे वे अपने को जान सकें और अपने अस्तित्व के कारण आत्मा तक पहुंच सकें। गुरु जीवात्मा और परमात्मा के मध्य सेतु है।

3. गुरु-शिष्य के संबंधों के शास्त्रीय उदाहरण **कठोपनिषद्** और **भगवद्गीता** में दिए गए हैं। **कठोपनिषद्** में मृत्यु का देवता, यम, उस निष्ठावान् जिज्ञासु नचिकेता

को आध्यात्मिक ज्ञान देता है जिसने बिना किसी हिचक के, उत्साह से मृत्यु का सामना किया। **भगवद्गीता** में श्रीकृष्ण उस शक्तिवान् धनुषधारी अर्जुन के संदेहों और दुःख का निवारण करते हैं जो सही लक्ष्य और विनम्रता के कारण जीवन के सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त कर सका था।

4. ऋषि नारद ने रत्नाकर जैसे डाकू की शक्ति और उर्जा को ईश्वरोन्मुख कर दिया। अंततोगत्वा यह डाकू ऋषि बाल्मीकि हो गए जिन्होंने बाद में **रायमाण** जैसे महाकाव्य की रचना की। दृष्टांत के रूप में **रामायण** में शरीर की तुलना उस लंका से, जिस पर रावण का राज था, की गई है, और दस सिर वाले रावण की तुलना गर्वित अहंकार से की गई है। रावण के दस सिर ज्ञान और कर्म के अवयव हैं जिनकी इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है; द्वीप के चारों ओर महासागर के समान सीता एकाकी आत्मा अथवा प्रकृति के समान है जिन्हें रावण के भोग-विलास के उद्यान अशोक-वन में बंदी रखा गया है। सीता अपने स्वामी राम से बलपूर्वक अलग किए जाने से अति दुःखी और निराश है और लगातार अपने स्वामी के बारे में ही सोचती रहती हैं। राम अपने दूत वायुपुत्र (सशक्त वायु) हनुमान को सीता के पास सांत्वना देने और उनको धैर्य बंधाने के लिए भेजते हैं। हनुमान रावण अर्थात् अहं के विनाश में सहायक होते हैं और सीता तथा राम (प्रकृति और पुरुष; जीवात्मा और परमात्मा) का पुनर्मिलन कराते हैं। जिस प्रकार हनुमान ने सीता और राम का पुनर्मिलन कराया, उसी प्रकार प्राणायाम साधक का उसकी आत्मा से पुनर्मिलन कराने में सहायक साधन है।

5. प्रारंभ में गुरु स्वयं को अपने शिष्य के स्तर पर लाता है जिसे वह उत्साहित करता है और धीरे-धीरे उसे उपदेश और उदाहरण द्वारा समझाते हुए ऊपर उठाता है। छात्र की योग्यता और परिपक्वता के अनुकूल उस समय तक गुरु शिक्षा देता है जब तक शिष्य गुरु के समान निर्भीक और स्वतंत्र न हो जाए। जिस प्रकार बिल्ली अपने अंधे और विवश बच्चे को मुंह में दबाए रहती है उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाते हैं और उसे अपनी मर्जी से कुछ करने का बहुत कम अवसर देते हैं। दूसरी अवस्था में गुरु शिष्य को उसी प्रकार की स्वतंत्रता देते हैं जैसे कोई बंदरिया अपने बच्चे को तभी स्वतंत्र करती है जब वह बच्चा उसके बालों को छोड़ने लगता है किंतु फिर भी वह उसे अपने पास ही रखती है। पहली अवस्था में शिष्य बिना कोई प्रश्न करते हुए गुरु की आज्ञा का पालन करता है और दूसरी अवस्था में वह अपनी इच्छा को पूर्णतया समर्पित कर देता है। तीसरी अवस्था में अपलक नेत्रों वाली मछली के समान वह अपने मन, वचन और कर्म से चतुर और स्पष्ट हो जाता है।

6. शिष्य तीन प्रकार के हो सकते हैं : अल्पमति, सामान्य और अधिमात्र अथवा श्रेष्ठ। अल्पमति शिष्य कम उत्साही, भोगविलासी, अस्थिर और कायर होता है। वह अपने अवगुणों को दूर करने के लिए अथवा आत्मज्ञान के लिए कठिन परिश्रम नहीं करना चाहता है। दूसरे प्रकार का शिष्य दोलायमान होता है। वह सांसारिक पदार्थों की ओर और आध्यात्मिकता की ओर समान रूप से आकर्षित होता है। वह कभी किसी एक को महत्व देता है तो कभी दूसरे को महत्व देने लगता है। वह जानता है

कि सर्वोच्च गुण क्या है लेकिन उसको दृढ़ता से पकड़ने के लिए उसमें साहस और दृढ़ निश्चय की कमी होती है। उसे अपने अस्थिर स्वभाव को सही करने के लिए सशक्त उपचार की आवश्यकता होती है और जिसे गुरु जानता है। अधिमात्र (उत्तम) अथवा श्रेष्ठ (सर्वोत्तम) शिष्य दूरदृष्टा, उत्साही और साहसी होता है। वह प्रलोभनों से बचता है और उन तमाम वस्तुओं को छोड़ने में कोई हिचक नहीं करता जो उसकी लक्ष्य प्राप्ति में बाधक होती हैं इसलिए वह शांत, चतुर और स्थिर हो जाता है। गुरु इस बात का सदा ध्यान रखता है कि वह अपने उत्तम शिष्य के मार्गदर्शन का ऐसा कोई उपाय खोज सके जिससे वह अपने शिष्य की सर्वोत्तम क्षमता का उस समय तक अनुभव कर सके जब तक कि शिष्य सिद्धात्मा न हो जाए। गुरु सदैव अपने उस शिष्य से प्रसन्न रहता है जो अंततोगत्वा अपने गुरु से आगे बढ़ जाता है।

7. एक सुयोग्य शिष्य को ईश्वर की दया से ही गुरु मिलता है। सत्यकाम-जाबालि ने यह स्वीकार किया है कि उसे अपने माता-पिता का ज्ञान नहीं था और ऋषि गौतम ने उसके भोलेपन और सत्यता से प्रभावित होकर ही उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। इसके विपरीत श्वेतकेतु कई वर्षों के अध्ययन के बाद बड़े गौरव से अपने घर वापस लौटे थे लेकिन वह अपने पिता उद्दालक के इस प्रश्न का उत्तर देने में असफल रहे थे कि एक लघु बीज से इतना विशाल वृक्ष कैसे बनता है। जब श्वेतकेतु ने अधिक नम्रता से अपनी अज्ञानता को स्वीकार किया तो उसके पिता ने उसे अपना शिष्य बना लिया और उसे आध्यात्मिक ज्ञान दिया। एक शिष्य को आध्यात्मिक ज्ञान और आत्म-नियंत्रण की तीव्र लालसा होनी चाहिए। उसे अधिक ध्यानपूर्वक लगातार अभ्यास करना चाहिए और अधिक सहनशील होना चाहिए।

8. साधना (आध्यात्मिक प्रशिक्षण) का सैद्धांतिक अध्ययन से कोई संबंध नहीं है परंतु इससे जीवन का एक नया मार्ग प्रशस्त हो जाता है। जिस प्रकार कुचले जाने पर सरसों के बीज तेल प्रदान करते हैं और जल जाने पर लकड़ी प्रच्छन्न अग्नि उत्पन्न करती है, उसी प्रकार शिष्य को भी अनवरत अभ्यास से अपने में प्रच्छन्न ज्ञान को प्रकाश में लाना चाहिए और अपने को पहचानना चाहिए। जब वह अनुभव कर लेता है कि संपूर्ण विश्व भर में प्रज्वलित दैवी अग्नि की वह स्वयं एक चिनगारी है तब उसके अतीत के सभी संस्कार नष्ट हो जाते हैं और वह प्रबुद्ध हो जाता है तथा अपने ही गुणों से एक गुरु का स्थान प्राप्त कर लेता है।

7

भोजन

1. **महानारायणोपनिषद्** (79-15) में यह बताया गया है कि भोजन (अन्न) एक प्रमुख आवश्यकता है जिसके विना मनुष्य अपने शरीर का विकास आध्यात्मिक स्तर पर नहीं कर सकता। यह कहा जाता है कि सूर्य ताप का विकिरण करता है जिससे जल वाष्प बन जाता है। यही वाष्प बादल बन जाते हैं जिससे पृथ्वी पर वर्षा होती है। आदमी जमीन जोतता है और अन्न पैदा करता है। जब इस अन्न का उपभोग होता है तो ऊर्जा पैदा होती है; जिससे शक्ति बनी रहती है। शक्ति से अनुशासन उत्पन्न होता है। अनुशासन उस विश्वास का विकास करता है जो ज्ञान प्रदान करता है, ज्ञान से शिक्षा मिलती है जिससे एकाग्रता आती है और यह एकाग्रता शांति उत्पन्न करती है। इस शांति से चित्त की स्थिरता प्राप्त होती है जिससे स्मरण शक्ति का विकास होता है। इस स्मरण शक्ति से ज्ञान अर्जित करने में प्रोत्साहन मिलता है; यह ज्ञान ऐसे न्याय की ओर अग्रसर करता है जो 'आत्मा' की अनुभूति की ओर ले जाता है।

2. शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है। इसमें कार्वोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज लवण का सही संतुलन होना चाहिए। जल पाचन और घुलमिलने में सहायता करने के लिए आवश्यक होता है। भोजन पोषक तत्व के रूप में अंततोगत्वा पूरे शरीर में विभिन्न रूपों में घुल मिल जाता है।

3. भोजन शरीर के लिए पौष्टिक, स्वादिष्ट और अनुकूल होना चाहिए। भोजन केवल इंद्रियों के सुख के लिए ही नहीं करना चाहिए। मोटे तौर पर भोजन को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है—सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक भोजन आयु, स्वास्थ्य और प्रसन्नता में वृद्धि करता है, राजसिक भोजन से उत्तेजना बढ़ती है और तामसिक भोजन रोग पैदा करता है। राजसिक और तामसिक भोजन चेतना को मंद बना देते हैं और आध्यात्मिक प्रगति में गतिरोध पैदा करते हैं। साधक का यह कर्तव्य है कि प्रयत्न और अनुभव से यह पता करें कि उसके लिए किस प्रकार का भोजन उपयुक्त रहेगा।

4. यह सत्य है कि भोजन से चरित्र प्रभावित होता है और इसके साथ ही साथ

यह भी सत्य है कि प्राणायाम के अभ्यास से साधक की भोजन संबंधी आदतों में भी परिवर्तन हो जाता है। मनुष्य का स्वभाव उसकी खुराक से प्रभावित होता है। जो कुछ भी वह खाता है, उसका उसके मन पर प्रभाव पड़ता है। विक्षिप्त मन वाले घृणा की प्रकृति वाले दुष्ट व्यक्ति सात्विक निरामिष भोजन लेने पर भी राजसिक और तामसिक बने रहते हैं। इसी प्रकार उज्ज्वल चरित्र वाले व्यक्ति (यथा बुद्ध या ईसामसीह) ऐसे भोजन से प्रभावित नहीं होते जो उन्हें दिया जाता है अथवा ऐसे व्यक्तियों से भी प्रभावित नहीं होते जो उन्हें देते हैं यद्यपि वे व्यक्ति साधारणतया तामसिक समझे जाते रहे होंगे। वस्तुतः भोजन करने वाले के मन की स्थिति ही है जो महत्वपूर्ण समझी जाती है फिर भी सात्विक भोजन वाली खुराक ही साधक की सहायता करती है जिससे वह अपना मन स्वच्छ और स्थिर बना सकता है।

5. शरीर जीवात्मा का आवास है। यदि भोजन के अभाव में शरीर नष्ट हो जाता है तो आत्मा उस शरीर को इस प्रकार छोड़ देता है जैसे कोई किरायेदार टूटे हुए घर में अधिक समय तक रहने के लिए तैयार नहीं होता है। अतः शरीर की रक्षा की जानी चाहिए ताकि 'आत्मा' उसमें रह सके। शरीर के प्रति लापरवाही बरती जाने पर मृत्यु हो जाती है और आत्मा शरीर त्याग देता है।

6. **छांदोग्योपनिषद्** (छह 7.2) के अनुसार विशुद्ध भोजन, तरल पदार्थ और वसा शरीर को पुष्ट बनाते हैं। इनमें से प्रत्येक पदार्थ उपभोग के बाद सोलह भागों में विभाजित हो जाता है। इनमें से भोजन तीन भागों में विभाजित होता है। भोजन का स्थूल भाग विष्ठा, मध्यम भाग मांस और सूक्ष्म भाग मन बन जाता है। इन सभी का क्रमशः अनुपात 10/15, 5/16 और 1/16 रहता है। तरल पदार्थों में स्थूल भाग मूत्र, मध्यम भाग रक्त और सूक्ष्म भाग उर्जा (प्राण) बन जाता है। इसी प्रकार वसा का स्थूल भाग हड्डी, मध्यम भाग मज्जा और सूक्ष्म भाग वाणी (वाक्) बन जाता है। श्वेतकेतु पंद्रह दिन तरल पदार्थ लेकर रहे और उन्होंने अपनी विचार शक्ति को खो दिया लेकिन जैसे ही उन्होंने फिर विशुद्ध भोजन शुरू किया तो अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। जब वह बिना वसा के रहने लगे तो उनकी वाक् शक्ति कम हो गई। इस अनुभव से उन्हें यह पता लगा कि भोजन का परिणाम मन है, तरल पदार्थों से उर्जा मिलती है और वसा से वाक् शक्ति प्राप्त होती है।

7. **हठयोग प्रदीपिका** (11.14) में कहा गया है कि साधक को प्राणायाम के अभ्यास के दौरान दूध और शुद्ध मक्खन में पकाया हुआ चावल खाना चाहिए। जब वह प्राणायाम में सुस्थिर हो जाए तब उसे अपने शरीर और अपने अभ्यास के अनुकूल भोजन करना चाहिए।

8. जब तक मुंह में लार का प्रवाह न हो उस समय तक कुछ भी नहीं खाना चाहिए क्योंकि इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर को अधिक खाने की आवश्यकता नहीं है। भोजन की मात्रा और गुणवत्ता दोनों ही संतुलित होनी चाहिएं। चुना हुआ भोजन सुरुचिपूर्ण और स्वादिष्ट तो हो सकता है लेकिन वह साधक के लिए अच्छा नहीं हो सकता। यह अधिक पौष्टिक हो सकता है फिर भी इससे विषाक्त अणु पैदा हो सकते हैं जो प्राणायाम की प्रगति में बाधा बन सकते हैं। वस्तुतः जब व्यक्ति

भूखा या प्यासा हो तो भोजन उसके शरीर में शीघ्र घुल-मिल जाता है और पौष्टिक सिद्ध होता है। स्वाभाविक प्यास सदैव जल से ही बुझती है किसी अन्य पदार्थ से नहीं। कृत्रिम भूख और प्यास से सदा बचना चाहिए। योग की पुस्तकों में कहा गया है कि साधक को आधा पेट विशुद्ध भोजन और एक चौथाई पेट तरल पदार्थों से भरना चाहिए और शेष एक चौथाई भाग खाली छोड़ देना चाहिए ताकि श्वास उन्मुक्त रूप से प्रवाहित हो सके।

9. जिस समय साधक मानसिक रूप से परेशान हो उस समय उसे कुछ भी नहीं खाना चाहिए। भोजन करते समय ढंग से बात करनी चाहिए और बुद्धिमत्ता से खाना चाहिए। इस समय यदि मन में उच्च विचार रहें तो विषाक्त भोजन के अतिरिक्त सभी कुछ सात्विक बन सकता है।

10. पाचन की अग्नि उस उर्जा से प्रज्वंलित की जा सकती है जो श्वास-प्रश्वास क्रिया से उत्पन्न होती है। हल्का और पौष्टिक भोजन, शक्ति, बल और सतर्कता बनाए रखने के लिए आवश्यक है। उपवास से बचना चाहिए।

11. **तैत्तरीयोपनिषद्** के अनुसार भोजन ब्रह्म है। इसका आदर करना चाहिए और इसका न तो उपहास करना चाहिए और न दुरुपयोग ही।

8

बाधाएं और सहायक साधन

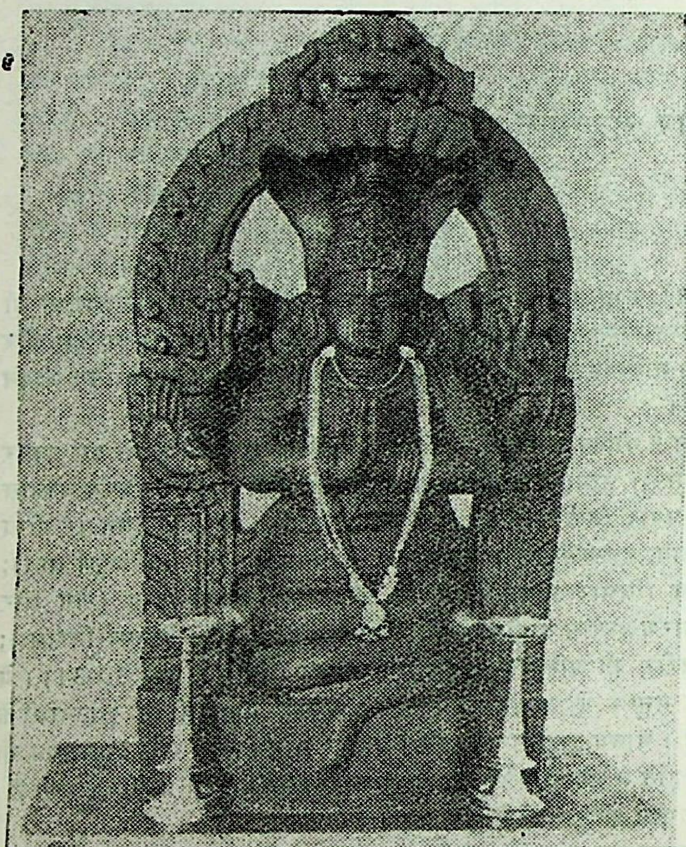
1. साधक को उन सभी बाधाओं से अवगत होना चाहिए जो उसके अभ्यास को जाने-अनजाने अस्त-व्यस्त कर सकती हैं। उसे अवरोधों को दूर करना चाहिए और अपने शरीर तथा मस्तिष्क को इस योग्य बनाना चाहिए कि वह एक अनुशासित जीवन व्यतीत कर सके।

2. पतंजलि ने यौगिक अभ्यासों में बाधाओं की एक सूची दी है जो इस प्रकार हैं: व्याधि (बीमारी), स्त्यान (मानसिक स्थिरता की कमी); संशय (अपने अभ्यास के प्रति संदेह); प्रमाद (तर्क का अभाव); आलस्य (सुस्ती); अविरति (मन पर भोग्य वस्तुओं का प्रभाव; इच्छाओं का जागृत होना), भ्रांति-दर्शन (झूठा या अपूर्ण ज्ञान); अलब्ध-भूमिकत्व (विचार प्रवाह या ध्यान की कमी); अनवस्थितत्व (रोग और असफलता के कारण अभ्यास जारी रखने की असमर्थता; दुःख (दर्द); दुर्मनस्य (निराशा); अंगमेजयत्व (शरीर की अस्थिरता); श्वास-प्रश्वास। (**योगसूत्र**, एक 30-31)। ये बाधाएं या तो मनुष्य में उत्पन्न होती हैं या प्राकृतिक आपदाओं या दुर्घटनाओं के कारण आती हैं। मानव द्वारा उत्पन्न क्लेश अधिक भोग-विलास और अनुशासन की कमी के कारण होते हैं और ये क्लेश साधक के शरीर और मन को प्रभावित करते हैं। इनके समाधान योग की पुस्तकों में दिए गए हैं।

3. यह बात ध्यान देने योग्य है कि पतंजलि ने यौगिक अभ्यासों में जिन तेरह बाधाओं का उल्लेख किया है उनमें से केवल चार बाधाएं भौतिक शरीर के संबंध में हैं अर्थात् व्याधि, आलस्य, शरीर की अस्थिरता और श्वास-प्रश्वास। शेष नौ बाधाएं मन से संबंधित हैं। ऋषि ने साधक को इस योग्य बनाने के लिए आसनों का उल्लेख किया है जिनके अभ्यास से वह बाधाओं से मुक्त हो सकता है जो उसके भौतिक शरीर को प्रभावित करती हैं और यह स्थिति प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मानसिक बाधाओं को दूर करने से पहले ही प्राप्त कर लेनी चाहिए।

4. **हठयोग प्रदीपिका** (एक 16) में छह बाधाओं का उल्लेख किया गया है जो योगाभ्यासों को नष्ट कर देती हैं, यथा, अधिक भोजन करना, अधिक थकना, व्यर्थ की बातें करना, अनुशासनहीन चाल-चलन, कुसंगति और अस्थिरता भरी बेचैनी।

भगवद्गीता (छह 16) के अनुसार योग उन व्यक्तियों के लिए नहीं है जो अत्यधिक भोजन करते हैं, भूखे रहते हैं, खूब सोते हैं या बहुत अधिक जागते हैं। **योग उपनिषदों** में अशुद्ध शारीरिक आसन और आत्म-विनाश करने वाले संवेग, यथा, काम, क्रोध, भय, लोभ, घृणा और द्वेष को सम्मिलित किया गया है।



महर्षि पतंजलि

5. शिष्य को अपने प्रशिक्षण को बराबर चलाए और बनाए रखने केलिए विश्वास पौरुष, स्मरणशक्ति, समाधि और प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। (**योगसूत्र**, एक 20)।

6. इन बाधाओं पर विजय पाने के लिए पतंजलि ने चतुर्मुखी उपाय सुझाया है कि सभी के साथ एकता और मित्रता की भावना रखें; नेकी अर्थात् आहत व्यक्ति के दुःख निवारण के लिए करुणापूर्ण कार्य करें; अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए अच्छे कार्य के प्रति प्रसन्नता जताएं और घृणा अथवा दुर्गुणों से ग्रस्त व्यक्तियों से अधिक बड़े होने की भावना से बचें। **हठयोग प्रदीपिका** में उत्साह, साहस, दृढ़ता, सत्यज्ञान, निश्चय और वैराग्य के बारे में सुझाव दिया गया है। उसमें यह भी कहा गया है कि मनुष्य को

विश्व में रहना ही है, विश्व का नहीं बनना है। उपरोक्त सभी लक्षण योग के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के साधन हैं।

7. **भगवद्गीता** (छह 17) में कहा गया है कि योग से सभी दुःख और शोक का निवारण हो जाता है, क्योंकि योग भोजन और विश्राम को नियंत्रित करता है, काम करने का समय नियमित करता है तथा निद्रा और जागरण में सही संतुलन स्थापित करता है। बुद्धिमत्तापूर्वक कार्य करना और कुशलता से सक्रिय शांत एवं अनुशासित जीवन बिताना ही योग है। साधक के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि वह एकाग्रचित और समर्पित होकर अभ्यास करे (**योगसूत्र** एक 32)।

9

प्राणायाम के प्रभाव

1. आसन से पूरे शरीर के अंग यथा सिर, धड़ और अन्य अवयवों में रक्त-संचलन शुद्ध होता है।

2. जो आसन टांगों और बांहों को समुचित स्थिति में रखते हैं वे परिसंचरण पद्धति को सक्रिय बनाते हैं। धमनी, कोशिका, शिरा और लसीका संबंधी परिसंचरण उन मांसपेशियों के लयात्मक संकुचन और विश्रांति से उत्तेजित होता है जो नवीन और अप्रयुक्त संवहनीय परत को खोलकर पंपों जैसा कार्य करती हैं। इससे ऊर्जा की समुचित आपूर्ति और उपयोग होता है तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है।

3. यद्यपि आसन धड़ में प्रभाव उत्पन्न करते हैं, तथापि प्राणायाम फुफ्फुसों के लयात्मक प्रसार को प्रभावित करता है जिससे गुर्दों, उदर, यकृत, तिल्ली, आंतों, त्वचा तथा अन्य अवयवों और इसके साथ ही साथ धड़ की सतह पर शरीर के पदार्थों का समुचित परिसंचरण होता है।

4. फुफ्फुस का प्रत्यक्ष संबंध अशुद्ध रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन से है और इसके साथ ही साथ फुफ्फुस अमोनिया, कीटोन (कार्बनिक यौगिक) और दुर्गंध-युक्त अमीनो अम्ल को विषाक्त परतें बनाने से बचाते हैं। फुफ्फुसों को रक्त और लसीका के प्रभावी परिसंचरण द्वारा बैक्टीरिया से उत्पन्न रोगों से मुक्त और स्वच्छ रखने की आवश्यकता है।

5. यकृत के कार्य यकृती-धमनीय धारा पर निर्भर होते हैं जो व्यर्थ पदार्थों को रासायनिक परिवर्तन के लिए अपने साथ लाती है ताकि वे पित्त और मूत्र के साथ निष्कासित हो सकें। यह प्रतिहार-शिरा-परिसंचरण पर भी निर्भर करता है ताकि उदर और छोटी आंतों से रक्त ला सके और वह रक्त विषाक्त तथा बैक्टीरिया से भरे उत्पादों को अलग करके रक्त को छान कर शुद्ध बनाया जा सके। यकृत (लीवर) में लसीका परिसंचरण भी रहता है। यकृत उन अपमार्जक कोशिकाओं की आपूर्ति करता है जो रक्त लसीका में भ्रमण करती हैं और ठोस व्यर्थ पदार्थों, बाह्य कोशिकाओं और उनके उत्पादों को कुचलने अथवा भंडारन के लिए चुनती हैं। प्राणायाम के अभ्यास से ये सभी क्रियाकलाप तीव्र गति से होते हैं।

6. गुर्दे की बाहरी खाल में से धमनीय रक्त प्रचुर मात्रा में लगातार छनता रहता है जिस पर गुर्दों में मूत्र का बनना निर्भर करता है। इस प्रवाह पर प्रतिद्वंद्वी मांगों का प्रभाव पड़ता है और यह प्रायः बहुत कम हो जाता है। गुर्दे की बाहरी खाल से रक्त के अलग होने की प्रवृत्तियों का छोटी-छोटी धमनियां अपने स्वचालित प्रवाह से प्रतिकार करती हैं। यह प्रक्रिया समुचित अंतःवृक्क-दबावों पर निर्भर करती है और इसलिए वृक्कों की सही स्थिति, आकृति और तनाव की अवस्था को प्राप्त करने के लिए प्राणायाम से सहायता मिल सकेगी। पेट और पीठ की मांसपेशियों में क्रमावस्थीय क्रिया से आंतरिक मालिश वृक्क-लसीका-प्रवाह को उत्तेजित करेगी जो गुर्दे को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है।

7. प्राणायाम में डायाफ्राम और उदरीय मांसपेशियों का लयात्मक उपयोग आंतों के तरंगीय और खंडीय संचलनों को सीधे ही तीव्र करता है तथा इसके साथ ही आंतों के परिसंचरण को भी प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार यह आंतों को भोज्य पदार्थों के पाचन की क्रियाओं तथा ठोस अपशिष्ट पदार्थों, यथा मुख्य रूप से न पचा हुआ भोजन तथा बैक्टीरिया के उत्पादों, को बाहर निकालने में मदद करता है। इसके साथ ही यह यकृत, क्लोम और आंतों से निकलने वाले स्राव के अवशेष को रखने वाले उत्पाद को भी निकाल बाहर करने में सहायक होता है।

8. बाएं डायाफ्राम के ठीक नीचे तिल्ली होती है जो प्रयुक्त ऑक्सीजन ले जाने वाली लाल कोशिकाओं में होने वाले रक्त को शुद्ध करने के लिए फिल्टर का कार्य करती है। अधिकांशतः तिल्ली द्वारा रक्त-परिसंचरण लसीकीय संरचनाओं के भीतर ही होता है और इसे प्राणायाम द्वारा तेज किया जाता है।

9. प्राणायाम से शुद्ध रक्त के प्रवाह के अनुरक्षण में सहायता मिलती है। इससे नाड़ियां, मस्तिष्क, मेरुदंड और वक्षीय मांसपेशियों में तालमेल बना रहता है। इस प्रकार उनकी क्षमता बनी रहती है।

10. स्वेद ग्रंथियां सहायक लघु वृक्क का कार्य करती हैं। यह स्थिति विशेषकर उस समय होती है जब प्राणायाम से उत्तेजना मिलती है।

11. योग की पुस्तकों के अनुसार प्राणायाम का नियमित अभ्यास रोगों को दूर करता है और उनका समाधान करता है। परंतु अनुचित अभ्यास दमा, उच्च रक्तचाप, हृदय, कानों और नेत्रों में दर्द, जीभ के सूखने और श्वसनिकाओं के सख्त होने का कारण बन जाता है (**हठयोग प्रदीपिका,** दो 16-17)।

12. प्राणायाम से नाड़ियां शुद्ध हो जाती हैं, इससे भीतरी अवयवों और कोशिकाओं की रक्षा होती है, और यह दुग्धीय अम्ल को निष्प्रभावी करता है जिसके कारण थकान पैदा होती है। किंतु प्राणायाम के अभ्यास से यह थकान शीघ्र ही मिट जाती है।

13. प्राणायाम से पाचन शक्ति, वीर्य, शक्ति, प्रत्यक्ष ज्ञान और स्मरणशक्ति बढ़ती है। इससे मन शरीर के बंधन से मुक्त होता है, बुद्धि प्रखर होती है और आत्मा को प्रकाश मिलता है।

14. सीधे मेरुदंड की तुलना उस काले नाग से की जा सकती है जिसने अपना

फन उठा रखा है। मस्तिष्क फन है, दांत प्रत्यक्ष ज्ञान के अवयव, और बुरे विचार तथा वासनाएं विषग्रंथियां हैं। प्राणायाम के अभ्यास से संवेग और वासनाएं शांत हो जाती हैं। इस प्रकार मन अतिपवित्र अथवा विचारों से मुक्त (निर्विषय) हो जाता है। साधक के मन, वचन ओर कर्म स्वच्छ और पवित्र हो जाते हैं। वह अपने शरीर में दृढ़ता (अचलता) और बुद्धि में स्थिरता बनाए रखता है।

15. अभ्यास से ही शक्ति और ज्ञान मिलता है। दैनिक अभ्यास से सफलता और पूर्ण चेतना निश्चित हो जाती है जो साधक को मृत्यु के भय से मुक्त करती है (**शिवसंहिता** चार 17-18)।

16. साधक शांति की अवस्था का अनुभव करता है। वह न तो अतीत के बारे में सोचता है और न भविष्य के बारे में सोचकर भयभीत ही होता है बल्कि वर्तमान में ही जीता है। जब वह पद्मासन में बैठकर प्राणायाम को भलीभांति सीख लेता है तो **हठयोग प्रदीपिका** (1.49) के अनुसार मुक्तात्मा होने के लिए तैयार हो जाता है।

17. जिस प्रकार वायुमंडल में से धुंआ और अशुद्ध वस्तुओं को वायु निकाल बाहर करती है और उसकी आंशिक गुणवत्ता इसको जलाने तथा उस क्षेत्र को शुद्ध करने के लिए है इसी प्रकार प्राणायाम दैवी अग्नि है जो अवयवों, ज्ञानेंद्रियों, मन, बुद्धि और अहं को स्वच्छ करती है।

18. जिस प्रकार उदित होता हुआ सूर्य शनैः-शनैः रात्रि के अंधकार को हटाता जाता है उसी प्रकार प्राणायाम अशुद्धताओं को हटाते हुए साधक को शुद्ध करता है तथा उसके शरीर और मन को इस प्रकार तैयार करता है कि वह धारण और ध्यान के योग्य बन जए। (**पतंजलि योगसूत्र,** दो 52, 53)

19. प्राणायाम 'आत्मानुभूति' का एक वातायन है। यही कारण है कि इसे महातपस और ब्रह्मविद्या कहा जाता है।

खंड 2

प्राणायाम की कला

10

संकेत एवं सावधानियां

1. जिस प्रकार सर्पों के स्वामी आदिशेष योग के समर्थक हैं (**हठयोग प्रदीपिका** तीन 1) उसी प्रकार प्राणायाम योग का हृदय है। प्राणायाम के बिना योग मृत समान है।

2. श्वास की सामान्य दर प्रति मिनट 15 और प्रति 24 घंटों में 21,600 बार होती है फिर भी यह संख्या व्यक्ति के जीवनयापन, स्वास्थ्य और भावावेगों के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। चूंकि प्राणायाम से प्रत्येक व्यक्ति के अंत:श्वास और बाह्यश्वास के समय में वृद्धि होती है अत: वृद्ध होने की प्रक्रिया में धीमापन आ जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से आयु बढ़ जाती है।

3. वृद्धावस्था में श्वसन क्रिया मंद हो जाती है जिसका कारण यह है कि फुफ्फुसों की वायु कोशिकाएं संकुचित हो जाती हैं अत: अपने साथ कम ऑक्सीजन खींच पाती हैं। प्राणायाम से इनके आकार को साधारण बनाए रखने में तथा शरीर के सभी भागों में रक्त कणिकाओं के परिसंचरण में मदद मिलेगी और समस्त शरीर में जीवन और शक्ति का संचार होगा। प्राणायाम के अभ्यास से वृद्ध लोग भी अपनी वृद्धा-वस्था की प्रक्रिया की गति धीमी कर सकते हैं।

4. शरीर धर्म और कुरु (विपत्ति) का क्षेत्र है। प्रथम अवस्था में इसका उपयोग भलाई के लिए होता है और बाद की अवस्था में बुराई के लिए। यह क्षेत्र है और आत्मा उसका क्षेत्रज्ञ है। प्राणायाम इन दोनों के मध्य बंध है।

5. प्राणायाम में श्वसन क्रिया सदैव नासिका द्वारा होनी चाहिए किंतु इसका अपवाद भी है जैसाकि अध्याय 24 में बताया गया है।

अधिकारी के लिए योग्यताएं

6. वर्णों पर अधिकार होने से भाषा पर अधिकार हो सकता है। इसी प्रकार प्राणायाम आध्यात्मिक ज्ञान का मूल है जो आत्म ज्ञान होता है।

7. आसनों पर दक्षता प्राप्त कर लेने के बाद ही दूसरा कदम प्राणायाम पर निपुणता प्राप्त करना है। इसका कोई छोटा एवं सरल मार्ग नहीं है।

8. आसन फुफ्फुसों के तंतुओं में लोच उत्पन्न कर देते हैं ताकि प्राणायाम की साधना अच्छी हो सके ।

9. शरीर में नाड़ियों की कुल लंबाई लगभग 6 हजार मील होती है। उनके कार्य बहुत ही नाजुक होते हैं। अतः इन नाड़ियों को स्वच्छ तथा साफ रखने के लिए अधिक देखभाल और ध्यान की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रकार के आसनों में से प्रत्येक को अधिक समय तक और बार-बार करते रहने से तंत्रिका प्रणाली स्वच्छ और साफ रहती है। इस प्रकार प्राणायाम करते समय प्राण का अबाध गति से प्रवाह सहायक होता है ।

10. खराब और गलत तरीके से किए गए आसनों से श्वसन-क्रिया मंद हो जाती है और इससे सहनशीलता कम हो जाती है।

11. यदि शरीर के प्रति लापरवाही बरती जाती है या उसे बिगाड़ दिया जाता है तो वह एक दुःखदायी साथी बन जाता है। शरीर को आसनों और मन को प्राणायाम से अनुशासित किया जाना चाहिए। यह आत्मानुभूति का सच्चा मार्ग है जो आपको सुख-दुःख के द्विभाजन से मुक्त करता है।

12. चूंकि भोजन शरीर को बनाए रखने के लिए आवश्यक है अतः वायु का समुचित अंतःप्रवाह भी फुफ्फुसों के लिए उपलब्ध होना चाहिए ताकि प्राण शक्ति बनी रहे।

13. प्राणायाम का प्रयास करने से पूर्व यह सीखना चाहिए कि अंतरापर्शुक मांसपेशियों, श्रोणि और वक्षीय डायाफ्राम का संचलन संगत आसनों के अभ्यास द्वारा शुद्ध रूप से कैसे किया जाए।

14. प्राणायाम प्रारंभ करने से पूर्व मूत्राशय और अंतराशय खाली कर लेने चाहिए। कब्ज वाले ऐसे व्यक्ति भी प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं क्योंकि मूत्राशय की भांति उनके अंतराशय को कोई हानि नहीं पहुंचती।

15. चीतों, शेरों और हाथियों का प्रशिक्षक उनकी आदतों और मनोदशा का अध्ययन करता है और उसके बाद धीरे-धीरे तथा संयमित रूप से उन्हें सिखाता है। वह उनके साथ दया और सद्भावनापूर्ण व्यवहार करता है अन्यथा वे उस पर झपट सकते हैं और उसे अपंग बना सकते हैं। यही स्थिति साधक की भी होती है। एक वायुचालित औजार कठोरतम चट्टान को भी काट देता है। यदि इस औजार का उपयोग ठीक ढंग से न किया जाय तो इससे औजार और उसके उपयोग करने वाले दोनों बरबाद हो सकते हैं। अपनी श्वसन क्रिया का सावधानी से अध्ययन करें और क्रम से आगे बढ़ें क्योंकि यदि आपने प्राणायाम का अभ्यास तेज़ी से अथवा जबरदस्ती किया तो आप स्वयं को हानि पहुंचा सकते हैं

16. प्रतिदिन नियत समय पर अभ्यास करें और एक ही आसन में करें। कभी-कभी एक ही प्रकार से किया गया प्राणायाम बेचैनी पैदा कर देता है। शरीर और मन, नाड़ियों और मस्तिष्क के अनुकूल श्वसन क्रिया की गति तीव्र करनी चाहिए ताकि उन्हें नया जीवन और नई स्फूर्ति मिल सके। प्राणायाम का अंधाधुंध नेमी नहीं होना चाहिए।

17. श्वास का पूरी समझ, स्वच्छता और बुद्धिमत्ता से विश्लेषण करें और उसे कार्यरूप में परिणत करें।

स्थान

18. एकांत, स्वच्छ, हवादार, कीटरहित स्थान का चयन करें और शांत समय में अभ्यास करें।

19. शोर से बेचैनी, घबराहट और क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसे समय में प्राणायाम न करें।

स्वच्छता

20. कोई भी व्यक्ति अपवित्र मन या शरीर से मंदिर में प्रवेश नहीं करता है। अपने ही शरीर रूपी मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व योगी स्वच्छता के नियमों का पालन करता है।

समय

21. योग की पुस्तकों में इस बात पर जोर दिया गया है कि व्यक्ति को दिन में चार बार—प्रातः, दोपहर, संध्या, और अर्धरात्रि के समय—प्राणायाम के अस्सी चक्र पूरे कर लेने चाहिएं जो प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता। फिर भी प्रतिदिन प्राणायाम करना आवश्यक है लेकिन यह समर्पित साधक के लिए पर्याप्त नहीं है। (प्राणायाम के एक चक्र में पूरक क्रिया, अंतःकुंभक क्रिया, रेचक क्रिया और बाह्य-कुंभक क्रिया सम्मिलित होती हैं।)

22. भोर का समय प्राणायाम के अभ्यास का समय है जो सूर्योदय से पूर्व हो तो बेहतर है। इस समय औद्योगिक प्रदूषण बहुत कम होता है और शरीर तथा मस्तिष्क भी स्फूर्तिदायक होते हैं। यदि प्रातःकाल उपयुक्त न रहे तो इसका अभ्यास सूर्यास्त के बाद करना चाहिए जब वायु शीतल और आनंददायक होती है।

आसन

23. फर्श पर तह किए हुए कंबल पर बैठने से प्राणायाम का सबसे अच्छा अभ्यास होता है। बैठने की कला के लिए अभ्यास 11 का अध्ययन करें। इस निमित्त सिद्धासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वीरासन, बद्धकोणासन और पद्मासन उपयुक्त होते हैं। (चित्र 3 से 14 तक)। फिर भी कोई अन्य आसन ठीक रहेगा यदि मेरु-दंड के आधार से गर्दन तक पीठ सीधी रहे और फर्श से लंबवत् रहे।

शरीर

24. मिट्टी के घड़े को जल भरने के उपयोग से पूर्व भट्टी में पका लिया जाता है, इसी प्रकार शरीर को भी आसनों की अग्नि में तपा लिया जाना चाहिए ताकि प्राणायाम की वास्तविक चमक का अनुभव हो सके।

25. शरीर तामसिक, मन राजसिक और आत्मा सात्विक होती है। शरीर की बुद्धि को आसनों द्वारा मन के स्तर तक विकसित करें। इसके बाद शरीर और मन को प्राणायाम के द्वारा आत्मा के स्तर तक ऊपर उठाएं ताकि प्राण समस्त शरीर में संचलित हो सके। इसके परिणामस्वरूप शरीर में फुर्ती आ जाती है, मन स्थिर हो जाता है और आत्मा एकाग्र हो जाती है।

26. शरीर एक गर्त है जिसमें सर्प रूपी श्वास भीतर आती और बाहर जाती है। चित्त सपेरा है जो श्वास को प्रलोभित करता है और उस पर नियंत्रण करता है।

मेरुदंड

27. मानव की रीढ़ की तुलना भारतीय वीणा से की जा सकती है। तूंबा सिर है जहां से शब्द उत्पन्न होता है। नासिका सेतु है जो पूरक और रेचक क्रियाओं से उत्पन्न ध्वनि-तरंगों को नियंत्रित करता है। तारों के कसने से प्रतिध्वनि होती है। यदि वे ढीले रहें तो कोई ध्वनि उत्पन्न नहीं होती और यदि वे बहुत कस जाते हैं तो कोई प्रकंपन नहीं होता और वे तड़क भी सकते हैं। तार के कसाव को इस प्रकार समायोजित किया जाता है कि वह आवश्यक प्रतिध्वनि, गहनता और स्वर उत्पन्न कर सके। इसी प्रकार मेरुदंड में नाड़ियों और स्नायुओं को ऐसी स्थिति में रखना चाहिए कि श्वास लय और सामंजस्य के साथ चल सके।

28. मेरुदंड को आधार से ही एक कशेरुकी से दूसरी कशेरुकी तक इस प्रकार समायोजित करें मानो आप ईंट की दीवार बना रहे हैं। केंद्रीय मेरुदंड के समानांतर स्वतंत्र रूप से और लयात्मक ढंग से मेरुदंड को संचालित करते हुए उसके स्तंभ को दाहिनी और बाईं ओर समानांतर रखें। प्राणायाम में मेरुदंड का अग्रभाग इसके पिछले भाग से अधिक सक्रिय होता है।

पसलियां

29. एक साथ ही पिछली पसलियों को अंदर की ओर, किनारे की पसलियों को आगे की ओर और आगे की पसलियों को ऊपर की ओर संचलित करें।

टांगें और कंधे

30. बाहों को निश्चेष्ट रखें। उन्हें कड़ा अथवा ऊपर या पीछे न करें। यदि वे कड़ी हैं तो उनमें चुभन हो सकती है और वे सुन्न पड़ सकती हैं। यह स्थिति किसी भी ऐसे आसन के प्रारंभ में हो सकती है जिसका आपने पहले अभ्यास न किया हो और जब आप उस आसन में स्थिर हो जाते हैं तो इस अवस्था का लोप हो जाता है।

नाखून

31. नाखूनों को काट दें ताकि वे नासिका की कोमल त्वचा को उस समय हानि न पहुंचा सकें जब आप आंगुलिक प्राणायाम करते हैं।

लार

32. लार प्राणायाम के प्रारंभ में वहती है। जब आप श्वास को निकाल रहे हों, उस समय उसे निगल जाएं लेकिन जब आप श्वास ले रहे हों अथवा श्वास रोक रहे हों तो ऐसा कभी न करें। दांतों और तालू से जिह्वा को न तो कड़ा करें और न दबाएं ही बल्कि उसे बनाए रखें और हलक को निष्क्रिय बना दें।

नेत्र और कान

33. प्राणायाम का अभ्यास नेत्र बंद करके करना चाहिए और आसन कान खोलकर किए जाने चाहिएं।

34. धीमे से नेत्र बंद करें और नेत्रगोलक को सख्त किए बिना ही हृदय के अंदर झाकें। इस प्रकार अंदर का झांकना या महसूस करना सबसे अधिक अनुभवजन्य है।

35. यदि नेत्र खुले रखे जाते हैं तो जलन महसूस होती है। आप चिड़चिड़े हो जाते हैं और बेचैनी महसूस करते हैं। जिससे मन चंचल हो उठता है।

36. आप अपने नेत्र कुछ क्षण के लिए खोल दें और बीच-बीच में यह देखते रहें कि आपका आसन ठीक लगा है कि नहीं, और इसमें किसी प्रकार की कोई असमानता तो नहीं है।

37. भीतरी कानों को सावधान रखें किंतु वे निष्क्रिय होने चाहिएं। कान ही मन की खिड़कियां हैं। कानों का तालमेल वायु की पूरक क्रिया, रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया के कंपनों के साथ बैठा दिया जाना चाहिए।

त्वचा

38. त्वचा दो महत्वपूर्ण कार्य करती है : अवशोषण और विलोपन। त्वचा ताप का अवशोषण करती है और उसे उत्सर्जित करती है तथा वह ताप स्थायी रूप में शरीर के तापमान को एकसा रखती है। इससे कार्बनिक और अकार्बनिक लवणों के विलोपन में सहायता मिलती है।

39. त्वचा प्रत्यक्ष ज्ञान का स्रोत है। अपने अभ्यासों द्वारा आंतरिक चेतना के साथ उसके संचलनों के मध्य सतत और संगत संचार बनाए रखें।

40. धड़ की त्वचा सक्रिय और गतिमान रखें और खोपड़ी, चेहरों, टांगों और बांहों की त्वचा मुलायम और निष्क्रिय।

41. अभ्यास के प्रारंभ में पसीना छलकता है परंतु बाद में वह समाप्त हो जाता है।

मस्तिष्क

42. मस्तिष्क को ग्रहणशील और सतर्क रखें। मस्तिष्क को किसी कार्य में लगाए बिना ही उसके द्वारा फुफ्फुसों को अभिप्रेरित करके प्रयोग करें, क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो वह एक साथ ही श्वसन की क्रिया की निगरानी नहीं रख सकता।

43. प्राणायाम उस समय तामसिक होता है जब धड़ और मेरुदंड निष्क्रिय और राजसिक होते हैं और जब मस्तिष्क इनमें उलझा रहता है। जब धड़ दृढ़ होता है, मस्तिष्क ग्रहणशील और आत्मकेंद्रित होता है, उस समय प्राणायाम सात्विक होता है।

44. स्मृति मित्र होती है यदि आप इसको अपने व्यावहारिक जीवन में प्रगति और शुद्धता के लिए प्रयोग में लाएं। स्मृति उस समय बाधा बन जाती है जब आप अपने अतीत के अनुभवों पर गहन चिंता करते हैं और उन्हें बार-बार दोहराते हैं। अपने अभ्यास में प्रत्येक बार नवीन प्रकाश देखें।

45. अभ्यास और इच्छा का समर्पण प्राणायाम के पंख हैं जो साधक को ज्ञान की उच्चतर परिधियों और आत्मानुभूति की ओर ले जाते हैं।

46. समवृत्ति प्राणायाम (पूरक क्रिया, रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया के मध्य समान अवधि) विषम वृत्ति (तीनों प्रकार के विभिन्न प्रकार और अवधि के श्वसन) के प्रयोग से पूर्व करना चाहिए। विवरण के लिए अध्याय 18 देखें।

47. प्राणायाम के शीघ्र बाद ही कभी आसन नहीं करना चाहिए। आसनों के बाद प्राणायाम के अभ्यास से कोई हानि नहीं होती है परंतु थकाने वाले आसनों के बाद प्राणायाम नहीं किया जा सकता। इसलिए यह परामर्श दिया जाता है कि दोनों का अभ्यास अलग-अलग समय पर किया जाना चाहिए। प्राणायाम के लिए प्रातःकाल और आसनों के लिए सांयकाल सबसे अधिक उचित समय है।

48. प्राणायाम का उस समय अभ्यास न करें जब मन अथवा शरीर उदास या हताश हो। मानसिक वेदना अथवा उलझनों को दूर करने के लिए आसन करने चाहिएं जैसाकि **योगदीपिका** में कहा गया है और शारीरिक थकावट को दूर करने के लिए शवासन करना चाहिए (देखें अध्याय 30) इसके बाद प्राणायाम प्रारंभ करना चाहिए।

49. अंतर कुंभक उस समय न करें जब मस्तिष्क बहुत ही संवेदनशील हो क्योंकि यह एकाएक उथल-पुथल से आहत हो सकता है। अंतर कुंभक उस समय भी नहीं करना चाहिए जब आप सोना चाहते हों क्योंकि यह आपको जगाए रखता है। इसके बजाए कुंभक क्रिया के बिना अथवा बाह्य कुंभक के बिना प्राणायाम करना चाहिए क्योंकि ये दोनों ही नींद लाते हैं और दूसरी विधि अनिद्रा को ठीक कर देती है (अध्याय 19-20 : लेटे हुए आसनों में दूसरी अवस्था और 21)।

50. शीघ्रता में प्राणायाम न करें अथवा प्राणायाम उस समय भी न करें जब फुफ्फुस रूंधे हुए हों।

51. प्राणायाम के तुरंत बाद ही बात न करें और न चलें ही, परंतु अन्य कार्यों को प्रारंभ करने से पूर्व कुछ समय शवासन में विश्राम करें।

52. भोजन करने के तुरंत बाद अथवा भूखे होने पर प्राणायाम का अभ्यास न करें। ऐसी स्थिति में एक प्याला चाय या दूध उपयोगी होगा। भोजन और प्राणायाम के मध्य 4 से 6 घंटे का अंतर आवश्यक है लेकिन प्राणायाम के आधे घंटे के बाद आप भोजन कर सकते हैं।

53. ऐसी भूलें न करें जो गहरी जड़ पकड़ लें परंतु ऐसी भूलों को सावधानी से देखना चाहिए और प्रशिक्षण तथा अनुभव से इन्हें दूर करना चाहिए।

54. छोटी आयु में कुंभक क्रिया करने का प्रयास नहीं करना चाहिए लेकिन यह अभ्यास 16 या 18 वर्ष की आयु में प्रारंभ करना चाहिए अन्यथा आपका मुख वृद्धावस्था से पूर्व ही वृद्ध जैसा हो जाएगा।

55. यदि आपको फुफ्फुसों में भारीपन या कड़ापन कभी भी महसूस हो तो उस दिन प्राणायाम न करें और प्राणायाम उस दिन भी नहीं करना चाहिए जब आपकी श्वास की ध्वनि कर्णकटु अथवा कर्कश हो जाए।

56. अशुद्ध अभ्यास से चेहरे की मांसपेशियां कठोर हो जाती हैं, इससे मन अस्थिर हो जाता है और यह रोग को आमंत्रित करता है। चिड़चिड़ापन, भारीपन और बेचैनी इसके लक्षण हैं।

57. प्राणायाम से व्यक्ति के चाल-चलन और शक्ति को पूर्ण रूप से नियमित होने में सहायता मिलती है।

58. जब प्राणायाम सही तरीके से किया जाता है तब रोग दूर हो जाते हैं और कल्याण, प्रकाश तथा शांति की उद्दीप्त अवस्था का अनुभव होता है।

59. शुद्ध अभ्यास सांसारिक सुखों की लालसा को कम करता है और आत्मानुभूति की ओर उन्मुख करता है तथा साधक को इंद्रियों के वश में आने से मुक्त करता है।

महिलाओं के लिए प्राणायाम

60. गर्भवती होने की अवधि में महिलाएं कपालभाति, भस्त्रिका, विषमवृत्ति प्राणायाम, दीर्घावधि अंतर कुंभक और उड्डीयान सहित बाह्य कुंभक के अतिरिक्त सभी प्राणायाम कर सकती हैं फिर भी अधिक उपयोगी प्राणायाम इस प्रकार हैं: उज्जायी, विलोम, सूर्य-भेदन, चंद्रभेदन और नाड़ीशोधन।

61. महिलाओं को प्रसूति के एक माह बाद आसन और प्राणायाम नौसिखिया साधक की भांति प्रारंभ करने चाहिएं और धीरे-धीरे इन अभ्यासों के समय तथा विविधताएं बढ़ानी चाहिएं।

62. रजःस्राव की अवधि में प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है परंतु उड्डीयान की क्रिया नहीं की जानी चाहिए।

ध्यान देने योग्य संकेत

63. यदि आसनों और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में ताप उत्पन्न होने लगे तो इस प्रकार के अभ्यास एक दिन के लिए रोक देने चाहिएं। शरीर के अवयव यथा सिर, एड़ियां और तलवों में तेल लगाएं और उनकी मालिश करें। इसके बाद गर्म पानी से नहाएं और 15 मिनट तक शवासन करें तत्पश्चात् आपके शरीर की ताप शांत हो जाएगी और दूसरे दिन के अभ्यास के लिए शरीर ठीक हो जाएगा।

11

प्राणायाम में बैठने की कला

कैसे बैठें

1. **भगवद्गीता** (छह-10 से 15 तक) में श्रीकृष्ण अर्जुन को यह समझाते हैं कि योगी को अपनी शुद्धि के लिए किस प्रकार अभ्यास करना चाहिए :

10. योगी को गुप्त और एकांत स्थान में बैठकर लगातार अपनी आत्मा के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए, उसे अपनी अंतरात्मा का स्वयं स्वामी बनना चाहिए, और आशा तथा सांसारिक संपत्तियों से मुक्त रहना चाहिए।

11. उसे ऐसा स्थान खोजना चाहिए जो स्वच्छ और शुद्ध हो और ऐसे आसन पर बैठना चाहिए जो कठोर हो, न बहुत ऊंचा हो और न ही वहुत नीचा, और कपड़े की परतों, मृगछाला और कुशा से ढका हो ।

12. आसन पर बैठकर अपनी आत्मशुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए जब मन एकाग्र हो और उसकी ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां नियंत्रण में हों।

13. उसका शरीर, गर्दन और सिर सीधा, अचल और स्थिर होना चाहिए तथा दृष्टि अंतर्मुखी और नासिका के अग्रभाग को देखते हुए स्थिर रहे।

14. जब उसकी आत्मा शांत और निर्भीक हो और ब्रह्मचर्य के व्रत में दृढ़ हो तो योगी को अपना सतर्क एवं नियंत्रित मन मुझमें परमात्मा के रूप को देखते हुए शांत रखना चाहिए ।

15. योगी जिसका मन अपने नियंत्रण में है और जो सदा आत्मा से तदाकार होने का प्रयास करता है, निर्वाण की शांति को प्राप्त होता है। यह परमात्मा की शांति है जो मुझमें निहित है ।

2. शरीर-संरचना संबंधी विवरण दिए बिना ही ऊपर जो उद्धरण दिए गए हैं, उनमें ध्यानावस्था में बैठने की पारंपरिक पद्धति का उल्लेख किया गया है। निःसंदेह आत्मा शुद्धि-अशुद्धि से परे है परंतु यह वासनाओं और मन से ग्रसित हो जाता है।

भगवान् कृष्ण ने कहा है, 'जिस प्रकार अग्नि धुएं से, दर्पण धूल से और भ्रूण गर्भाशय से घिरा रहता है उसी प्रकार आत्मा इंद्रियों और मन से उत्पन्न इच्छाओं से घिरा रहता है।' (**भगवद्गीता** तीन-38) इसलिए जब आप ध्यान लगाएं तब शरीर को शिखर-पर्वत के समान दृढ़ रखें और मन को सागर के समान अचल और स्थिर रखें। जिस क्षण शरीर अपनी बुद्धि अथवा दृढ़ता को खो देता है उसी क्षण मस्तिष्क की बुद्धि अपनी कार्य और प्रत्यक्ष ज्ञान की शक्ति को खो.देती है। जब शरीर और मस्तिष्क में उचित संतुलन हो जाता है तो सात्विक प्रज्ञा का अनुभव होता है।

3. ध्यान में सिर और गर्दन फर्श से सीधे और लंब रूप में रहते हैं जबकि प्राणायाम में जालंधर बंध बनाया जाता है। इससे हृदय पर बोझ नहीं पड़ता, मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है और मन को आंतरिक शांति अनुभव करने का अवसर मिलता है (देखें अध्याय 13)।

4. ध्यान में बैठने की कला का उद्देश्य सीधे बैठना है जिसमें मेरुदंड बिल्कुल ही सीधा रहे और पीठ की पसलियां तथा मांसपेशियां दृढ़ और सतर्क रहें। इसलिए शरीर को ऐसी स्थिति में रखें जिससे यदि सिर के मध्य से बैठने के स्थान तक कोई सीधी रेखा खींची जाए तो मस्तिष्क के उच्च भाग के केंद्र, नासिका के सेतु, चिबुक, हंसली के मध्य खाली स्थान, उरोस्थि, नाभि और जघन-संधान एक सीधी रेखा में हो। (चित्र 15)

5. इसके विपरीत भौहों, कानों, कंधों के सिरों, हंसली, चुचूक, प्लावी पसलियों और कूल्हे के जोड़ों पर श्रोणि-अस्थियां परस्पर समानांतर होनी चाहिएं (चित्र 16)। अंतिम रूप से स्कंधास्थि के सिरों के मध्य बिंदु को त्रिकास्थि के लंबरूप रखना चाहिए ताकि शरीर को झुकने से बचाया जा सके।

6. प्राणायाम में प्रथम आवश्यकता यह सीखने की है कि सिर झुकाकर सही तरीके से कैसे बैठा जाए जिससे शरीर सीधा और स्थिर बना रहे और फुफ्फुसों में अधिकतम वायु कैसे खींची जाए जिससे रक्त को ऑक्सीजन मिल सके। प्राणायाम का अभ्यास करने के पूरे समय में रीढ़ की हड्डी की ऊंचाई एकसी रखनी चाहिए। बैठने के आसन में लंब रूप और समानांतर संरेखण के लिए चित्र 15 और 16 देखें।

7. लगातार सचेत रहें और अभ्यास करने के दौरान में पूरे शरीर का सही संरेखण रखें चाहे वह अवस्था पूरक, रेचक अथवा कुंभक में से किसी क्रिया की ही क्यों न हो।

8. जैसे घर की सजावट करने वाला व्यक्ति किसी कमरे को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि वह अधिक बड़ा दिखे इसी प्रकार साधक अपने धड़ में अधिकतम स्थान बनाता है जिससे प्राणायाम करते समय उसके फुफ्फस पूर्ण रूप से फैल सकें। अभ्यास से उसकी क्षमता बढ़ती जाती है।

9. **भगवद्गीता** के अनुसार शरीर को क्षेत्र अथवा आत्मा का आवास कहा जाता है और आत्मा को क्षेत्रज्ञ जो यह जानकारी रखता है कि शरीर में क्या होता है जब प्राणायाम से शरीर को अनुशासित किया जाता है। प्राणायाम शरीर और आत्मा के बीच सेतु का कार्य करता है।

10. धड़ में कार्य-गति के अपेक्षित क्षेत्र का निर्माण करने के लिए सर्वप्रथम यह सोचना होगा कि किस प्रकार बैठा जाए। यदि बैठने का आसन दृढ़ नहीं है तो मेरुदंड झुक जाएगा और टूट जाएगा, डायाफ्राम उचित रूप से कार्य नहीं करेगा और सीने में दरार पड़ जाएगी जिससे फुफ्फुसों में जीवन प्रदायिनी वायु भरनी कठिन हो जाएगी।

11. यहां प्राणायाम के समय बैठने की तकनीक का सविस्तर वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए शरीर को चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है अर्थात् (क) निचले अवयव, अर्थात् नितंब और श्रोणि, कूल्हे, जंघा, घुटने, पिंडली की नली, टखने और पैर; (ख) धड़; (ग) बाहें, हाथ, कलाई और अंगुलियां; (घ) गर्दन, गला और सिर। नितंब और श्रोणि के क्षेत्र में दृढ़ रहना चाहिए जो सही तरीके से बैठने के लिए आधार हैं।

12. जब प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है, तब व्यक्ति कोई आसन, जैसे सिद्धासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, पद्मासन, वीरासन, बद्धकोणासन या पद्मासन, लगाकर साधारण रूप से धरती पर बैठता है (चित्र 3 से 14 तक)। इन सभी अवस्थाओं में यह देखना चाहिए कि मेरुदंड और पसलियां केले के पत्ते के चौड़े मध्य भाग जैसी दिखें (देखें चित्र 2)। मेरुदंड तने जैसा होता है और समान अंतर वाली पसलियां धमनियों जैसी होती हैं। दुम की हड्डी पत्ते के किनारे जैसी होती है। **योगदीपिका** में आसनों का वर्णन किया गया है।

13. यद्यपि कई आसन प्रयोग में आते हैं फिर भी मेरे अनुभव के अनुसार प्राणायाम अथवा ध्यान के अभ्यास के लिए पद्मासन सभी आसनों का राजा है। यह दोनों ही दशाओं में सफलता की कुंजी है। इस आसन में ऊपर बताए गए शरीर के चारों क्षेत्र समान रूप से संतुलित किए जाते हैं (जैसाकि पैरा 11 में उल्लेख किया गया है) और मस्तिष्क मेरुदंड स्तंभ में सही तरीके से और समान रूप से विश्राम करता है ताकि मन और शरीर का संतुलन स्थापित हो सके।

14. सुषुम्ना मेरुदंड स्तंभ में से होकर गुजरती है, पद्मासन में मेरुदंड स्तंभ का समायोजन और संरेखण तथा दोनों ओर की रीढ़ समान रूप से, लयात्मक ढंग से और एक साथ संचलित होती हैं। प्राण ऊर्जा समस्त शरीर में उपयुक्त विभाजन के साथ समान रूप से प्रवाहित होती है।

15. सिद्धासन में मेरुदंड का ऊपरी भाग अन्य भागों की अपेक्षा अधिक फैला होता है। जबकि वीरासन में कटि का क्षेत्र अन्य भागों की अपेक्षा अधिक प्रसरित होता है। इनमें से कुछ आसन अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक हो सकते हैं परंतु शुद्धता और सुगमता की दृष्टि से पद्मासन ही सर्वोत्तम है। पद्मासन में ऊरू ऊरूमूल की अपेक्षा नीचे होता है। निचला उदर तानकर रखा जाता है ताकि जघनास्थि और (डायाफ्राम) के बीच काफी जगह रहे जिससे फुफ्फसों का पूरी तरह प्रसार हो सके। जो साधक पद्मासन का प्रयोग करते हैं उन्हें विशेष रूप से निचले शरीर की तीन महत्वपूर्ण संधियों अर्थात् नितंब, घुटनों और टखनों जो बिना किसी प्रयास के संचलित होती है, की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

पद्मासन (चित्र 15 से 43 तक)

16. पद्मासन करने के बाद श्रोणि के आधार पर बैठें। फर्श पर दोनों नितंबों के सहारे समान रूप से बैठें। यदि आप एक की अपेक्षा दूसरे पर अधिक देर तक बैठते है तो मेरुदंड असमान हो जाएगा। जंघाओं को फर्श पर दबाएं। जंघा की हड्डियों को नितंब के खोल में अंदर तक ले जाएं। चतु:शिस्क की त्वचा को घुटनों तक फैलाएं। इससे उन्हें घुटनों के चारों ओर आड़े-तिरछे और गोलाई में अंदर के घुटनों के ऊपरी सिरे से लेकर नीचे तक घुमाने की स्वतंत्रता मिल जाती है। घुटने के पीछे की नस वाली मांसपेशियों को समीप लाएं ताकि जंघाओं के बीच का अंतर अपेक्षाकृत कम हो सके। इस प्रकार गुदा और जननेंद्रियां फर्श को स्पर्श नहीं करेंगे (चित्र 13)। यहां गुरुत्व की रेखा उस परितंत्रिका का बहुत ही छोटा भाग है जो गुदा और जननेंद्रिय के बीच स्थित होती है। यहां से मेरुदंड का ऊपरी तनाव प्रारंभ होता है और इसके साथ ही शरीर श्रोणि के आंतरिक ढांचे से ऊपर और दाएं-बाएं भाग में उठ जाता है। जघन-क्षेत्रों को शीर्ष और निचले भाग में लंब रूप से रखने का प्रयत्न करें। यदि यह क्रिया कठिन हो तो तहदार कंबल पर नितंबों को आराम देते हुए पद्मासन में दोनों घुटने समान रूप से फर्श को स्पर्श नहीं करेंगे (चित्र 13)।

17. पैरों के तलवों को छत की ओर न मोड़ें परंतु उन्हें आस-पास की दीवारों की ओर रखें (चित्र 19 गलत है और 20 सही)। प्रपदास्थिक (पिंचिडिका) को पैर के अंगूठे से छोटी अंगुलियों की ओर घुमाते हुए फैलाएं, तत्पश्चात् पैरों के मेहराव दृढ़ रखें। यदि कोई भी मेहराव गिर जाता है तो नितंब और गुदा की पकड़ शिथिल हो जाती है, धड़ झुक जाता है और मेरुदंड बीच में ही से झोल खा जाता है तथा धड़ के समस्त संतुलन को विगाड़ देता है। घुटनों को बाहर न फैलाएं और अनायास ही उन्हें फर्श छूने के लिए न दबाएं (चित्र 21 और 22)। ऐसा कोई भी प्रयत्न गुरुत्वाकर्षण के केंद्र को विगाड़ देगा। बाद में, नियमित रूप से अभ्यास करने के कारण साधक को यह महसूस नहीं होता कि उसका घुटना भूमि से ऊपर है। नितंव के संतुलन में समानता लाने के लिए यह आवश्यक है कि उस घुटने को आराम दिया जाए जो तहदार तौलिये पर भूमि के ऊपर विद्यमान है (चित्र 23)। हर दूसरे दिन पैरों के घुमाव को बदलें ताकि संतुलन में समानता बनी रहे (चित्र 24)।

धड़

18. प्राणायाम के अभ्यास में धड़ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धड़ को जीवन शक्ति से सक्रिय रखें, टांगों और बाहों को निष्क्रिय रखें जैसे वे सुप्त हों, और गर्दन से लेकर सिर के उच्च भाग तक सतर्क शांति की शुद्ध अवस्था होनी चाहिए। धड़ स्थिर टांगों और वाहों तथा सचेत अपितु शांत मन के मध्य सेतु का कार्य करता है।

19. यदि मेरुदंड और अंतरापर्शुक मांसपेशियां अपनी पकड़ छोड़ दें अथवा कशेरुकी में पूरा तनाव न हो तो धड़ नष्ट हो जाएगा। दोनों बगलों में से लेकर

नितंब तक सामने, पीछे और दाईं-बाईं ओर की मांसपेशियां कुंजी हैं। वे उच्च सिरे पर हंसली और कंधे तक और निचले भाग में श्रोणि से लेकर नितंब की हड्डी तक जुड़ी होती हैं। पीठ को दृढ़ रखें। आधार अर्थात् निचले भाग से उच्च सिरे अर्थात् अनुत्रिक से ग्रीवा कशेरुकी तक मेरुदंड को समायोजित करें। मेरुदंड स्तंभ को केवल मध्य भाग से ही नहीं अपितु बाएं और दाएं किनारों से भी सीधा करें।

20. नाभि क्षेत्र को निश्चेष्ट और फर्श के लंब रूप में रखें। कटि क्षेत्र को दोनों ओर उठाकर पतला करें। जब कमर को ऊपर उठाएं तो इस बात का ख्याल रखें कि उसे कसा न जाए। संवेग, विशेषतया भय, इस क्षेत्र को कठोर अथवा कसा हुआ बना देते हैं जो डायाफ्राम को प्रभावित करता है और इसके फलस्वरूप श्वसन पर भी असर डालता है। जब यह क्षेत्र निष्चेष्ट हो जाता है तो मन और बुद्धि शांत हो जाते हैं। तब शरीर, मन और बुद्धि आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

21. ताडासन (चित्र 25) (देखें **योग दीपिका**) में जघनास्थि के आधार से नाभि तक खुला स्थान बना लिया जाता है और वह क्षेत्र सपाट रखा जाता है। बैठने के आसनों में ताडासन के प्रहार का अनुकरण करना चाहिए। सदैव अग्र रीढ़ से फैलाएं। गुदा से जघनास्थि तक, उससे नाभि, नाभि से डायाफ्राम, डायाफ्राम से उरोस्थि और अंततः उरोस्थि से हंसली के खाली भाग तक ऊपर खींचे। यदि जघनास्थि की शक्ति क्षीण हो जाती है तो बैठने के आसन की शुद्धता लुप्त हो जाती है और अभ्यास की सुनिश्चितता समाप्त हो जाती है। जब वक्ष को ठीक ढंग से फैलाया जाता है तब फुफ्फुस दक्षता से कार्य करते हैं और श्वसन प्रणाली में अपेक्षाकृत अधिक ऑक्सीजन प्रवाहित होती है। प्राण ऊर्जा की सूक्ष्म नाड़ियों के सभी अवरोध दूर हो जाते हैं और पूरक क्रिया से जो ऊर्जा अंदर आती है, वह इस प्रणाली में स्वतंत्र रूप से प्रवाहित होती है। जैसे सूर्य के चक्र से प्रकाश की किरणें सभी दिशाओं में समान रूप से फैलती हैं उसी प्रकार आत्मा पूरक क्रिया द्वारा शक्तिशाली ऊर्जा को फुफ्फुस के सभी भागों में फैला देता है जब उरोस्थि काफी उठ जाती है और फैल जाती है।

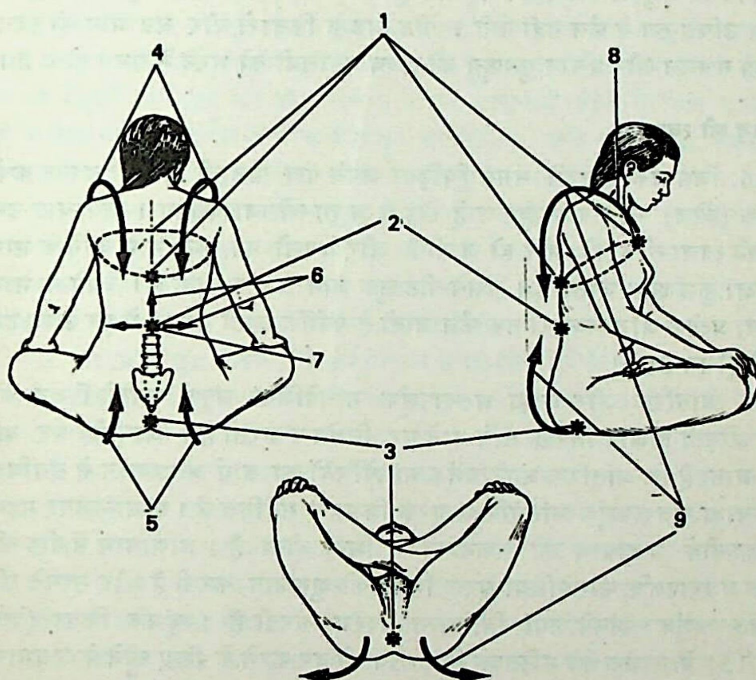
22. याद रखें कि प्रसार से क्षेत्र का निर्माण होता है, जो स्वतंत्रता लाता है; स्वतंत्रता से सुनिश्चितता आती है जो शुद्धता को जन्म देती है और यही दैवी पूर्णता की ओर उन्मुख करती है।

23. यह जानने के लिए कि आप सही ढंग से आसन में बैठे हैं अथवा नहीं आप अंगूठों के अग्रभाग और अलग की हुई अंगुलियों को कुछ झुका लें और उन्हें नितंब के समीप फर्श पर हल्के, सरलता और समान रूप से दबाएं। नाखूनों को फर्श के लंब रूप रखें। (चित्र 26 पार्श्व दृश्य; चित्र 27 अग्र दृश्य; चित्र 28 पश्च दृश्य) यदि अगली अंगुलियां अधिक कठोरता से दबती हैं तो सिर आगे की ओर झुक जाता है, यदि पीछे की अंगुलियां कठोरता से दबती हैं तो शरीर पीछे की ओर झुक जाता है। यदि एक हाथ की अंगुलियां दूसरे हाथ की अंगुलियों की अपेक्षा अधिक जोर से फर्श को दबाती हैं तो शरीर एक ओर झुक जाता है जहां दबाव अपेक्षाकृत अधिक होता है (चित्र 29)। अंगूठों, मध्यमा और तर्जनी अंगुलियों पर समान अपितु स्थिर दबाव और अन्य अंगुलियों पर हल्का दबाव शरीर को साधे रखता है। जब अंगुलियों को

दबाया जाए तो कंधों को न तो झटकाएं और न उचकाएं ही। घुटनों को उठाए बिना ही नितंबों को फर्श से कुछ ऊंचा उठाएं (चित्र 30), नितंबों की मांसपेशियों को कसें, पुच्छास्थि के साथ समेटें और तत्पश्चात् नितंबों को फर्श पर टिका दें। जो साधक अपनी अंगुलियों के पोरों की सहायता से नितंबों को ऊंचा नहीं उठा सकते उन्हें फर्श पर हथेलियों को रखकर नितंब उठाने चाहिएं जैसा कि चित्र 31 में दिखाया गया है।

24. हाथों को फर्श से उठा लें और कलाइयों के पिछले भाग को घुटनों पर टिकाएं (चित्र 32) अथवा गोद में बाएं हाथ की हथेली दाहिने हाथ की हथेली पर रखें और इसके विपरीत करें अर्थात् दाहिने हाथ की हथेली पर बाएं हाथ की हथेली रखें (चित्र 33)। इस प्रकार हाथों का परिवर्तन पीठ की मांसपेशियों के सुव्यवस्थित प्रसार में सहायता करता है। कुहनियों पर हाथों को सीधा न करें क्योंकि इससे आपका शरीर आगे की ओर झुक जाता है (चित्र 34)।

तीन स्वस्तिकाकार स्थल



आकृति 18 : तीन स्वस्तिकाकार स्थल : 1. नवीं वक्षीय कशेरुकी के स्तर से उरोस्थि के केंद्र तक. 2. प्रथम कटीय कशेरुकी (और त्रिकास्थि). 3. मूलाधार. 4. त्वचा का संचलन. 5. त्वचा का संचलन. 6. रीढ़ और आंतों के पिंजर का संचलन. 7. रीढ़ और आंतों को फैलाने के लिए आलंबन. 8. जलंधर बंध. 9. त्वचा का संचलन.

25. याद रखें कि शरीर में तीन स्वस्तिकाकार स्थल निम्नलिखित हैं :

(क) गुदा और जननेंद्रिय के मध्य मूलाधार

(ख) त्रिकास्थि और प्रथम कोटि-कशेरुकी

(ग) पीठ में नवीं वक्षीय कशेरुकी और सामने छाती की हड्डी का केंद्र (चित्र 35 और आकृति 18)

यदि आसन ठीक है तो गर्दन और कंधों के पिछले भाग से त्वचा आधार की ओर बढ़ जाती है और नितंबों तथा कूल्हों से ऊपर की ओर फैल जाती है। पीठ की प्रथम कटि कशेरुकी और सामने की छाती की [हड्डी के केंद्र ठोड़ी की ओर उठ जाते हैं जबकि ठोड़ी जालधर बंध के समान नीचे की ओर झुक जाती है। छाती की हड्डी के मध्य भाग की त्वचा का ऊपर की ओर प्रसार चिबुक को नीचे झुकाने में सहायता करता है ताकि वह हंसली के बीच के खांचे में विश्राम कर सके। सर्वप्रथम कटि का आलंब के रूप में प्रयोग किया जाता है ताकि रीढ़ लंबाकार में फैल सके और वक्ष दोनों ओर खुल सके जिससे शरीर के दोनों ओर के भाग चार स्तंभों (धड़ के कोनों) की शक्ति का अनुरक्षण कर सकें। यदि पृष्ठीय अथवा कटीय रीढ़ झुक जाती है तो फुफ्फुस उचित रूप से फैल नहीं पाते। पीठ, धड़ के किनारों और अग्र भाग की त्वचा का सही संचलन और प्रसार फुफ्फुस की उच्च पसलियों को भरने में समर्थ होता है।

धड़ की त्वचा

26. जिस प्रकार उड़ते समय चिड़िया अपने पंख फैलाती है, उसी प्रकार कंधों के फलक (ब्लेड) नीचे रखते हुए उन्हें रीढ़ से अलग खोलना चाहिए। तत्पश्चात् उस स्थान की त्वचा नीचे की ओर हो जाती है और बगलों का पृष्ठ भाग आगे के भाग की अपेक्षा कुछ झुक जाता है। इससे पीठ झुक जाने से बच जाती है। आगे के भाग की त्वचा प्रत्येक ओर किनारों तक फैल जाती है क्योंकि छाती बगलों से दूर ऊपर उठ जाती है (चित्र 36)।

27. आंतरिक और बाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियां संपूर्ण पसली-पिंजर को परस्पर जोड़ती हैं और तिरछे ताने-बाने पर नियंत्रण करती हैं। आमतौर पर यह समझा जाता है कि आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियों का कार्य अंत:श्वसन से संबंधित है और बाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियां पूरक क्रिया से संबंधित हैं। सामान्यतया गहन श्वसन तकनीकें प्रणायाम की तकनीकों से भिन्न होती हैं। प्राणायाम में पीठ की आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियां पूरक क्रिया की शुरूआत करती हैं और सामने की बाह्य अंतरापर्शुक मांसपेशियां नि:श्वसन प्रारंभ करती हैं। कुंभक क्रिया (देखें अध्याय 15) में साधक को मस्तिष्क के तनाव को दूर करने के लिए सीने के अग्रभाग की मांसपेशियों को समान रूप से और पूर्णतया संतुलित करना चाहिए। पीठ की मांसपेशियों और त्वचा को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए मानो वे एक दूसरे में गुथी हों और यह स्थिति प्राणायाम और ध्यान दोनों में ही होनी चाहिए।

28. धड़ की त्वचा का कसाव अथवा शिथिलता संवेगीय स्थिरता की द्योतक है अथवा उसके अभाव को प्रकट करती है और यह भी दर्शाती है कि व्यक्ति ने मन

की शांति और प्रशांति प्राप्त कर ली है या नहीं। यदि हंसली के समीप सीने के ऊपरी भाग की त्वचा में दरार पड़ जाती है और वह धंस जाती है तो इसका मतलव होता है कि वह व्यक्ति अपने मनोवेगों का शिकार हो चुका है। एक दृढ़ सीना स्थायित्व का चिह्न है। यदि सीने और डायाफ्राम को स्थिर नहीं रखा जाता तथा त्वचा के क्रियाकलाप को पीठ की मांसपेशियों के संचलन के साथ एकीकृत नहीं किया जाता तो श्वसन क्रिया में शांति महसूस नहीं होगी। यदि उनमें तालमेल विठाकर उनको सक्रिय कर लिया जाए तो मन को प्रेरित करने के लिए साहस उत्पन्न हो जाता है।

29. आसन की कला में पीठ सीने से मिलने के लिए आगे वढ़ती है। अपने परिधान को देखें क्योंकि यदि आपकी पीठ कपड़े को स्पर्श कर रही है तो यह गति संचलन गलत है जवकि अग्रभाग कपड़े का स्पर्श करे तो आसन सही होता है (चित्र 37 और 38 गलत : चित्र 39 और 40 सही)।

30. नौसिखिया साधकों को प्रारंभ में दीवार के साथ वैठना चाहिए और अपने नितंवों को उस दीवार से सटा देना चाहिए। गुदा का मूलाधार और कंधों का उच्च भाग इस प्रकार रखना चाहिए कि वे दीवार को छूते से रहें।

जव कंधे दीवार को छूते हैं तो गुदा का आधार दीवार से अलग होना चाहता है (चित्र 41)। यदि ऐसी स्थिति हो तो आसन को पुनः समायोजित करें (चित्र 42)। कंधे की पट्टियों को वाहर की ओर फैलाएं। शुद्ध आसन में वैठने के लिए छाती की हड्डी के ठीक पीछे इन दोनों के वीच में सावुन की टिकिया, उसी आकार की लकड़ी का टुकड़ा अथवा तह किया हुआ छोटा तौलिया रखें (चित्र 43)।

31. यदि संचलनों में झटके महसूस हों तो थकान हो सकती है। झटकों से ध्यान वंट सकता है और विश्वास की कमी हो सकती है। यदि झटके वारवार आएं तो प्राणायाम में अपना समय नष्ट न करें वल्कि आसनों का अभ्यास करें जो फुफ्फुसों का विकास करते हैं और नाड़ियों को शांत करते हैं।

32. प्रारंभ में शुद्ध संचलनों के समायोजन से दर्द और वेचैनी उत्पन्न होती है परंतु समय के साथ और नियमित अभ्यास करते रहने से यह स्थिति लुप्त हो जाती है। उस दिन अभ्यास रोक दें जव दर्द अथवा वेचैनी अधिक और असह्य हो जाए। इससे संकेत मिलता है कि प्राणायाम के अभ्यास के लिए धड़ को ठीक प्रकार से रखा जाए।

33. सही और गलत प्रकार के दर्द के मध्य भेद करना सीखें। सही दर्द तभी होता है जव प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है और जो शवासन के तुरंत वाद ही लुप्त भी हो जाता है। यदि दर्द वरावर वना रहता है तो वह गलत तरीके का दर्द है जो साधक की वेचैनी को वढ़ाता है जवकि सही तरीके का दर्द मित्र के समान लगता है जो नए समायोजन तथा अनुकूलन में मदद करता है और मस्तिष्क तथा शरीर को अनुकूल सांचे में ढाल देता है।

फर्श पर बैठने की असमर्थता

34. यदि आयु, दुर्वलता अथवा अस्वस्थता के कारण फर्श पर वैठना असंभव है तो एक कुर्सी अथवा स्टूल का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन पैरों को फर्श पर

समतल रखें और जंघाओं को परस्पर तथा फर्श के समानांतर रखें और पिंडलियों को उसके लंब रूप में रखें। (चित्र 44 और 45)। भुजाओं और पैरों को ढीला छोड़ें और उन्हें सभी तनावों से मुक्त करें तथा इस अध्याय में दिए गये सभी निर्देशों का यथासंभव पालन करें।

टांगों का सुन्न होना

35. प्राणायाम के लिए किसी भी आसन में बैठने से टांगें सुन्न हो जाती हैं क्योंकि एक ही आसन में बैठने के कारण रक्त का प्रवाह रुक जाता है। फिर भी इसे ठीक करना आसान है। दो या तीन मिनट के लिए घुटने झुकाकर शवासन करें और आसन करते समय एड़ियों को नितंब के समीप रखें (चित्र 46)। इसके बाद टांगों को सीधा करें (चित्र 47 और 48)। पिंडली की मांसपेशियों, घुटनों के पिछले भागों, एड़ियों और जोड़ों को सीधा करें और अंगूठों को छत की ओर फैलाएं (चित्र 49)। इस स्थिति में कुछ देर रहें और बाद में टांगों को तिरछे रखें (चित्र 50)। इस प्रकार टांगों में रक्त का प्रवाह होने लगेगा और टागों की जड़ता लुप्त हो जाएगी।

भुजाएं और कंधे

36. कंधों को गर्दन से दूर दोनों ओर फैलाएं। उन्हें कानों की पालियों से दूर यथासंभव जितना नीचे हो सके, ले जाएं और फर्श के समानांतर रखें। बगलों के सामने की त्वचा ऊपर की ओर और पिछले भाग की त्वचा नीचे की ओर हो जाती है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय कंधे कानों की ओर गतिशील हो जाते हैं। उन्हें सचेत रूप से तथा लगातार समायोजित करें। इससे कुहनियां, जमीन के अधिक निकट आ जाती हैं और यह सुनिश्चित हो जाता है कि ऊपरी भुजाओं का प्रसार तथा लंबाई आगे और पीछे की ओर है। कुहनियों को कंधों की ओर न फैलाएं अथवा न ही उस ओर संचलित करें (चित्र 51 और 52)।

37. अध्याय 22 में कतिपय प्रकार के प्राणायाम के लिए नासारंध्रों पर अंगुलियों की स्थिति तथा निचली बाहों के समायोजन के बारे में विशद चर्चा की गई है।

सिर और गला

38. सिवाय उस स्थिति के, जब आप नीचे लेटे हों, कभी सिर को सीधा न रखें; चिबुकबंध बनाएं ताकि सिर का उच्च भाग ऊंचा न उठे बल्कि प्राणायाम के दौरान बिना किसी हलचल के स्थिर रहे। इससे नासिका के उच्च भाग के दोनों ओर की दोनों नाड़ियों में सूक्ष्म मार्ग खुल जाता है। नासिका के उच्च भाग में संकुचन से गला कड़ा हो जाता है और गर्दन के पिछले भाग के चारों ओर की कठोरता यह प्रदर्शित करती है कि सिर की स्थिति ठीक नहीं है। अब सिर की स्थिति को ठीक करने के लिए गले के आंतरिक तनाव को कम करें, ऊपरी होंठ को ढीला छोड़ें और पुतलियों को नीचे की ओर लाएं।

39. खोपड़ी की त्वचा को ढीला छोड़ें और नाड़ियों को निष्क्रिय रहने दें ताकि मस्तिष्क स्थिर और शांत रह सके। कनपटियों के ऊपर की त्वचा को कभी भी कड़ा न करें और न उसे उठाएं ही। होठों को न दबाएं। लेकिन उन्हें ढीला छोड़ें और कानों की ओर निष्क्रिय रहने दें।

जिह्वा

40. जिह्वा को निष्क्रिय रखें और उसे ढीला छोड़ें ताकि वह निचले तालू पर लगी रहे। यह ध्यान रखें कि उसका अग्र भाग ऊपरी तालू अथवा दांतों को स्पर्श न करे। पूरक क्रिया, रेचक क्रिया अथवा कुंभक क्रिया के समय जबड़ों को न पीसें और जिह्वा को चलाएं नहीं। यदि जिह्वा संचलित होगी तो लार बहेगी। फिर भी जब आप प्राणायाम का अभ्यास करेंगे तब लार बहेगी और एकत्र होगी। उसकी चिंता न करें बल्कि ताजा श्वास लेने से पूर्व लार को निगल जाएं। यदि आप जिह्वा को निष्क्रिय रखेंगे तो यह प्रवाह धीरे-धीरे रुक जाएगा।

नासिका

41. नासिका श्वास के प्रवाह और ध्वनि को नियंत्रित करती है। सिर को किसी ओर न हिलाते हुए नासिका के सिरे और सेतु को उरोस्थि तक भौंहों के बीच रखें। नासिका का सिरा पूरक क्रिया के दौरान ऊपर उठ सकता है अतः सचेत रहें और जान-बूझकर नासिका-सेतु को नीचे रखें। यदि नासिका-सेतु अथवा नासिका का सिरा ऊपर की ओर उठता है तो श्वास की ध्वनि कर्कश होगी।

नेत्र और कान

42. नेत्र मस्तिष्क की और कान मन की अस्थिरता को नियंत्रित करते हैं। वे ऐसी नदियों के समान हैं जो मस्तिष्क और मन को आत्मा रूपी समुद्र तक ले जाते हैं। प्राणायाम का अभ्यास नेत्र बंद करके, गतिहीन होकर और कानों को श्वसन की ध्वनियों के प्रति सचेत रखकर करना चाहिए। नेत्रों को सरलता से बंद करें और निचली पलकों को निष्क्रिय रखते हुए ऊपरी पलकों की सहायता से पुतलियों पर हलका दबाव डालें। इससे नेत्र कोमल हो जाएंगे। उन्हें कठोर और रूखा न होने दें। ऊपरी पुतलियों को उनके कोटरों के बाह्य कोनों तक संचलित करें जिससे नासिका-सेतु के समीप आंतरिक कोनों की त्वचा का तनाव कम किया जा सके। पुतलियों को स्थिर और नासिका-सेतु से समान दूरी पर रखें। माथे के मध्य भाग से त्वचा के तनाव को कम करें क्योंकि इससे भौंहों के बीच की शिकन दूर हो जाती है और यह भाग निष्क्रिय हो जाता है।

43. प्रारंभ में बैठने की कला पर अधिकार पाना काफी कठिन होता है क्योंकि शरीर अचेतन रूप से झुक जाता है। अतः एक-एक सेकेंड के बाद बीच-बीच में नेत्र खोलकर इस बात की जांच करते जाएं कि क्या शरीर झुक गया है, या सिर ऊंचा या नीचा है अथवा एक ओर को झुक गया है। इसके बाद गले का तनाव और चेहरे

की त्वचा का कसाव देखें, विशेषकर कनपटियों के चारों ओर ध्यान दें। अंत में यह पता लगाएं कि नेत्र टिमटिमा रहे हैं अथवा स्थिर हैं। इसके बाद शरीर और सिर को सही अवस्था में रखें, गले को ढीला छोड़ें और नेत्रों को निश्चल बनाए रखें। जब यहां की मांसपेशियां विश्राम करती हैं तब वहां की त्वचा भी विश्राम करती है। ऊपरी होंठ और नथुने ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ऊपरी होंठ के भाग को ढीला छोड़ें क्योंकि इससे चेहरे की मांसपेशियों और मस्तिष्क को विश्राम करने में सहायता मिलती है। प्राणायाम का अभ्यास बैठने की अवस्था में करते समय यदि त्वचा कनपटियों के चारों ओर कानों की ओर संचलित होती हो तो इसका अर्थ होता है कि मस्तिष्क पर दबाव पड़ रहा है; और यदि यह नेत्रों की ओर संचलित होती हो तो समझना चाहिए कि मस्तिष्क को आराम मिल रहा है। लेटी हुई अवस्था में कनपटियों के चारों ओर की त्वचा कानों की ओर संचलित होती है नेत्रों की ओर नहीं।

44. दृष्टि को इस प्रकार अंतर्मुखी बनाएं मानो बंद नेत्रों से उसके पीछे कुछ देख रहे हों। आपको अनुभव होगा कि आपके नेत्र खुले हुए हैं जबकि दृष्टि अंतर्मुखी है (चित्र 53 और 54)। पुतलियों को ऊपर और नीचे की ओर संचलित करना चाहिए जैसे आप श्वास ले रहे हों और निकाल रहे हों। इस प्रक्रिया को रोकने का प्रयत्न करें क्योंकि उनके संचलन से मस्तिष्क में क्रियाशीलता उत्पन्न हो सकती है।

45. जब पुतलियां शिथिल होती हैं तो उदासी छा जाती है। जिस क्षण पुतलियां टिमटिमाती हैं उस समय अवरोध उत्पन्न हो जाता है। यदि ऊपरी पुतली संकुचित हो तो विचार इस प्रकार आते-जाते हैं जैसे वायु में अग्निशिखा इधर-उधर हिलती है। ऐसी कोई भी अवस्था उस समय नहीं हो पाती जब पुतलियां पूर्णतया विश्राम कर रही हों।

यदि नेत्रों की बरौनियां परस्पर नहीं मिलती तो मस्तिष्क सक्रिय होता है और विश्राम नहीं करता। यदि भौहों के चंद्राकार में तनाव है तो इस स्थान के बाल खड़े हो जाएंगे जैसाकि क्रोध की भावना में होता है, परंतु यदि भौहें सपाट हैं तो मस्तिष्क आराम की स्थिति में होता है।

47. कानों के छिद्रों को एक-दूसरे से समान स्तर पर रखें और कंधों के उच्च भाग से उन्हें समान दूरी पर रखें। कानों को श्वसन की ध्वनि सुनाई पड़नी चाहिए और अभ्यास के दौरान आपको हलका महसूस होना चाहिए। जबड़ों को न दबाएं क्योंकि इससे कानों के चारों ओर का भाग कड़ा हो जाएगा और उन्हें बंद कर देगा जिससे उनके अंदर भारीपन और खुजली महसूस होगी।

48. उस स्थान पर विशेष ध्यान दें जहां नेत्रों, कानों और फुफ्फुसों से नेत्रों के पीछे और उनके बीच में स्थित मस्तिष्क के केंद्र में नाड़ियों से सूक्ष्म ऊर्जा प्रवाहित होती है। यही वह केंद्र है जहां इन ऊर्जाओं को नियंत्रित किया जाता है (देखें अध्याय 5)। यह वही स्थान है जहां श्वास पर नियंत्रण प्रारंभ किया जाता है।

मस्तिष्क

49. मस्तिष्क एक कंप्यूटर है और यह विचार करने का एक यंत्र है। मन में भावना होती है लेकिन मस्तिष्क में नहीं। चूंकि मस्तिष्क शरीर और ज्ञानेंद्रियों की क्रियाओं पर नियंत्रण करता है इसलिए इसे निश्चेष्ट रखना चाहिए। प्राणायाम में मस्तिष्क प्रेरक होता है, कर्त्ता नहीं, बल्कि साक्षी होता है। फुफ्फुस अभिनेता के समान है और मस्तिष्क निदेशक के समान है।

50. यदि बैठने का आसन सही, दृढ़, स्थिर और समान रूप से संतुलित है तो संवेगों पर नियंत्रण किया जा सकता है। मस्तिष्क ऐसा हल्का महसूस करता है मानो वह उड़ रहा हो। इसके बाद वहां कोई भी तनाव महसूस नहीं होता है और इस प्रकार कोई भी ऊर्जा बर्बाद नहीं होती है। यदि ललाटिक मस्तिष्क में ऊपर की ओर उठान है तो चिड़चिड़ापन और तनाव महसूस होते हैं; यदि इसे एक ओर झुका दिया जाता है तो दूसरी ओर भारीपन महसूस होता है जिससे इसका संतुलन बिगड़ जाता है।

51. बुद्धिजीवी घमंडी हो सकते हैं। बुद्धि धन के समान एक अच्छा सेवक है परंतु बुरा मालिक है। जब प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है तो योगी अपना सिर झुका लेता है और अपनी खोपड़ी के पृष्ठ भाग की तुलना में अग्रभाग की अवस्था को समायोजित कर लेता है ताकि वह अपनी बौद्धिक उपलब्धियों में अपने आपको विनम्र और गर्वरहित बनाए रख सके।

52. योगी जानते हैं कि मस्तिष्क विद्यार्जन का स्थान है जबकि मन में विषयी ज्ञान (बुद्धि) का अनुभव होता है। मन बाह्य आच्छादन है और बुद्धि उसका तत्व है। मन हृदय के केंद्र में स्थित होता है जहां संवेगीय उतार-चढ़ाव उत्पन्न होते हैं।

53. जब संवेग और बुद्धि दोनों खामोश हों और उनमें कोई उतार-चढ़ाव भी न हो तो योगी को सर्वप्रथम ज्ञानेंद्रियों की शांति का अनुभव होता है और उसके बाद मन की शांति। इसके बाद आध्यात्मिक शांति का विरल और परिपक्व अनुभव होता है जो उसे सांसारिक विचारों और चिंताओं से मुक्त कर देता है। वह आत्मा की विरल और शुद्ध अवस्था अर्थात् एक संपूर्ण चेतना अथवा मनुष्य में देवत्व के रूप को जान लेता है। इस प्रकार ससीम असीम में विलीन हो जाता है। यही समाधि है जो योगी का अनंत लक्ष्य है।

12

प्राणायाम के लिए मन को तैयार करने की कला

जब श्वास स्थिर या अस्थिर होती है तब मन की स्थिति भी वैसी ही हो जाती है और योगी भी उसी के अनुरूप ढल जाता है इसलिए श्वास पर नियंत्रण करना चाहिए ।

हठयोग प्रदीपिका अध्याय दो '2

1. जीवन वृक्ष के बारे में यह कहा जाता है कि उसकी जड़ें ऊपर होती हैं और शाखाएं नीचे क्योंकि उसकी तंत्रिका प्रणाली की जड़ें उसके मस्तिष्क में होती हैं । सुषुम्ना धड़ है जो मेरुदंड स्तंभ में से होकर नीचे आती है जबकि नाड़ियां मस्तिष्क से सुषुम्ना में नीचे उतरती हैं और सारे शरीर में शाखाओं के समान फैल जाती हैं ।

2. प्राणायाम के लिए बैठने की कला का विवरण अध्याय 2 में दिया गया है जिसका संबंध साधक की उस मानसिक तैयारी से है जिसकी आवश्यकता प्राणायाम के अभ्यास के लिए होती है ।

3. शिराएं, धमनियां और नाड़ियां पूरे शरीर में ऊर्जा संचलन और वितरण के लिए सरणियों के समान होती हैं । आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर को प्रशिक्षित किया जाता है जिससे नाड़ियां प्राण के प्रवाह के अवरोध से मुक्त हो जाती हैं । यदि नाड़ियां अशुद्धता की वजह से अवरुद्ध हो जाएं तो ऊर्जा पूरे शरीर में विकसित नहीं हो पाती । यदि नाड़ियां परस्पर उलझ जाती हैं तो उन्हें स्थिर नहीं रखा जा सकता और यदि स्थिरता प्राप्त नहीं की जा सकी तो प्राणायाम का अभ्यास संभव नहीं है । यदि नाड़ियां अस्त-व्यस्त हो जाती हैं तो साधक की वास्तविक प्रकृति और वस्तुओं का सार नहीं खोजा जा सकता ।

4. आसनों के अभ्यास से तंत्रिका प्रणाली सशक्त होती है ओर शवासन के अभ्यास से अस्त-व्यस्त स्नायु आराम पाते हैं । यदि स्नायु ध्वस्त हो जाएं तो मन भी काम नहीं करता । यदि स्नायुओं में तनाव है तो मन में भी तनाव आ जाता है । जब तक मन विश्राम की स्थिति में संलग्न, शांत और ग्रहणशील न हो तब तक प्राणायाम का अभ्यास नहीं किया जा सकता ।

5. शांति की खोज में आधुनिक विश्व ध्यान और प्राणायाम की प्राचीन कला के लाभ के प्रति अधिक रुचि दिखा रहा है । प्रारंभ में दोनों ही विद्याएं आकर्षक होती हैं लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ऐसा लगता है कि उनका सीखना न केवल कठिन कार्य है अपितु ये दोनों विद्याएं ही बहुत कठिन और आवृत्तीय होती हैं क्योंकि इनकी प्रगति बहुत धीमी होती है । इसके विपरीत आसनों का अभ्यास बराबर चित्ता-कर्षक और मन रमाने वाला होता है क्योंकि बुद्धि को केंद्रित कर लिया जाता है और शरीर के विभिन्न भागों को फिर से शक्ति जुटाई जाती है । इससे आनंद की भावना उत्पन्न होती है । प्रारंभ में प्राणायाम करते समय ध्यान दोनों नासारंध्रों, कोटर मार्गों, वक्ष, मेरुदंड और डायाफ्राम की ओर होता है । इस प्रकार बुद्धि को शरीर के अन्य भागों की ओर नहीं लगाया जा सकता । अतः प्राणायाम तब तक चित्ताकर्षक नहीं हो सकता जब तक कि शरीर और मन को श्वास के प्रवाह के लिए प्रशिक्षित न किया जाए और यह स्थिति महीनों और वर्षों हो जाने पर भी ऐसी लगती है कि अधिक प्रगति नहीं हुई है, फिर भी सत्यनिष्ठ और स्थिर प्रयासों तथा सहनशीलता से साधक का मन श्वास के नियमित प्रवाह के प्रति ग्राह्य हो जाता है तब वह प्राणा-याम के सौंदर्य और सुगंध का अनुभव कर उठता है और वर्षों के अभ्यास के बाद वह इसकी सूक्ष्मता को समझ पाता है ।

6. प्राणायाम के अभ्यास के लिए दो बातें अनिवार्य हैं—अचल मेरुदंड और स्थिर अपितु सचेत मन । फिर भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो व्यक्ति पिछले भाग की ओर झुकने का अभ्यास करते हैं उनका मेरुदंड कितना हा लचीला क्यों न हो जाए वे इस स्थिति में अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाते; अन्य व्यक्ति जो आगे झुकने का अत्यधिक अभ्यास करते हैं उनका मेरुदंड कितना ही स्थिर क्यों न हो, उनका मन शांत और सचेत नहीं हो पाता । पिछली ओर झुकने से फुप्फुसों का प्रसार होता है जबकि आगे की ओर झुकने से वे फैल नहीं पाते । साधक को इन बातों के बीच संतुलन रखना चाहिए ताकि उनका मेरुदंड स्थिर रह सके और मन सचेत तथा अविचल रहे ।

7. प्राणायाम का अभ्यास यांत्रिक नहीं होना चाहिए । मस्तिष्क और मन को सावधान रखना चाहिए ताकि शरीर की स्थिति को और क्षण-प्रतिक्षण श्वास के प्रवाह को सही और समायोजित किया जा सके । कोई भी व्यक्ति इच्छा शक्ति के बल पर प्राणायाम का अभ्यास नहीं कर सकता; इसलिए किसी प्रकार के अनु-शासन की कोई आवश्यकता नहीं है । मन और बुद्धि की पूर्ण ग्राह्यता अनिवार्य है ।

8. प्राणायाम में चित्त (मन, बुद्धि और अहं) तथा श्वास के बीच संबंध उसी प्रकार का होता है जैसाकि मां और उसके बच्चे के बीच में होता है । चित्त मां के समान है । जैसे मां अपने बच्चे को प्यार, देखभाल और त्याग से पालती है, उसी प्रकार चित्त भी प्राण का पालन करता है ।

9. श्वास अशांत नदी के समान है जो बांधों और नहरों के तैयार किए जाने पर प्रचुर ऊर्जा उपलब्ध कराती है । प्राणायाम साधक को सिखाता है कि श्वास की ऊर्जा किस प्रकार उत्पन्न की जाती है जिससे शक्ति और बल उपलब्ध हो सकता है ।

10. फिर भी **हठयोग प्रदीपिका** (अध्याय दो, 16-17) इस बात की चेतावनी देता है : जैसे एक प्रशिक्षक सिंह, हाथी या चीते को धीरे-धीरे पालतू बनाता है इसी प्रकार साधक को भी शनैः-शनैः अपने श्वास पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहिए अन्यथा उसका विनाश हो सकता है। प्राणायाम के उपयुक्त अभ्यास से सभी प्रकार के रोगों का निदान हो जाता है अथवा उन पर नियंत्रण कर लिया जाता है। किंतु अनुचित अभ्यास से सभी प्रकार की श्वास संबंधी बीमारियां यथा खांसी, दमा, सिर, नेत्र और कानों के दर्द उत्पन्न हो जाते हैं।

11. मन और श्वास की स्थिरता एक दूसरे को प्रभावित करती है और बुद्धि को भी स्थिर बनाती है। जब वे दोलायमान न हो तब शरीर सशक्त हो जाता है और साधक में साहस भर जाता है।

12. मन इंद्रियों का स्वामी होता है जैसे श्वास मन का। श्वास की ध्वनि उसकी स्वामिनी है और जब ध्वनि की एकरूपता बनाई रखी जाती है तो तंत्रिका प्रणाली शांत हो जाती है। तत्पश्चात् श्वास सरलता से प्रवाहित होती है और साधक को ध्यान करने के लिए तैयार कर देती है।

13. आसनों के अभ्यास में नेत्र और प्राणायाम में कान प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। पूर्ण सचेत रहने और नेत्रों के उपयोग से कोई भी व्यक्ति आसन सीख सकता है और उन आसनों में उपयुक्त संतुलन रख सकता है। आसनों पर इच्छा-शक्ति से अधिकार किया जा सकता है और इसके लिए अवयवों को सहायक बनाया जा सकता है फिर भी प्राणायाम इस प्रकार नहीं किया जा सकता। प्राणायाम का अभ्यास करते समय नेत्रों को बंद कर लिया जाता है और मन को श्वास की ओर केंद्रित कर लिया जाता है जब कान श्वास की स्वर-लहरी, प्रवाह या सूक्ष्म भेद की ध्वनि सुनते हैं तो इन प्रक्रियाओं को विनियमित कर लिया जाता है। उनकी गति कम कर दी जाती है और उन्हें सरल बना दिया जाता है।

14. आसनों के प्रकार अनंत हैं क्योंकि विभिन्न प्रकार के कई आसन और संचलन हैं तथा जब आसन किए जाते हैं उस समय ध्यान परिवर्तन होता है। कारण इस प्रकार हैं : पहला, साधक को केवल एक ही आसन में अभ्यास करना होता है; दूसरा, साधक को श्वास की लगातार और स्थिर गति बनाए रखनी होती है। यह उसी प्रकार है जैसे हम संगीत के गायन और स्वर-लहरी की गत्यात्मकता को सीखने से पहले ताल का अभ्यास करते हैं।

15. जब आसनों का अभ्यास किया जाता है तो गति संचलन स्थूल शरीर से अज्ञात सूक्ष्म शरीर की ओर होता है। प्राणायाम में यह गति-संचलन आंतरिक सूक्ष्म श्वास से बाह्य स्थूल शरीर की ओर होता है।

16. जिस प्रकार जलती हुई लकड़ी को राख और धुंआ ढक लेते हैं उसी प्रकार शरीर और मन के मैल साधक की आत्मा को ढक लेते हैं। जिस प्रकार वायु, राख और धुंए को स्वच्छ कर देती है और लकड़ी जल उठती है उसी प्रकार दैवी चिंगारी साधक में चमक पैदा कर देती है। जब वह प्राणायाम का अभ्यास करता है, उस समय उसका मन अशुद्धताओं से मुक्त हो जाता है और वह ध्यान करने योग्य बन जाता है।

13

मुद्राएं श्रौर बंध

1. प्राणायाम की तकनीकों का अनुसरण करने के लिए यह आवश्यक है कि मुद्राओं और बंधों के बारे में कुछ जाना जाए। संस्कृत शब्द मुद्रा का अर्थ सील अथवा ताला होता है। इससे आसनों की स्थिति ज्ञात होती है जो शरीर के छिद्रों को बंद कर देती हैं और वहां अंगुलियां तथा विशेष प्रकार के हाथ की मुद्राएं काम में लाई जाती हैं।

2. बंध का अर्थ बंधन, परस्पर जोड़ना, नियंत्रण अथवा कसकर पकड़ना है। इसका संबंध एक ऐसे आसन से भी है जिसमें शरीर के कतिपय अवयव या भाग कसकर बांध लिए जाते हैं, उन्हें संकुचित कर लिया जाता है तथा उन पर नियंत्रण किया जाता है।

3. जब विद्युत उत्पन्न की जाती है तो यह आवश्यक है कि इसके लिए ट्रांसफारमर, कंडक्टर, फ्यूज, स्विच और इंसूलेटिड तार हों जो बिजली को अपने गंतव्य तक ले जा सकें; अन्यथा विद्युत धारा प्राणघातक हो जाएगी। जब योगी के शरीर में प्राणायाम के द्वारा प्राण का प्रवाह किया जाता है तो योगी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह बंधों का उपयोग करे ताकि ऊर्जा नष्ट होने से बचाई जा सके और बिना किसी हानि के सही स्थान पर ले जाई जा सके। बंध के बिना प्राणायाम का अभ्यास प्राण के प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न करता है और तंत्रिका प्रणाली को हानि पहुंचाता है।

4. हठयोग की पुस्तकों में बताई गई कई मुद्राओं में से जालंधर, उड्डीयान और मूल बंध प्राणायाम के लिए अनिवार्य हैं। वे ऊर्जा के वितरण में सहायता करते हैं और शरीर की गंदगी को दूर करके अधिक स्वच्छ बनाते हैं। इनका अभ्यास सुप्त कुंडलिनी को जगाने के लिए किया जाता है और प्राणायाम के दौरान सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊर्जा के प्रवाह को दिशा दी जाती है। इनका उपयोग समाधि की दशा को अनुभव करने के लिए अनिवार्य है।

जालंधर बंध (चित्र 55 से 65 तक)

5. साधक को जिस बंध पर पहले अधिकार पाना है, वह जालंधर बंध है। जाल

का अर्थ पाश, जाला अथवा जाली है । इस पर उसी समय अधिकार पाया जाता है जब सर्वांगासन और उसके चक्र को संपन्न किया जाए जबकि उरोस्थि को चिवुक से दबाए रखा जाता है ।

तकनीक

(क) आरामदायक आसन यथा सिद्धासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वीरासन, बद्ध-कोणासन अथवा पद्मासन में बैठें (देखें चित्र 3 से 14 तक) ।

(ख) पीठ को सीधा रखें । उरोस्थि और पसली पिंजर के अग्रभाग को उठाएं ।

(ग) गर्दन के दाएं-बाएं भाग को बिना किसी तनाव के फैलाएं और कंधें पटल को शरीर की ओर चलाएं; वक्षीय और ग्रैव-मेरुदंड को नतोदर रखें और सिर को गर्दन के पश्च भाग से सीने की ओर ऊपर और नीचे झुकाएं ।

(घ) गले को न दबाएं अथवा न ही गले की मांसपेशियों पर दवाव डालें । इसको आगे-नीचे अथवा नितांत पीछे की ओर न धकेलें । (चित्र 55 और 56) गर्दन और गले की मांसपेशियों को नरम रखें ।

(ङ) सिर को नीचे लाएं ताकि जवड़े की हड्डी का सिरा और दोनों ओर के भाग सीने की अग्र दीवार पर हंसुलियों के बीच गर्त में समान रूप से आराम कर सकें ।

(च) चिबुक को एक ओर अथवा दूसरी ओर अपेक्षाकृत अधिक न फैलाएं (चित्र 59) । गर्दन को भी एक ओर न झुकाएं (चित्र 60) इससे दर्द और थकान हो सकती है जो बहुत समय तक चल सकती है । जैसे-जैसे लचीलापन बढ़ता जाता है वैसे-वैसे गर्दन झुकती जाती है ।

(छ) चिबुक को नीचे की ओर न दबाएं जैसाकि चित्र 55 में दिखाया गया है बल्कि सीने को ऊंचा उठाएं ताकि झुकी हुई चिबुक से उसका स्पर्श हो सके जैसा कि चित्र 58 में दिखाया गया है ।

(ज) सिर के मध्य भाग और चिबुक को उरोस्थि, नाभि और मूलाधार के मध्य के साथ संरेखण की स्थिति में रखें । (चित्र 61) ।

(झ) आंतों को उस समय न धंसाएं जब चिबुक सीने से लगी हो (चित्र 62) ।

(ञ) कनपटियों को विश्राम दें और नेत्रों तथा कानों को निष्क्रिय रखें (चित्र 57) ।

(ट) यही जालंधर बंध है ।

प्रभाव

धड़ के मध्य भाग में सूर्य चक्र होता है । योग के अनुसार यह जठराग्नि का स्थान है जो भोज्य पदार्थों को जलाता है और ताप उत्पन्न करता है । मस्तिष्क के मध्य भाग में चंद्र चक्र स्थित है और इससे शीत उत्पन्न होती है । जालंधर बंध के अभ्यास से गर्दन के चारों ओर नाड़ियों के जाल के कारण चंद्र चक्र की शीत ऊर्जा नीचे की ओर प्रवाहित नहीं हो पाती और सूर्य चक्र की उष्ण ऊर्जा फैल जाती है । इस प्रकार जीवन का अमृत संगृहीत हो जाता है और आयु स्वतः बढ़ जाती है । बंध इड़ा और पिंगला नाड़ियों को भी दबाता है और सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण प्रवाहित कराता है ।

जालंधर बंध से नासिका के मार्ग स्वच्छ हो जाते हैं और रक्त का प्रवाह प्राण (शक्ति) से हृदय, सिर और गर्दन की अंतःस्रावी ग्रंथियों (अवटुग्रंथि और उपअवटु-ग्रंथि) की ओर प्रवाहित होता है। यदि प्राणायाम जालंधर बंध के विना किया जाए तो हृदय, मस्तिष्क, पुतलियों और कान के अंदर शीघ्र ही दवाव महसूस होता है। इससे चक्कर आ सकते हैं।

इससे मस्तिष्क विश्राम पा जाता है और बुद्धि (मन, बुद्धि और अहंकार) भी विनम्र हो जाती है।

ध्यान देने योग्य संकेत

जिन साधकों की गर्दनें कड़ी होती हैं, उन्हें अपना सिर यथासंभव नीचे रखना चाहिए ताकि इस प्रकार अनावश्यक रूप से बेचैनी न हो (चित्र 63) अथवा कपड़े को लपेट कर और उसे हंसली के ऊपरी भाग में रख लिया जाए (चित्र 64-65)। चिबुक से दबाने की अपेक्षा सीने को उठाकर यह कपड़ा पकड़ना चाहिए (देखें चित्र 57) इससे गले का तनाव शिथिल हो जाता है और श्वसन क्रिया आरामदायक हो जाती है।

उड्डीयान बंध

6. उड्डीयान, जिसका अर्थ ऊंचा उड़ना है, उदरीय पकड़ मानी जाती है। इस क्रिया में प्राण या ऊर्जा को पेट के निचले भाग से सिर तक प्रवाहित किया जाता है। डायाफ्राम पेट के निचले भाग से वक्ष तक उठ जाता है और इससे पेट के अवयव पिछली ओर और मेरुदंड स्तंभ की ओर ऊपर उठ जाता है।

तकनीक

सर्वप्रथम उड्डीयान को खड़े आसन में अभ्यास करके पूर्णता प्राप्त करें जैसी कि आगे व्याख्या की गई है। तत्पश्चात् प्राणायाम में इसका प्रारंभ करें जब बाह्य कुंभक (पूर्ण रेचक क्रिया और पूरक क्रिया के प्रारंभ से पूर्व बीच की अवधि) में आसन लगाया गया हो। प्राणायाम में उड्डीयान आसन उस समय तक कभी न लगाएं जब तक आपने इसमें पूर्ण दक्षता न प्राप्त कर ली हो और यह स्थिति अंतर कुंभक (पूर्ण पूरक क्रिया और रेचक क्रिया के प्रारंभ के बीच की अवधि में श्वसन क्रिया) में नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे हृदय को थकान हो सकती है।

(क) ताडासन में खड़े हों (चित्र 25)
(ख) टांगों के बीच में लगभग एक फुट की दूरी रखते हुए उन्हें फैलाएं।
(ग) मुड़े हुए घुटनों के साथ कुछ आगे झुकें, अंगुलियों को फैलाएं और हाथ से जांघों के मध्य भाग को पकड़ें।
(घ) भुजाओं को कोहनियों पर हलके से झुकाएं और जालंधर बंध में यथासंभव चिबुक को नीचा करें।
(ङ) गहराई से अंदर साँस लें और उसके बाद शीघ्र ही सांस बाहर निकालें ताकि

वायु एक साथ फुफ्फुसों से बाहर निकल आए ।

(च) पूरक क्रिया के बिना सांस रोकें । पेट के पूरे भाग को मेरुदंड की ओर पीछे खीचें और उसे ऊपर की ओर उठाएं (चित्र 66) । उड्डीयान अभ्यास के दौरान वक्ष को कभी भी खाली न करें ।

(छ) कटि और पृष्ठ-मेरुदंड को आगे और ऊंचा उठाएं । पेट के अवयवों को मेरुदंड की ओर भीचें और उन्हें उससे दबाएं ।

(ज) पेट की पकड़ को बनाए रखें । जांघों से हाथों को ऊंचा रखें और उन्हें श्रोणीय किनारे पर कुछ ऊपर अधिक संकुचन के लिए विश्राम करने दें ।

(झ) पेट की पकड़ को शिथिल किए बिना अथवा चिबुक को ऊपर उठाकर पीठ को सीधा रखें (चित्र 67) ।

(ञ) इस पकड़ को जब तक आप बनाए रख सकते हैं, रखें, और यह अंतराल 10 से 15 सेकिंड तक होना चाहिए । अपनी सहनशक्ति से परे इस पकड़ को बनाए रखने का प्रयत्न न करें बल्कि धीरे-धीरे समय को बढ़ाते जाएं जैसे-जैसे यह क्रिया आरामदायक होती जाती है ।

(ट) सर्वप्रथम चिबुक और सिर को हिलाए बिना पृष्ठ मांसपेशियों को विश्राम दें । यदि वे संचलित हों तो हृदय और कनपटियों के भाग में तत्काल ही थकान महसूस होती है ।

(ठ) पेट को अपनी सामान्य स्थिति में आने दें । तत्पश्चात् धीरे-धीरे श्वास खींचें (चित्र 68) ।

(ड) पैरा (च) से लेकर (ट) तक बताई गई क्रियाओं के दौरान श्वास न खींचें ।

(ढ) कतिपय श्वास लें और उसके पश्चात् पैरा (क) से लेकर पैरा (ट) तक बताए गए चक्र को दोहराएं परंतु यह एक बार में 6 से लेकर 8 बार किंतु इससे अधिक नहीं होना चाहिए । पकड़ की अवधि को बढ़ाएं अथवा चक्रों की संख्या उतनी बढ़ाएं जितनी आपकी क्षमता हो अथवा किसी अनुभवी शिक्षक या गुरु के वैयक्तिक निरीक्षण में ऐसा करें ।

(ण) इन चक्रों की क्रियाओं को दिन में केवल एक बार करना चाहिए ।

(त) उड्डीयान के अभ्यास में दृढ़ता प्राप्त करें तब धीरे-धीरे प्राणायाम के विभिन्न प्रकारों में उसे प्रारंभ करना चाहिए लेकिन यह स्थिति उसी समय होनी चाहिए जब रेचक क्रिया के बाद श्वास को रोका गया है (यह बाह्य कुंभक की क्रिया है) ।

ध्यान देने योग्य संकेत

(क) केवल खाली पेट ही अभ्यास करें ।

(ख) पेट को उस समय तक न भींचे जब तक कि श्वास बाहर न निकल जाए ।

(ग) यदि कनपटियों पर थकान महसूस होती है अथवा श्वास लेने में परिश्रम करना पड़ता हो तो इसका अर्थ यह है कि उड्डीयान क्षमता से अधिक किया गया है ।

(घ) जब तक उड्डीयान की पकड़ शिथिल न हो जाए तब तक पूरक क्रिया न करें और पूरक क्रिया उस समय तक भी नहीं करनी चाहिए जब तक कि उदरीय अवयव अपनी मूल विश्रांति अवस्था में न लौट आएं।

(ङ) जब उदरीय अवयव दबाए जाएं तो फुफ्फुसों को संकुचित नहीं करना चाहिए।

प्रभाव

यह कहा जाता है कि उड्डीयान बंध के समय विशाल पक्षी जैसा प्राण सुषुम्ना नाड़ी में से होकर उड़ने को बाध्य हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी ऊर्जा के प्रवाह के लिए मुख्य प्रवाहिका है जो मेरुदंड के अंदर स्थित होती है। उड्डीयान बंध सर्वोत्तम बंध है और कोई भी साधक अपने गुरु के अनुदेश के अनुसार इस बंध का लगातार अभ्यास करे तो वह फिर से युवा बन जाता है। इसे उस शेर की भाँति समझा जाता है जो मृत्यु रूपी हाथी पर विजय पा लेता है। उड्डीयान बंध पूर्ण रेचक क्रिया और नवीन पूरक क्रिया के मध्य की अवधि में ही करना चाहिए। इससे डायाफ्राम और उदरीय अवयव संचलित होते हैं। डायाफ्राम बड़े धीरे से उठाना ही हृदय की मांसपेशियों की मालिश करना है और इस प्रकार उन्हें कोमल बनाना है। इससे उदरीय अवयव कोमल हो जाते हैं, जठराग्नि बढ़ जाती है और पाचन क्रिया के मार्ग में विषाक्त पदार्थ कम हो जाते हैं। इस प्रकार इसको शक्तिचालन प्राणायाम भी कहा जाता है।

मूल बंध

7. मूल का अर्थ जड़, स्रोत, आरंभ या कारण और आधार या बुनियाद है। मूल बंध गुदा या जननेंद्रिय की थैली के बीच का मुख्य भाग है। इस भाग की मांसपेशियों को संकुचित करें और उन्हें नाभि की ओर लंब रूप में उठाएं। इसके साथ-साथ, नाभि के नीचे निचले अग्र उदर को मेरुदंड के पिछले और ऊपर के भाग की ओर दबाया जाता है। नीचे की ओर गति वाली अपान वायु में परिवर्तन हो जाता है और उसे ऊपर उठाया जाता है ताकि उस प्राण वायु से मिल सके जिसका स्थान सीने के भाग में होता है।

मूलबंध पहले अंतरकुंभक क्रिया के बाद पूरक क्रिया में करना चाहिए। उड्डीयान और मूलबंध में उदरीय पकड़ के मध्य अंतर होता है। उड्डीयान में गुदा से लेकर डायाफ्राम के समस्त क्षेत्र को मेरुदंड की ओर खींचा जाता है और उसे उठाया जाता है। परंतु मूलबंध में गुदा और नाभि के बीच मूल तथा निचले उदरीय भाग को संकुचित किया जाता है, उसे मेरुदंड की ओर खींचा जाता है और डायाफ्राम की ओर ऊंचा उठाया जाता है। (चित्र 69)

गुदा के समीप की संकोचक मांसपेशियों को सिकोड़ने का अभ्यास (अश्विनी मुद्रा) मूलबंध पर अधिकार प्राप्त करने में व्यक्ति की मदद करता है। अश्व का अर्थ घोड़ा है। इस मुद्रा को इस नाम से इसलिए पुकारते हैं क्योंकि इससे मूत्र करते हुए घोड़े का बोध होता है। इसे विविध आसन विशेषतया ताडासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, उर्ध्वधनुरासन, उष्ट्रासन तथा पश्चिमोत्तानासन करते समय सीखना चाहिए। (देखें **योगदीपिका**)

उड्डीयान और मूलबंध को स्वयं सीखने के प्रयास में भारी खतरा रहता है। उड्डीयान के गलत तरीके के अभ्यास से वीर्य का अनिच्छा से निपात होगा और शक्ति का ह्रास होगा और मूलबंध के अभ्यास से साधक गंभीरता से दुर्बल हो जाएगा तथा उस साधक में पौरुष का अभाव होगा। यहां तक कि सही तरीके से अभ्यास करने में भी मूलबंध के अपने खतरे हैं। इससे काम- धारण शक्ति बढ़ जाती है जिसको साधक अच्छा नहीं मानता। यदि वह इस प्रलोभन का शिकार हो जाता है तो उसकी सभी सुप्त इच्छाएं जाग उठती हैं और छड़ी से सोते हुए सांप को हिलाने के सदृश प्राणघातक हो जाती हैं। यदि साधक तीन बंधों पर अधिकार प्राप्त कर ले तो योगी अपने भाग्य के चौराहे पर खड़ा हो जाता है। एक मार्ग भोग (सांसारिक सुखों को भोगना) और दूसरा मार्ग योग अथवा सर्वोच्च आत्मा के मिलन की दिशा में जाता है। फिर भी योगी को अपने जन्मदाता के प्रति अधिक आकर्षण होता है। साधारणतया इंद्रियां बाह्यमुखी होती हैं और उनका विषयों की ओर आकर्षण होता है तथा वे भोग के मार्ग का अनुसरण करती हैं। यदि इंद्रियों की दिशा में परिवर्तन करके उन्हें अंतर्मुखी बना दिया जाए तो वह योग के मार्ग का अनुसरण करने लगती हैं। योगी की इंद्रियां अंतर्मुखी हो जाती हैं ताकि समस्त सृजन के स्रोत को प्राप्त कर सके। जब महत्वाकांक्षी साधक इन तीनों बंधों के अधिकार प्राप्त कर लेता है तब गुरु का मार्गदर्शन अनिवार्य हो जाता है ताकि उपयुक्त मार्ग-दर्शन में यह बढ़ी हुई शक्ति अपेक्षाकृत उच्च और भले कार्यों की ओर ले जाई जा सके। ऐसी स्थिति में साधक को उर्ध्वरेतस् कहते हैं। जब बिना किसी जबरदस्ती के योगी स्वाभाविक रूप से यौन-उत्तेजना पर अधिकार पा लेता है तब वह अपने वीर्य का क्षय नहीं होने देता। वह पूर्णतया प्रजननक्षम होते हुए भी भव वैरागी (अपना स्वामी) होता है। इसके बाद वह नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर लेता है जो सूर्य के समान दीप्तिमान् होती है।

जब योगी मूल बंध का अभ्यास करता है तो वह सत्य स्रोत अथवा सभी सृजन के मूल तक पहुंचने का प्रयास करता है। उसका लक्ष्य चित्त के बंध को पूर्णतया नियंत्रित करना होता है जिसमें मन, बुद्धि ओर अहंकार सभी समाहित हैं।

14

श्वसन (पूरक) और उच्छ्वसन (रेचक) की कला

1. पूरक क्रिया ब्रह्मांडीय-ऊर्जा को भीतर लेने की ऐसी क्रिया है जो कोई व्यक्ति अपनी वृद्धि और प्रगति के लिए करता है। यह प्रवृत्ति-मार्ग है। यह अनन्त का सान्त के साथ मिलन है। यह जीवन के श्वास को उसी सावधानी और सरलता से भीतर खींचता है जैसे किसी फूल की सुगंध को अंदर खींचकर सारे शरीर में व्याप्त कर दिया जाता है।

2. जब आसन लगाए जाते हैं तो साधक का मन और श्वास उस उत्साही बच्चे के समान होता है जो सदा खोज, सर्जन और अपनी बुद्धि के प्रदर्शन के लिए उतावला रहता है जबकि प्राणायाम का अभ्यास करने में श्वास उस छोटे बच्चे के समान है जो अपनी मां से विशेष ध्यान और देखभाल की मांग करता है। जैसे मां अपने बच्चे को प्यार करती है और अपने जीवन को उसके कल्याण के निमित्त समर्पित करती है उसी प्रकार चेतना श्वास का पालन करती है।

3. इस कला को सीखने के लिए यह जानना आवश्यक है कि इसका विधितंत्र क्या है। सही और गलत क्या है। स्थूल और सूक्ष्म क्या है। तभी साधक को प्राणायाम के सार का अनुभव हो सकता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि चित्त और प्राण के मध्य संबंध वैसा ही होना चाहिए जैसा कि एक मां और उसके बच्चे के बीच होता है। लेकिन इससे पहले ऐसा हो सके, फुफ्फुस, डायाफ्राम और अंतरापर्शुक मांसपेशियों को आसनों द्वारा प्रशिक्षित और अनुशासित कर लेना चाहिए ताकि श्वास लयात्मक रूप से संचलित हो।

4. श्वसन में चित्त का कार्य उस मां के समान है जो अपने बच्चे को खेलते हुए देखकर भावविभोर हो जाती है। यद्यपि वाह्य रूप से उदासीन रहने पर भी वह मानसिक रूप से सचेत रहती है और शांत बनी रहते हुए अपने बच्चे को अधिक ध्यान से देखती है।

5. जब मां सर्वप्रथम अपने बच्चे को स्कूल भेजती है तो वह उसके साथ जाती है, उसका हाथ पकड़कर उसका मार्गदर्शन करती है और इस बात के महत्व पर जोर देती है कि वह स्कूल के भावी साथियों के साथ मित्रता का भाव रखे और अपने पाठों का

अध्ययन करे। मां अपनी वैयक्तिकता को अपने बच्चे में खो देती है जब तक कि बच्चा स्कूली जीवन का अभ्यस्त नहीं हो जाता। इसी प्रकार चेतना भी अपना स्वरूप ऐसी दशा में बदल लेती है जैसे कि श्वास का प्रवाह हो और वह मां के समान अनुसरण करती है तथा श्वास के लयात्मक प्रवाह का मार्गदर्शन करती है।

6. मां बच्चे को चलना सिखाती है और सावधानी से रास्तों को पार करना बताती है। इसी प्रकार चेतना श्वसन मार्ग में से श्वास के प्रवाह का मार्गदर्शन करती है ताकि वह जीवित कोशिकाओं में अवशोषित हो जाए। जैसे-जैसे बच्चा अपने में विश्वास पैदा करता है और स्कूल के अनुकूल होता जाता है तथा स्कूल के द्वार तक पहुंच जाता है मां उसे छोड़ देती है। इसी प्रकार जब श्वास लयात्मक सूक्ष्मता के साथ संचलित होती है तब चित्त उसकी गतियों का अवलोकन करता है और वह शरीर तथा आत्मा से उसे मिला देता है।

7. पूरक क्रिया में साधक अपने मस्तिष्क को ऊर्जा (प्राण) के प्रवाह के लिए ग्रहण और वितरण केंद्र के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास करता है।

8. पेट को उस समय न फुलाएं जब पूरक क्रिया की जाए क्योंकि इससे फुफ्फुस पूर्णतया फैल नहीं पाते। श्वास-प्रश्वास पर न तो दबाव होना चाहिए और न इनकी गति तीव्र होनी चाहिए अन्यथा इससे हृदय पर थकान होगी अथवा मस्तिष्क को हानि पहुंचेगी।

9. बाह्य श्वास (रेचक) वह श्वास है जो पूरक क्रिया के बाद बाहर जाती है। यह अशुद्ध वायु अथवा कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालने के लिए होती है। बाह्य श्वास (रेचक) कम गर्म और सूखी होती है तथा साधक को कोई गंध भी नहीं आती।

10. रेचक जीवात्मा (वैयक्तिक ऊर्जा) का बाह्य प्रवाह है जो परमात्मा (ब्रह्मांडीय ऊर्जा) से मिलन कराता है। यह मस्तिष्क को शांत और मौन बनाती है। यह साधक के अहं का समर्पण है और आत्मा का मिलन है।

11. रेचक एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा शरीर की ऊर्जा धीरे-धीरे मन के साथ मिल जाती है और साधक की आत्मा में विलीन हो जाती है तथा ब्रह्मांडीय ऊर्जा में घुल-मिल जाती है। यह शरीर की परिधियों से चेतना के स्रोत की ओर लौटने का मार्ग है जो निवृत्त मार्ग के नाम से पुकारा जाता है।

12. सीने को चेतना के साथ ऊंचा उठाए रखें और बाह्य श्वास को स्थिरता और सरलता से आगे ले जाएं।

13. श्वास के लयात्मक प्रतिरूप पर विशेष ध्यान देते हुए व्यवस्थित रूप से पूरक और रेचक क्रियाएं इस प्रकार करें जैसे एक मकड़ी व्यवस्थित रूप से अपने जाले को बुनती है और उसके चारों ओर इधर से उधर आती जाती है।

14. कुछ व्यक्तियों के लिए पूरक क्रिया में रेचक क्रिया से अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है जबकि अन्य व्यक्तियों को रेचक क्रिया में अधिक समय लगता है। इसका कारण यह है कि हम अपने जीवन में अनेक चुनौतियों का सामना करते हैं और उन पर हमारी प्रतिक्रियाएं होती हैं जो हमारे श्वास के प्रवाह और रक्त के

दवाव को वदल देती हैं। प्राणायाम का उद्देश्य इन असमानताओं और उलझनों को दूर करना है जो हमारे श्वास के प्रवाह और रक्त के दवाव में पायी जाती हैं और इस प्रयास से व्यक्ति को ऐसा वनाना है कि वह अपने व्यक्तित्व में शांत और असंवद्ध रहे।

पूरक क्रिया की तकनीक

(क) किसी भी आरामदायक आसन में वैठें।

(ख) मेरुदंड को सीने, प्लावी पसलियों और नाभि तक ऊंचा उठाएं तथा उसे सीधा रखें।

(ग) अव सिर को उतना नीचे लाएं जितना कि आप ला सकते हैं (चित्र 63 अथवा 64) जब गर्दन के पीछे लचीलापन आ जाए तव जालंधर वंध करें (चित्र 57)।

(घ) योग के अनुसार मस्तिष्क (मन) संवेगों का स्रोत है और यह नाभि और हृदय के वीच के भाग में स्थित होता है। पीठ को संवेगीय केंद्र के संपर्क में लगातार रखें। चेतना के केंद्र से संपर्क तोड़े विना ही शरीर के अग्रभाग को ऊपर और वाहर फैलाएं।

(ङ) पूरक क्रिया के दौरान सीने को ऊपर और बाहर फैलाएं ताकि वह आगे-पीछे अथवा किनारों पर न झुके।

(च) डायाफ्राम के गुंबद को न तो तनाव दें। और न झटका ही दें वल्कि उसे विश्राम करने दें। डायाफ्राम के आधार से पूरक क्रिया प्रारंभ करें। गहन पूरक क्रिया का मुख्य विंदु नाभि के पट से प्रारंभ होता है और दोनों ओर की प्लावी पसलियों की तरफ नीचे तक होता है।

(छ) पूरक क्रिया के दौरान फुफ्फुसों को निष्क्रिय और प्रतिरोधरहित रखें ताकि आने वाली ऊर्जा को प्राप्त किया जाए और उसे अपने में समाहित किया जाए। जव पूरक क्रिया की जाए तो पूर्ण ध्यान के साथ फुफ्फुसों में वायु खींचें। श्वास के संचलन को फुफ्फुसों के आंतरिक प्रसार के साथ समान और समकालिक करें। (चित्र 70)।

(ज) जिस प्रकार एक सुराही को तले से ऊपर तक भरा जाता है, उसी प्रकार फुफ्फुसों को वायु से लबालब भरें। फुफ्फुसों को हंसली के उच्च भाग और अंदर की वगल तक भरें।

(झ) जिस प्रकार अल्पविकसित व्यक्ति को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष सावधानी वरतनी आवश्यक है उसी प्रकार फुफ्फुसों में श्वास पूर्ण रूप से अंदर तक भर सके इसके लिए भी सतर्क प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अतः गहन पूरक क्रिया के दौरान फुफ्फुसों के नाड़ीतंतुओं को प्रसारित करते हुए इस बात की सावधानीपूर्वक खोज करें।

(ञ) श्वसनी से फुफ्फुसों की परिधि तक श्वास-नलियां पहुंचती हैं जहां वे अनेक श्वसनिकाओं में विभक्त हो जाती हैं। यह देखें कि श्वसनिकाओं के अग्रभाग तक प्रत्येक श्वास पहुंचे।

(ट) शरीर की जीवित कोशिकाओं द्वारा श्वास सोख ली जाती है जैसे मिट्टी जल को सोख लेती है। इस अवशोषण और उस ब्रह्मांडीय ऊर्जा (प्राण) के प्रवाहित होने वाले अंतस्रवण के आह्लादक संवेग को महसूस करें।

(ठ) पूरक क्रिया की ऊर्जा नासिका में प्रवेश करती है और कारण शरीर अथवा आध्यात्मिक शरीर द्वारा ग्रहण की जाती है। पूरक क्रिया में चेतना (चित्त) नाभि (मणिपूरक चक्र) से सीने के उपरी भाग (विशुद्धि चक्र) तक चढ़ती है। साधक को इस क्रिया के पूरे समय में कारण और सूक्ष्म शरीर (देखें अध्याय 2) और स्रोत से ऊर्ध्वगामी चेतना के मध्य संपर्क बनाए रखना होता है। यह संपर्क शरीर, श्वास, चेतना और आत्मा का मिलन कराती है। तत्पश्चात् शरीर (क्षेत्र) और आत्मा (क्षेत्रज्ञ) एक हो जाते हैं।

(ड) धड़ की त्वचा के प्रत्येक रंध्र को ज्ञानचक्षु के रूप में प्राण को समाहित करने के लिए कार्य करना चाहिए।

(ढ) यदि पूरक क्रिया में अधिक ध्वनि होती है तो हथेली की त्वचा में किरकिरापन महसूस होता है।

(ण) यदि पूरक क्रिया के दौरान कंधे उचकाए जाएं तो फुफ्फुसों के ऊपरी भाग पूर्णतया फैल नहीं पाते और गर्दन की घाटिका तन जाती है। ऊपर की चढ़ाई की इस प्रवृत्ति पर निगरानी रखें और कंधों को शीघ्र ही नीचे लाएं (चित्र 52)। उन्हें नीचा और सीने को ऊपर रखने के लिए एक छड़ या भार लें और उसका प्रयोग उसी प्रकार करें जैसा कि चित्र 71 से 74 तक में दिखाया गया है।

(त) गले को विश्राम दें। दांतों का स्पर्श किए बिना निचले तल पर जिह्वा को रखें।

(थ) नेत्रों को बंद रखें और उन्हें विश्राम दें पर अंतर्दृष्टि को सक्रिय बनाएं (चित्र 54)। जब पूरक क्रिया की जाती है तो नेत्र इधर-उधर होने लगते हैं (चित्र 95) इससे बचें।

(द) इस बात पर ध्यान दें कि कान, चेहरे की मासपेशियों और माथे की त्वचा को विश्राम मिले।

(ध) पूरक क्रिया को सही तरीके से करने पर सुस्ती दूर हो जाती है और शरीर तथा मन स्फूर्तिदायक हो जाता है, एवं उसमें ऊर्जा आ जाती है।

रेचक क्रिया की तकनीक

(क) पूरक क्रिया की तकनीकों के संबंध में दिए गए पैरा (क) से लेकर (घ) तक का अनुसरण करें।

(ख) पूरक क्रिया में शरीर श्वास के रूप में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए एक यंत्र की तरह काम करता है। रेचक क्रिया में वह गतिशील हो जाता है तथा श्वास को मंद गति से छोड़ने के लिए एक यंत्र के रूप में कार्य करता है। अंतरापर्शुक मांसपेशियों और प्लावी पसलियों की पकड़ को बनाए रखें। इस पकड़ के बिना संयम और सुगम रेचक क्रिया संभव नहीं है।

(ग) रेचक क्रिया में स्रोत अथवा प्रारंभिक बिंदु सीने का ऊपरी भाग होता है। वहां पकड़ को शिथिल किए बिना, श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालें परंतु पूर्णतया श्वास तभी बाहर निकालें जब नाभि के निचले स्तर पर श्वास रिक्त हो जाए। यहीं शरीर आत्मा के साथ मिल जाता है।

(घ) जैसे ही आप श्वास को निकालते हैं, केवल केंद्रीय रीढ़ के स्तंभ के उठाव को ही नहीं अपितु उसके बाईं और दाहिनी ओर से भी उसे उठाए रखें और धड़ को वृक्ष के तने के समान दृढ़ रखें।

(ङ) शरीर को न तो हिलाएं और न ही झटका दें क्योंकि इससे श्वास, नाड़ियां और मन का प्रवाह भंग हो जाता है।

(च) सीने को निढाल किए बिना श्वास को धीमे और सुगमता से छोड़ें। यदि रेचक क्रिया ठीक नहीं है तो इससे यह सूचित होता है कि शरीर पर पकड़ की ओर श्वास के प्रवाह का नियंत्रण समाप्त हो गया है।

(छ) पूरक क्रिया में धड़ की त्वचा कस जाती है, रेचक क्रिया में आंतरिक संरचनात्मक शरीर की पकड़ को शिथिल किए बिना ही यह कोमल हो जाती है।

(ज) सीने और बांहों की त्वचा को बगलों के समीप एक दूसरे से स्पर्श नहीं करना चाहिए (चित्र 75)। चित्र 51 और 52 में बताईगई विधि के अनुसार बांहों को अनावश्यक रूप से चौड़ा किए बिना ही इस स्थिति में संचलन के लिए स्थान और स्वतंत्रता बनी रहनी चाहिए (चित्र 76)।

(झ) रेचक क्रिया नाड़ियों और मस्तिष्क को शांत करने की कला है। इससे नम्रता उत्पन्न होती है और अहंकार शांत हो जाता है।

15

श्वास धारण (कुंभक) की कला

1. कुंभ का अर्थ घड़ा है जो भरा अथवा खाली हो सकता है। कुंभक दो प्रकार के होते हैं। यह (क) आंतरिक और बाह्य श्वास के मध्य रुकने की स्थिति अथवा (ख) बाह्य और आंतरिक श्वास के मध्य की स्थिति है। यह दुविधा की स्थिति में श्वास को धारण करने की कला है।

2. इसका अर्थ (ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों) से बुद्धि का प्रत्याहार है। यह चेतना की मूल आत्मा (पुरुष) का स्थान है। कुंभक क्रिया साधक को शारीरिक, नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तरों पर मौन बना देती है।

3. कुंभक क्रिया में 'श्वास के धारण को' मस्तिष्क, नाड़ियों और शरीर के 'पुनः तनाव' के रूप में गलत नहीं समझना चाहिए। पुनः तनाव से उच्च रक्त चाप हो जाता है। विश्रांत मस्तिष्क के साथ कुंभक करना चाहिए ताकि तंत्रिका प्रणाली को पुनः शक्तिशाली किया जाए।

4. जब श्वास कुंभक क्रिया की स्थिति में रुक जाती है तब ज्ञानेंद्रियां निश्चेष्ट हो जाती हैं और मन मौन हो जाता है। श्वास शरीर, इंद्रियों और मन के बीच सेतु है।

5. कुंभक क्रिया दो प्रकार से की जाती है : सहित और केवल। जब श्वास को किसी इरादे और अनायास ढंग से रोक लिया जाता है तो इसी को सहित कहते हैं। 'सहित कुंभक' श्वसन में एक विराम है (क) रेचक क्रिया (अंतर या पूरक कुंभक) के प्रारंभ होने से पूर्व पूर्ण पूरक क्रिया के बाद, अथवा (ख) पूरक क्रिया (बाह्य या रेचक कुंभक) के प्रारंभ होने से पूर्व पूर्ण रेचक क्रिया के बाद। 'केवल' का अर्थ 'स्वतः' अथवा 'निरपेक्ष' होता है। 'केवल कुंभक' श्वसन का वह विराम है जो पूरक या रेचक के साथ नहीं होता जिस प्रकार जब कोई कलाकार अपनी कला में मग्न हो जाता है और कोई भक्त अपनी भक्ति में तन्मय हो जाता है। यह स्थिति शरीर की थिरकनों और भय जैसे किसी अप्रत्याशित व्यक्ति के आ जाने से मनुष्य के भाव विभोर होने की स्थिति से पूर्व प्रायः हो जाती है। धैर्य और सहनशीलता इस भावना पर विजय पा लेती हैं। केवल कुंभक नैसर्गिक और अंतरदर्शी होता है। इस स्थिति में व्यक्ति अपने

इष्टदेव में पूर्णतया लीन हो जाता है और विश्व से अलग हो जाता है तथा आनंद और शांति का अनुभव करता है जिससे बुद्धि प्राप्त होती है। व्यक्ति अनंत में लीन हो जाता है (**हठयोग प्रदीपिका** : दो-71)।

6. अंतर कुंभक ब्रह्मांडीय अथवा सार्वभौमिक ऊर्जा के रूप में परमात्मा को प्राप्त करना है जब परमात्मा (ईश्वर) जीवात्मा (वैयक्तिक आत्मा) से मिल जाता है।

7. बाह्य कुंभक ऐसी स्थिति है जिसमें योगी अपनी आत्मा को अपने श्वास के रूप में परमात्मा को समर्पित कर देता है और सार्वभौमिक श्वास में विलीन हो जाता है। यह समर्पण का सर्वोत्तम रूप है क्योंकि इसमें योगी पूर्णतया परमात्मा में तदाकार हो जाता है।

8. **भगवद्गीता** (चार 29/30) में श्री कृष्ण अर्जुन को त्याग (यज्ञ) और योगियों के विभिन्न प्रकार समझाते हैं। इन यज्ञों में से कुंभक प्राणायाम भी एक यज्ञ है जिसके तीन प्रकार हैं : श्वसन-धारण, निश्वसन-धारण (दोनों ही सहित कुंभक कहलाते हैं) और पूर्ण-धारण (केवल कुंभक)। योगी का शरीर त्याग की बलिवेदी है। श्वास का अंत:प्रवाह (पूरक) नैवेद्य है और बाह्य प्रवाह (रेचक) अग्नि है। कुंभक का एक ऐसा क्षण है जब पूरक रूपी नैवेद्य रेचक रूपी अग्नि में स्वाहा हो जाता है और नैवेद्य तथा अग्निशिखा एक हो जाती है। योगी यह ज्ञान अर्जित कर लेता है कि किस प्रकार वह अपने श्वास पर नियंत्रण (प्राणायाम विद्या) प्राप्त करे। गले के ऊपर का भाग अंत:प्रवाह की श्वास (प्राण) का आवास है और बाह्य प्रवाहित श्वास (अपान) का निचला भाग। जब दोनों श्वास लेने में मिल जाते हैं तो यह स्थिति पूरक कुंभक की होती है जब अपान प्राण के संपर्क में आता है तो नि:श्वसन के साथ वायु बाहर निकल जाती है। यह खाली स्थिति रेचक कुंभक है। अनुभव से यह ज्ञान अर्जित होता है। योगी प्राणायाम विद्या को अपनी बुद्धि का एक भाग बना लेता है जिस पर वह अपना ज्ञान, अपनी बुद्धि, अपने जीवन की श्वास और 'आत्मा' को आत्माहुति के रूप में अंतिम रूप से अर्पित कर देता है। यह केवल—कुंभक अथवा पूर्ण समर्पण की स्थिति है जिसमें योगी परमात्मा की भक्ति में पूर्णतया लीन हो जाता है।

9. जिस प्रकार मां अपने बच्चे को प्रत्येक संकट से बचाती है उसी प्रकार चेतना (चित्त) शरीर और श्वास की रक्षा करती है। मेरुदंड और धड़ बच्चे के समान सक्रिय और गतिशील होते हैं और चित्त मां के समान सचेत और संरक्षक होता है।

10. कुंभक में शरीर की थिरकन रेल के इंजन की भाप के समान होती है। इसका ड्राइवर सचेत होता है और उसे चलाने के लिए तैयार रहता है जबकि वह विश्राम की स्थिति में होता है। इसी प्रकार प्राण धड़ को कंपाता है परंतु चित्त विश्राम की स्थिति में होता है और श्वास निकालने अथवा लेने के लिए तैयार रहता है।

11. धड़ की त्वचा की संवेदनशीलता, पकड़ और प्रसार उस अनुशासित बच्चे के समान होती है जो साहसी और सचेत होता है।

12. जब श्वास रोका जाता है तो उस अंतराल की ट्रैफिक संकेतों से तुलना की जा सकती है। यदि कोई व्यक्ति लाल संकेत पर सड़क पार करे तो दुर्घटना हो

सकती है। इसी प्रकार कुंभक में यदि कोई व्यक्ति अपनी क्षमता से अधिक अभ्यास करता है तो तंत्रिका प्रणाली क्षतिग्रस्त हो जाती है। शरीर और मस्तिष्क में तनाव से यह विदित होता है कि चित्त कुंभक में प्राण को बनाए नहीं रख सकता।

13. श्वास को जबरदस्ती न रोकें। जिस क्षण मस्तिष्क तनावग्रस्त हो जाता है उस समय अंदर के कान सख्त और नेत्र लाल, भारी अथवा प्रदाहजनक हो जाते हैं। यह स्थिति उस समय हो जाती है जब कोई व्यक्ति अपनी क्षमता से अधिक अभ्यास करता है। इन चेतावनियों भरे संकेतों को देखें जो उस खतरे की ओर इंगित करते हैं जो समीप होते हैं।

14. कुंभक का उद्देश्य श्वास का गतिरोध करना है। जब श्वास रोक ली जाती है तब वाणी, अवगम और श्रवणशक्ति पर नियंत्रण कर लिया जाता है। इस स्थिति में चित्त विलास और घृणा, लोभ और लालच, अभिमान और द्वेष से मुक्त हो जाता है। कुंभक में प्राण और चित्त दोनों ही एक हो जाते हैं।

15. कुंभक एक ऐसी उत्कट इच्छा हैं जो शरीर के प्रच्छन्न देवत्व को उभारती है। इसी शरीर में आत्मा का वास होता है।

अंतर कुंभक की तकनीक

(क) श्वास के काफी अंदर ले जाने और बाहर निकालने (पूरक और रेचक) पर गहन अधिकार प्राप्त करने से पूर्व श्वसन (अंतर कुंभक) के बाद आप अपने श्वास को रोकने का प्रयत्न न करें। अंतर कुंभक पर अधिकार पाने से पूर्व निःश्वसन (बाह्य कुंभक) के बाद श्वास को रोकने का प्रयत्न न करें।

(ख) इस अधिकार का अर्थ अनुशासनात्मक शुद्धता और श्वास के संचलन के नियंत्रण द्वारा कलात्मक समायोजन से है। कुंभक का प्रयास करने से पूर्व श्वसन की आंतरिक और बाह्य क्रिया की अवधि को समान करें। कुंभक प्रारंभ करने से पूर्व अध्याय 13 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

(ग) धीरे-धीरे अंतर कुंभक का अभ्यास करना सीखें। आंतरिक शरीर की पकड़ को खोए बिना केवल कुछ सैकंडों के लिए ही श्वास को रोकें। शरीर, नाड़ियों और बुद्धि की दशा को देखें। आपको कुंभक में अंतरापर्शुक मांसपेशियों और डायाफ्राम की सूक्ष्म आंतरिक पकड़ को समझने, अनुभव करने और धारण करने में कुछ समय लग सकता है।

(घ) जब आंतरिक धारण (अंतर कुंभक) सीखना प्रारंभ करें तो प्रत्येक कुंभक के बाद कुछ समय का अंतराल देना चाहिए। इससे फुफ्फुस अपने साधारण, स्वाभाविक और ताजी स्थिति में आ जाते हैं और यह स्थिति दूसरे प्रयत्न करने से पूर्व होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, सामान्य अथवा गहन श्वसन के तीन या चार चक्र कुंभक के प्रति चक्र के बाद किए जाने चाहिएं जब तक कि यह अभ्यास पूरा न हो जाए।

(ङ) यदि साधक प्रारंभ में अपनी प्रत्येक पूरक क्रिया के बाद कुंभक की क्रिया (आंतरिक धारण की क्रिया) करे तो इससे फुफ्फुस थकेंगे, नाड़ियां कठोर हो जाएंगी

और मस्तिष्क में तनाव बढ़ जाएगा तथा प्रगति भी बहुत धीमी पड़ जाएगी ।

(च) जैसे-जैसे आप अपने अभ्यास में सुधार करते जाएं वैसे-वैसे साधारण श्वसन और अंतर कुंभक के चक्रों के मध्य समयांतराल को कम करते जाएं ।

(छ) आप अपनी क्षमता को बढ़ाए बिना अपनी श्वास को रोकने का समय बढ़ाते जाएं ।

(ज) यदि पूरक क्रिया और रेचक क्रिया की लय में श्वास के रोकने से उलझन उत्पन्न होती है तो इससे यह विदित होता है कि आप अपनी सीमा को लांघ गए हैं इसलिए कुंभक क्रिया (आंतरिक धारण) के समय को कम करें। यदि लय में किसी प्रकार की कोई उलझन नहीं है तो आपका अभ्यास सही है ।

(झ) कुंभक का सही अभ्यास करने के लिए बंधों का ज्ञान आवश्यक है। वे ऊर्जा के वितरण, नियमन और अवशोषण के लिए सुरक्षा वाल्वों के समान होते हैं और उसके क्षय को रोकते हैं। एक विद्युत मोटर जल जाती है यदि उसके वॉल्टेज को बहुत ऊंचा होने दिया जाए। इसी प्रकार फुफ्फुस वायु से पूरे भरे हुए हों और बंधों द्वारा ऊर्जा को रोका न जाए तो वे क्षतिग्रस्त हो जाएंगे, नाड़ियां घिस जाएंगी और मस्तिष्क अनावश्यक रूप से तनावपूर्ण हो जाएगा । यह उस स्थिति में नहीं हो सकेगा यदि जालंधर बंध के अभ्यास किए जाएं ।

(ण) खड़े होने की स्थिति में अंतर कुंभक न करें क्योंकि आप अपना संतुलन खो सकते हैं और गिर सकते हैं ।

(ट) यदि आप लेटी हुई अवस्था में हों तो अपने सिर के नीचे तकिया रख लें ताकि धड़ की अपेक्षा सिर ऊंचा हो जाए और इस प्रकार सिर में किसी भी प्रकार की कोई थकान महसूस न हो (चित्र 77) ।

(ठ) आंतरिक श्वास धारण (कुंभक क्रिया) में नासिका के सेतु को ऊंचा न उठाएं। यदि वह ऊपर उठता है तो मस्तिष्क संचलन गति में जकड़ जाता है और तब वह धड़ को नहीं देख सकता (चित्र 78) ।

(ड) प्राणायाम के अभ्यास के दौरान सिर और ग्रीवा मेरुदंड को आगे और पीछे होना चाहिए और पृष्ठीय मेरुदंड और उरोस्थि को सीधा रखना चाहिए। (चित्र 76) । इससे मस्तिष्क और ग्रीवा रीढ़ को उरोस्थि की ओर संचलन करने में सहायता मिलती है। इससे माथे को आराम मिलता है। इससे मस्तिष्क की ऊर्जा आत्मा के स्थान पर उतर आती है ।

(ढ) प्रत्येक आंतरिक धारण में डायाफ्राम और उदरीय अवयवों पर पकड़ मजबूत रखें । यह एक ऐसी प्रवृत्ति होती है, चाहे वह अचेतन होकर हो अथवा अनायास ही हो, जो श्वास को अधिक समय तक रोकने के लिए उन्हें बांधती है और शिथिल करती है। इससे बचें क्योंकि इससे ऊर्जा छितर जाती है ।

(ण) यदि फुफ्फुसों या हृदय से थकान महसूस होती हो तो श्वास छोड़ें और कुछ समान अथवा गहरी श्वास लें। इससे फुफ्फुसों में ताजगी आ जाती है ताकि अंतर कुंभक फिर से प्रारंभ किया जा सके। यदि आप थकान महसूस करने के

बाद अंतर कुंभक जारी रखते हैं तो आप शरीर और बुद्धि दोनों के सुसंगत कार्य में उलझन पैदा करते हैं इससे मानसिक असंतुलन हो जाता है।

(त) जब आप कम से कम दस-पंद्रह सेकिंड तक श्वास को धारण करने में समर्थ हो जाते हैं तब आप मूल बंध प्रारंभ कर सकते हैं। प्रारंभिक अवस्थाओं में पूरक क्रिया के बाद मूल बंध करें और उसको कुंभक क्रिया की स्थिति में बराबर बनाए रखें।

(थ) आंतरिक धारण में उदरीय अवयवों को अंदर और बाहर खींचें और इसके साथ ही साथ निचली रीढ़ को आगे बढ़ाएं (चित्र 69)। धड़ को दृढ़ रखें और सिर, बांहों और पैरों को बराबर विश्राम दें।

(द) त्रिक श्रोणिफलक भाग और लीवर के आधार तथा उदर से मेरुदंड के उत्थान को बनाए रखें।

(ध) बाह्य और आंतरिक मेरुदंड स्तंभ को आगे और ऊपर लयात्मक और समान गति से संचलित करें। जैसे ही मेरुदंड अग्रवर्ती भाग की ओर संचलित हो वैसे ही त्वचा को उसके साथ लपेटकर धड़ की ओर ले जाएं।

(न) यदि आपके सीने की त्वचा पसलियों पर ढीली हो जाती है तो यह इस बात का संकेत है कि श्वास फुफ्फुसों में से अनायास ही बाहर निकल गई है।

(प) सीने को अधिक न फैलाएं अथवा अधिक न दबाएं। उसे सामने से पीछे की ओर और दोनों ओर समान रूप से ऊंचा उठाएं। पसलियों की आंतरिक संरचना को मजबूत बनाएं और बाह्य शरीर को हलका रखें इससे शरीर समान रूप से संतुलित होगा और कुंभक की अवधि बढ़ेगी।

(फ) अंतरापर्शुक मांसपेशियों के पिछले और अगले भाग तथा किनारों के अंदर और बाहर की परतों को देखें कि क्या वह स्वतंत्र और समान रूप से संचलित हो रही हैं।

(ब) बगलों की त्वचा को पीछे से आगे की ओर समायोजित करें। सीने की बगलों के चारों ओर की त्वचा को न दबाएं अपितु उसको ऊंचा उठाएं। यदि बगलों और कंधों की त्वचा ऊपर की ओर संचलित होती है तो यह तनाव का संकेत है। त्वचा को ढीला छोड़ें और उसे नीचे लाएं।

(भ) पूरक क्रिया के अंत और कुंभक क्रिया के प्रारंभ में साधक को दैवी अनुभूति होती है। वह शरीर, श्वास और आत्मा की एकता को महसूस करता है। इस स्थिति में यह ज्ञान नहीं होता कि समय बीत रहा है। साधक कारण और प्रभाव से मुक्ति का अनुभव करता है। उसे इस स्थिति को कुंभक की क्रिया में बनाए रखना चाहिए।

(म) अच्छी तरह से सील की गई बोतल में से वाष्पशील पदार्थ नहीं निकलते चाहे बोतल हिल ही क्यों न जाए। यदि कुंभक बंधों की सहायता से किया जाए तो साधक की शक्ति कभी भी बाहर नहीं जा सकती। धड़ को उसके तले पर गुदा और मूलाधार के संकुचन से बंद कर लिया जाता है और मूलाधार से उन्हें ऊपर उठाया जाता है। इसके बाद साधक में तेज (पूरी शक्ति) और ओज (कांति) आ जाती है।

(य) नौसिखिया साधकों को उड्डीयान बंध और मूल बंध पर ध्यान नहीं देना चाहिए जब तक कि श्वसन-लय पर पूरी तरह अधिकार न पा लिया जाए। उच्च प्रशिक्षित शिष्यों को ये सभी बंध उसी समय करने चाहिएं जब तक वे वायु धारण (कुंभक क्रिया) पर अधिकार न कर लें।

बाह्य कुंभक की तकनीक

(क) बाह्य कुंभक (पूर्ण निःश्वसन के वाद श्वास का धारण) दो प्रकार का होता है: विषादग्रस्त अथवा गतिशील। जब विषादग्रस्त है तो इसका अभ्यास उड्डीयान के विना किया जाता है। यह साधक को मौन बनाए रखने के लिए किया जाता है और इसे किसी भी समय कर सकते हैं, यहां तक कि इसे भोजन के वाद भी किया जा सकता है। जब यह गतिशील होता है तब यह उड्डीयान बंध के साथ किया जाता है जो उदरीय अवयवों तथा हृदय की मालिश करता है और ऊर्जा के छितराव को रोकता है।

(ख) विषादग्रस्त बाह्य धारण चक्रों का अभ्यास प्रारंभ करें। इसके बाद उड्डीयान बंध की सहायता से बाह्य धारण पर ध्यान केंद्रित करें।

(ग) प्रत्येक गतिशील बाह्य धारण के वाद, प्रारंभ में फुफ्फुसों और उदरीय अवयवों को सामान्य स्थिति में आने के लिए कुछ समय निकल जाने दें।

(घ) उड्डीयान के साथ बाह्य धारण को कभी भी बलपूर्वक नहीं करना चाहिए। यदि इसे बल देकर किया जाता है तो साधक हांफने लगता है, अपने उदरीय अवयवों की पकड़ को शिथिल कर देता है और फुफ्फुसों में रूखापन महसूस करता है।

(ङ) उड्डीयान के साथ बाह्य धारण बहुत धीरे प्रारंभ करें और प्रत्येक चक्र में समान समय के लिए उड्डीयान की पकड़ को बनाए रखें। प्रतिदिन छह से आठ चक्र करें।

(च) सामान्य अथवा गहरी श्वास के कुछ चक्र करें और उड्डीयान के साथ एक बाह्य धारण करें। उदाहरण के लिए, सामान्य श्वास के तीन या चार चक्र के बाद उड्डीयान के साथ एक बाह्य धारण किया जाए। इस क्रम को दोहराएं और सामान्य श्वास के चक्रों की संख्या कम करें क्योंकि स्थिरता अभ्यास से प्राप्त की जाती है।

(छ) जब आप अभ्यास कर रहे हों तो पैरा ख, घ, ञ, च, ज, ठ, ड, त, ध, न, प और ब में दी गई अंतर कुंभक की तकनीकों को अपनाएं। और वहां कहीं भी वे आएं तो इन तकनीकों में अंतर कुंभक के स्थान पर बाह्य कुंभक शब्द रखें।

(ज) जैसे कोई व्यक्ति कांटा निकालने के लिए चिमटी का प्रयोग करता है और शीघ्र ही दर्द से मुक्त होने का एहसास करता है, उसी प्रकार चिमटी के समान बुद्धि को प्रयोग में लाएं ताकि दोषयुक्त पकड़ और संचलन को रोका जा सके जो अभ्यास के समय कांटों जैसी रुकावट पैदा करते हैं।

(झ) जिस प्रकार पुतलियां नेत्रों में कोई भी बाह्य पदार्थ रोकने के लिए स्वाभाविक

रूप से पलक झपका लेती हैं उसी प्रकार साधक को भी अपने प्राणायाम का अभ्यास करते समय झूठी पकड़, झूठे संचलन और झूठी आदतों को दूर करने के लिए सदैव सचेत रहना चाहिए।

(ञ) यदि कुंभक से चेहरा लाल हो जाए, नेत्र जलने लगें और उलझन पैदा हो तो ऐसा कुंभक दोषयुक्त होता है। कभी भी खुले नेत्रों के साथ कुंभक नहीं करना चाहिए। कभी भी इसका अभ्यास न करें यदि आपको हृदय या सीने की बीमारियां हैं अथवा आप अस्वस्थ हैं।

(ट) शरीर एक साम्राज्य है और त्वचा उसकी सीमाएं हैं। इस साम्राज्य का शासक आत्मा है जिसके ज्ञानचक्षु प्राणायाम के समय प्रत्येक सूक्ष्म चीज पर भी नजर रखते हैं।

(ठ) पर्वतीय धाराएं चट्टानों को उखाड़ फेंकती हैं और घाटियों को पाट देती हैं फिर भी बहते हुए जल की ऊर्जा जब चट्टानों के विपरीत स्थिर और संतुलित हो जाती है तो प्रत्येक पर्वत अपना अलग-अलग अस्तित्व खो बैठता है। इसके परिणामस्वरूप झील बन जाती है जिसमें चारों ओर के पर्वतों का शांत सौंदर्य प्रतिबिंबित होता है। संवेग धाराओं के समान होते हैं जबकि स्थिर बुद्धि चट्टान के समान होती है। कुंभक में दोनों ही समान रूप से संतुलित हो जाते हैं और आत्मा अपनी पूर्व स्थिति में प्रतिबिंबित होती है।

(ड) चित्त श्वास के साथ दोलायमान होता है जबकि कुंभक उसे इच्छाओं से शांत करता है तथा मुक्त करता है। रुकावट के बादल छंट जाते हैं और आत्मा सूर्य के समान प्रकाशित होती है।

(ढ) प्राणायाम और कुंभक के अभ्यास के बाद शवासन में विश्राम करें (देखें अध्याय 30)।

16

साधकों की श्रेणियां

1. साधकों को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है और यह विभाजन उस प्रगति के अनुसार होता है जो वे प्राणायाम के अभ्यास के समय प्राप्त करते हैं। ये वर्ग इस प्रकार हैं : अधम, जिनमें श्वास ऊंचा-नीचा और विषम होता है; मध्यम, जिसमें श्वास अर्धकोमल होता है, और उत्तम जिसमें श्वास कोमल तथा विशुद्ध होता है।

2. इन वर्गों का फिर उपविभाजन किया जाता है ताकि उनके सूक्ष्म अंतर दिखाए जा सकें। नौसिखिया साधकों को प्रारंभ में अधम की भी अधमाधम श्रेणी में विभाजित किया जाता है। 'अधम' में से औसत (अधम मध्यम) और अधम में से सबसे अच्छे अधमोत्तम वर्ग किए जाते हैं। इसी प्रकार औसत (मध्यम) और उच्च (उत्तम) वर्ग को विभाजित किया जाता है लेकिन प्रत्येक साधक का अंतिम लक्ष्य यह है कि उत्तम से सर्वोत्तम (उत्तमोत्तम) श्रेणी में शामिल हो सके।

3. प्राणायाम (अधम) का अभ्यास करने वाला नौसिखिया साधक प्रारंभ में शारीरिक बल का प्रयोग करता है और उसके लय तथा संतुलन में अभाव होता है। उसका शरीर और मस्तिष्क कठोर होते हैं जबकि उसकी श्वास बलपूर्वक रुक रुककर तथा कृत्रिम रूप से चलती है। एक औसत (मध्यम) साधक को आसन की कला पर कुछ नियंत्रण होता है और नौसिखिया साधक की अपेक्षा उसके फुफ्फुस की क्षमता कुछ अधिक होती है। उसमें स्थिर आसन को बनाए रखने और लयात्मक रूप से श्वास लेने की क्षमता का अभाव होता है। उसका अभ्यास औसत गति का होता है जबकि उत्तम साधक अपने अभ्यास में अधिक अनुशासित होता है। वह सीधा बैठता है और सचेत होता है, उसके फुफ्फुस अपेक्षाकृत अधिक समय के लिएप्र णायाम करने के लिए सक्षम हो जाते हैं, उसकी श्वास लयात्मक, कोमल और सूक्ष्म होती है जबकि उसका शरीर, मन और बुद्धि संतुलित होते हैं। वह अपना आसन समायोजित करने और अपनी भूलों को सुधारने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

4. प्राय: समझ और अभ्यास साथ-साथ नहीं चलते। कोई साधक समझ में अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता है तो कोई दूसरा साधक अभ्यास करने के कौशल में अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता है। प्रत्येक दशा में साधक को अपने कौशल और बुद्धि

को समान रूप से विकसित करना है और उन्हें प्राणायाम की अपेक्षा अधिक अभ्यास के लिए सामंजस्य से प्रयोग करना है।

5. पतंजलि ने प्राणायाम के संबंध में स्थान (देश, समय और काल) और परिस्थिति (सांख्य) की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने का वर्णन किया है। चाहे यह साधक के लिए आंतरिक या बाह्य हों। इन्हें नियमित दीर्घकालिक अथवा सूक्ष्म किया जा सकता है (**योगशास्त्र** दो-50)। उसका घड़ स्थान है, उसकी आयु समय है और उसकी दशा धीमी गति का स्थिर संतुलन, श्वास का समान प्रवाह भी है।

6. नौसिखिया साधक अपने फुफ्फुसों को ही काम में ला सकता है जबकि मध्यम साधक अपने डायाफ्राम या नाभि के प्रति सजग रहता है और अपने श्रोणीय भाग के अनुकूल बन जाता है। प्रत्येक साधक को अपने पूरे घड़ को अभ्यास में लगाए रखने की विधि उस समय सीखनी चाहिए जब वह प्राणायाम का अभ्यास कर रहा हो।

7. समय प्रत्येक पूरक क्रिया और रेचक क्रिया की अवधि को व्यक्त करता है तथा श्वास के नियंत्रित प्रवाह और सूक्ष्मता तथा परिस्थितियों पर प्रकाश डालता है।

8. यह अवस्था श्वसन की संख्या और अवधि, धारण, बाह्य श्वसन और पुन: धारण को व्यक्त करती है। साधक को किसी भी दिन के लिए उनकी संख्या और समय को सुनिश्चित करना होता है और उन्हें इसकी नियमित अनुसूची रखनी चाहिए। प्रत्येक चक्र में मुलायम और कोमल श्वास का प्रवाह आदर्श अवस्था (सांख्य) है।

9. साधक एक चक्र को दस सेकंड, दूसरे चक्र को बीस सेकंड और तीसरे चक्र को तीस सेकंड में पूरा कर सकता है। वह तीन स्तरों पर अभ्यास कर सकता है, शुद्ध रूप से शारीरिक जिसमें वह अपने शरीर को यंत्र के समान उपयोग में लाता है, संवेगात्मक रूप में जिसमें वह केवल अपनी मानसिक क्षमताओं का उपयोग कर सकता हैं अथवा बौद्धिक रूप में जिसमें वह अपनी बुद्धि के साथ श्वास पर नियंत्रण करता है। नौसिखिया साधक अपनी प्रारंभिक अवस्था में पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। यदि उसका चक्र बहुत ही छोटा हो लेकिन वह मृदु और सूक्ष्म होना चाहिए; इसके विपरीत एक साधक जो अपने चक्र की अधिक अवधि पर अभिमान करे चाहे वह स्थिति कितनी ही स्थूल और रूक्ष ही क्यों न हो, वह साधक नौसिखिया साधक के स्तर पर आ जाता है।

10. साधक को अपने शरीर की स्थिरता का विकास करना चाहिए, उसे अपने मन तथा संवेग पर संतुलन करना चाहिए और अपनी बुद्धि को संयमी बनाना चाहिए। तभी वह अपने श्वास के सूक्ष्म प्रवाह के देखने योग्य हो सकता है और उस श्वास को महसूस कर सकता है। उसका शरीर, श्वास, मन, बुद्धि और आत्मा एक हो जाते हैं तथा वह अपनी वैयक्तिक पहचान खो देता है। ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान एक हो जाते हैं। (**योगसूत्र** एक 41)

11. संगीतज्ञ भाव समाधि में खो जाता है जब वह राग की सभी बारीकियों (संगीत स्वर, लय और तान) का प्रदर्शन करता है जिसमें उसने विशेषज्ञता प्राप्त कर

ली है और वह सर्वोच्च चेतना का अनुभव करता है। वह इस बात के लिए सजग हो अथवा न हो कि वह अपने अनुभव को दर्शकों के साथ बांटता है। यह नादानुसंधान (ध्वनि की खोज) है। इसी प्रकार साधक भी भाव समाधि में खो जाता है परंतु उसके प्राणायाम का अनुभव विशुद्ध वैयक्तिक है। वह अपनी श्वास की सूक्ष्म और कोमल ध्वनि को सुनता है और कुंभक की नितांत ध्वनि रहित अवस्था का आनंद उठाता है। यह आत्मानुसंधान (आत्मा की खोज) है।

12. पूरक क्रिया (श्वास का लेना) ब्रह्मांडीय ऊर्जा का अवशोषण है; पूरक क्रिया-अंतर कुंभक (धारण) सार्वभौमिक आत्मा तथा वैयक्तिक आत्मा का मिलन है; रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) वैयक्तिक ऊर्जा का समर्पण है और इसके बाद रेचक बाह्य कुंभक (निःश्वसन-धारण) क्रिया होती है उसमें वैयक्तिक और सार्वभौमिक आत्मा का मिलन हो जाता है। यह निर्विकल्प समाधि की स्थिति है।

17

बीज प्राणायाम

जप क्या है ?

1. यद्यपि आत्मा कारण और प्रभाव, सुख और दुःख से मुक्त है फिर भी यह मन की दुःखद कार्यशीलता से घिर जाता है। मंत्र के जप का उद्देश्य उद्विग्न मन को एक बिंदु पर केंद्रित करना है और इसे केवल एक विचार से जोड़ना है। मंत्र वैदिक स्त्रोत अथवा संगीतात्मक भजन है, इसी का दोहराना जप अथवा प्रार्थना कहलाता है। इसे विश्वास, प्रेम और भक्ति से करना चाहिए और उससे मनुष्य तथा उसके जन्मदाता, रचयिता के मध्य संबंध बढ़ता है। जब इसे एक ओर चौबीस मात्राओं तक सीमित कर दिया जाता है तो यह बीज मंत्र हो जाता है। यह मुख्य शब्द हो जाता है जो आत्मा को मुक्त करता है। प्रबुद्ध गुरु जिसने परमात्मा की कृपा अर्जित कर ली है, अपने योग्य शिष्य को मूल शब्द सिखाता है और उसे मंत्र देता है तथा इससे शिष्य की आत्मा मुक्त हो जाती है। यह शिष्य के लिए बीज मंत्र है जिसका उसे अध्ययन करना है और योग के सभी पक्षों में स्वयं को दीक्षित करना है।

2. मन अपने विचारों का रूप धारण करता है और उसका रूप वही हो जाता है जैसे उसके विचार हों। अच्छे विचारों से अच्छा मन बनता है और बुरे विचारों से बुरा। जप (मंत्र की आवृत्ति) का प्रयोग मन को व्यर्थ बातचीत, द्वेषपूर्ण विचार और व्यर्थ की कहानियों से बचने के लिए किया जाता है ताकि मन आत्मा और परमात्मा के बारे में विचारों की ओर उन्मुख हो सके। जप डांवाडोल तथा उद्वेलित मन एकल विचार, कार्य अथवा भावना पर केंद्रित करने की क्रिया है।

3. मंत्र लगातार दोहराए जाने वाले वाक्य हैं जिनमें कारण, उद्देश्य और लक्ष्य होते हैं। बार-बार जपने के लिए दिए जाते हैं और इनका कोई कारण, प्रयोजन और लक्ष्य होता है। यदि अर्थ पर ध्यान रखते हुए मंत्र का जाप किया जाए तो इससे प्रबुद्धता आती है। इस प्रकार मंत्र के लगातार दोहराने और विचार करने से साधकों के विचारों का मंथन हो जाता है, वे स्वच्छ और स्पष्ट हो जाते हैं। वह अपनी आत्मा को अपने मन रूपी सरोवर में प्रतिबिंबित पाता है।

4. जप साधक की कायापलट कर देता है और उसके अहं का स्वरूप बदल देता

है। इस प्रकार वह साधक को विनम्र बना देता है। वह आंतरिक शांति प्राप्त कर लेता है और एक ऐसा व्यक्ति वन जाता है जिसने अपनी इंद्रियों पर विजय पा ली हो।

5. प्राणायाम का अभ्यास करते समय मंत्र को दोहराएं। मंत्र मुंह अथवा जिह्वा को हिलाए विना शांत प्रवाह के साथ मन के साथ जोड़ें। इससे मन सचेत हो जाता है और इसकी सहायता से श्वसन की तीन प्रक्रियाओं—पूरक, रेचक और कुंभक की अवधि वढ़ाने में सहायता मिलती है। श्वास का प्रवाह और मन का विकास सरल और स्थिर हो जाता है।

6. प्राणायाम का अभ्यास दो प्रकार का होता है सबीज (वीज सहित) और निर्बीज (वीज रहित)। सबीज प्राणायाम में मंत्र का दोहराया जाना शामिल है और इसे चार प्रकार के साधकों को सिखाया जाता है। इन साधकों का मानसिक विकास विभिन्न स्थितियों यथा मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त और एकाग्र होता है (देखें अध्याय दो)।

7. प्राणायाम के चक्र को पूरा करने के लिए मंत्र को शीघ्रातिशीघ्र नहीं दोहराना चाहिए। यह लयात्मक होना चाहिए और पूरक क्रिया, रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया की स्थिति में श्वास का प्रवाह समान रूप से होना चाहिए तभी ज्ञानेंद्रियां मौन होती हैं। जव इस स्थिति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है तो साधक मंत्र की सहायता के विना ही मुक्त और शुद्ध हो जाता है।

8. निर्बीज प्राणायाम पांचवें प्रकार के साधक को सिखाया जाता है। इस साधक में सर्वोच्च मानसिक विकास होता है और इसे निरुद्ध नाम से पुकारते हैं। यह मंत्र की सहायता के विना किया जाता है जिसमें साधक श्वास लेता है, जीता है और 'वह तू ही है' (तत्वमसि) जैसी स्थिति का अनुभव करता है।

6. सवीज प्राणायाम बीज के समान विचारों, भावों और अंतर्दृष्टियों में प्रसारित होता है जवकि भुने हुए बीज के समान निर्बीज प्राणायाम में ऐसा नहीं होता। सबीज प्राणायाम का प्रारंभ और अंत होता है, इसकी आकृति, स्वरूप और संकल्पनाएं दीप और प्रकाश तथा प्रकाश और लौ के समान होती हैं। निर्बीज प्राणायाम में किसी प्रकार की शर्त नहीं होती, न उसका आदि होता है और न उसका अंत।

10. सबीज प्राणायाम साधक के मन और बुद्धि को परमात्मा की ओर ले जाता है। यह अंतःकरण के बीज और सभी प्रकार की जीवंतता का स्रोत है। जो शब्द परमात्मा की अभिव्यक्ति करता है वह रहस्यमय अक्षर ओ३म् (प्रणव) है। पतंजलि ने परमात्मा के संबंध में यह लिखा है कि परमात्मा वही है जो क्रिया-प्रतिक्रिया, कारण और प्रभाव, दुःख और सुख के चक्रों से अप्रभावित रहता है।

11. छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि प्रजापति (सृजक) ने अपने उन्हीं संसारों पर गंभीरता से विचार किया था। इन्हीं से तीन ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तैयार किए गए। जव इन वेदों पर मनन किया गया तो तीन अक्षर: भू (पृथ्वी), भुवः (वायुमंडल) और स्वाहाः (आकाश) सर्जित हुए। इन्हीं पर अधिक विचार करने के वाद अक्षर ओ३म् का सर्जन हुआ है। जिस प्रकार सभी पत्तियां टहनी से लगी रहती हैं उसी प्रकार सभी वाणियां ओ३म् से जुड़ी रहती हैं।

12. ओ३म् शब्द से सर्वशक्तिमान और सार्वभौमिकता की संकल्पनाओं का ज्ञान होता है। इसमें ऐसी प्रत्येक वस्तु समाहित है जो शुभ और श्रद्धा की प्रेरणादायक है। यह शांति और शानदार शक्ति का प्रतीक है। ओ३म् अनंतः आत्मा है जो सर्वोच्च लक्ष्य होता है। जब इसके अर्थों को पूर्णतया समझ लिया जाता है तब सभी अभिलाषाओं की पूर्ति हो जाती है। यह मुक्ति का सबसे अधिक विश्वसनीय मार्ग है और इससे सर्वोच्च सहायता प्राप्त होती है। इससे मानवीय जीवन, विचार और अनुभव तथा पूजा की पूर्णता प्रकट होती है। यह अमर ध्वनि है जो साधक इसमें प्रवेश करते हैं और इसकी शरण लेते हैं वे अमर हो जाते हैं।

13. उपनिषदों में आत्मा के विभिन्न त्रयी का वर्णन है। इस आत्मा की पूजा त्रि-आगामी ओ३म् से की जाती है। काम-वासना के क्षेत्र में यह स्त्रीलिंग, पुलिंग और उभयलिंग का प्रतीक है तथा इनके सर्जक का भी प्रतीक है जो काम से भी परे है। शक्ति और प्रकाश सर्वत्र ओ३म् अग्नि, वायु और सूर्य तथा इनके सर्जक का प्रतीक होता है। परमात्मा के रूप में इस प्रतीक की पूजा ब्रह्मा—सर्जक, विष्णु—रक्षक और रूद्र—भक्षक के रूप में की जाती है। यह समस्त जीवन और पदार्थ की शक्तियों का सम्मिश्रण करता है। जहां तक काल का संबंध है—ओ३म् भूत, वर्तमान और भविष्य का प्रतीक है और इसमें सर्वशक्तिमान सम्मिलित है जो कालातीत है। जहां तक विचार का संबंध है यह मन, बुद्धि या समझ अथवा अहंकार का प्रतीक है। शब्द ओ३म् तीन अवस्थाओं (गुणों)—सत्, रज और तम को व्यक्त करता है और इन सबसे भी परे जो कुछ भी मुक्त हो गया है, उस गुणातीत को भी व्यक्त करता है।

14. 'ओ३म्' के तीन अक्षर ओ, ३, म् सत्य के लिए मानव-खोज के प्रतीक हैं जो ज्ञान, कार्य और भक्ति के तीन मार्गों के साथ होते हैं और उस एक में महान् आत्मा का उद्भव होता है जिसने आत्मा की शांति प्राप्त कर ली है और जिसकी बुद्धि ने स्थिरता की अवस्था—स्थितप्रज्ञा प्राप्त कर ली है। यदि वह ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करता है तो उसकी इच्छा, क्रिया और विद्या सभी नियंत्रण में आ जाते हैं। यदि वह कर्म-मार्ग का अनुसरण करता है तो वह अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय तथा कठोर तप करेगा और अपने कर्मों के फल को परमात्मा को समर्पित करेगा (ईश्वर प्रणिधान)। यदि वह भक्तिमार्ग का अनुसरण करता है तो वह परमात्मा का नाम (श्रवण) सुनने में निमग्न हो जाएगा। अपने मन में चिंतन करेगा और उसकी शान (निद्यासन) पर विचार करेगा। उसकी स्थिति, निद्रा, स्वप्न अथवा जागृति से परे है क्योंकि उसका शरीर भले ही आराम में हो जैसाकि निद्रा के समय होता है, उसका मन स्वप्न में लगा रहता है और उसकी बुद्धि पूर्णतया सावधान होती है। वह चौथी भावातीत अवस्था—तूरीयावस्था में आ जाता है।

15. जो कोई भी साधक ओ३म् के बहुअर्थों को महसूस कर लेता है वह जीवन के झंझटों से मुक्त हो जाता है उसका शरीर, श्वास, इंद्रियां, मन, बुद्धि और अक्षर ओ३म् एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं।

16. ओ३म् एक ऐसा शब्द है जिसकी महिमा सभी वेदों ने गाई है और सभी स्थानों पर आत्मसमर्पण से इसकी अभिव्यक्ति होती है। यह सभी पवित्र अध्ययनों

का लक्ष्य और पवित्र जीवन का प्रतीक है। सूखी लकड़ी में अग्नि अप्रच्छन्न रूप से रहती है और इसके घर्षण द्वारा बार-बार उत्पन्न की जा सकती है। इसी प्रकार साधक का अप्रच्छन्न देवत्व शब्द ओ३म् के बार-बार दोहराने से भावोत्तेजक हो जाता है। शुद्ध शब्द ओ३म् के प्रति बुद्धिसम्मत चेतना के प्रयोग से साधक अपने अंदर के छिपे हुए देवत्व को देख लेता है।

17. ओ३म् पर ध्यान करने से साधक स्थिर, शुद्ध और विश्वासी बना रहता है तथा महान् हो जाता है। जैसे काला नाग अपनी पुरानी केंचुली को अलग कर देता है इसी प्रकार साधक अपने सभी अवगुणों को दूर कर देता है। वह सर्वोच्च आत्मा में शांति प्राप्त कर लेता है जहां न तो कोई भय, विघटन या मृत्यु है।

17. ओ३म् शब्द सर्वोच्च और शानदार शक्ति का प्रतीक है। इसकी शक्ति किसी देवता के नाम पर जोड़कर विखंडित की जा सकती है और प्राणायाम के अभ्यास के लिए इसे बीज मंत्र के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आठ अक्षरों का मंत्र—'ओ३म् नमो नारायण' अथवा पांच अक्षरों का मंत्र 'ओ३म् नमः शिवाय' अथवा बारह अक्षरों का मंत्र 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय' अथवा चौबीस अक्षरों के गायत्री मंत्र का जाप किया जा सकता है।

18

वृत्ति प्राणायाम

1. वृत्ति का अर्थ कार्य, संचलन, व्यवहार का तरीका अथवा कार्यपद्धति है।

2. दो प्रकार के वृत्ति प्राणायाम होते हैं : समवृत्ति और विषमवृत्ति । समवृत्ति प्राणायाम में प्रत्येक पूरक क्रिया और रेचक क्रिया तथा कुंभक क्रिया में श्वास का समय समान होता है और विषमवृत्ति प्राणायाम में समयावधि बदल जाती है और अलग-अलग हो जाती है ।

समवृत्ति प्राणायाम

3. सम का अर्थ है बराबर, तदनुरूप अथवा उसी प्रकार है। समवृत्ति प्राणायाम में यह प्रयत्न किया जाता है कि श्वसन की चारों प्रक्रियाओं अर्थात् पूरक क्रिया, अंतर-कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया और वाह्यकुंभक क्रिया में समय की अवधि की एकरूपता प्राप्त की जाती है। यदि पूरक क्रिया की अवधि पांच या दस सेकिंड की हो तो यही अवधि रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया की भी होनी चाहिए।

4. समवृत्ति प्राणायाम प्रारंभ करें और यह देखें कि पूरक क्रिया और रेचक क्रिया में समयावधि समान रहे ।

5. समय की अवधि में एकरूपता प्राप्त करें और पूरक तथा रेचक में विशुद्ध कोमलता बनाए रखें।

6. इसीके बाद यह प्रयत्न किया जाय कि पूरक क्रिया के बाद अंतरकुंभक क्रिया संपन्न की जाए। प्रारंभ में कुंभक के लिए उतनी ही अवधि नहीं रख पाएंगे जितनी आप पूरक और रेचक के लिए रख पाते हैं।

7. धीरे-धीरे आंतरिक कुंभक प्रारंभ करें। सर्वप्रथम इन तीनों प्रक्रियाओं में समय का अनुपात $1 : \frac{1}{4} : 1$ रखना चाहिए। धीरे-धीरे इस अनुपात को $1 : \frac{1}{2} : 1$ तक बढ़ाना चाहिए। जब यह स्थिति दृढ़ता से स्थापित हो जाए तो इस अनुपात को बढ़ाकर $1 : \frac{3}{4} : 1$ कर लेना चाहिए। जब ऐसा करना सरल हो जाए तो अंतरकुंभक का अनुपात बढ़ाकर 1 : 1 : 1 कर लेना चाहिए।

8. पूर्ण बाह्य कुंभक के बाद श्वास को रोकने का प्रयत्न न करें जब तक कि आप

इस अनुपात को प्राप्त न कर लें ।

9. इसके बाद धीरे-धीरे बाह्य कुंभक प्रारंभ क । प्रारंभ में पूरक क्रिया, आंतरिक कुंभक क्रिया, रेचक क्रिया और बाह्य कुंभक क्रिया के समय का अनुपात $1:1:1:\frac{1}{4}$ रखें । धीरे-धीरे इस अनुपात को बढ़ाकर $1:1:1:\frac{1}{2}$ करें। इसके बाद इस अनुपात को दृढ़ता से स्थापित करें और यह प्रयास करें कि यह अनुपात बढ़कर $1:1:1:\frac{3}{4}$ हो जाए और अंत में यह अनुपात बढ़कर 1 : 1 : 1 : 1 हो जाए ।

10. सर्वप्रथम अंतरकुंभक का अलग से अभ्यास करें और साधारण श्वास के तीन या चार चक्रों के मध्य एक अंतर को समान समय दें । अंतःचक्र को पांच या छह बार दोहराएं । जब यह सरल और आरामदायक हो जाए तो आंतरिक समयावधि को कम करें। जब यह स्थिति भी सरल हो जाए तब आंतरिक बिखराव के बिना पूरक, रेचक और अंतर कुंभक करें ।

11. जब पूरक, अंतर कुंभक और रेचक का समयानुपातिक स्वरूप सरल हो जाए तब तीन या चार चक्रों में बाह्य कुंभक प्रारंभ करें।

12. इनके मध्य चक्रों की संख्या धीरे-धीरे कम करें। इसके बाद आंतरिक बिखराव के बिना पूरक, अंतर कुंभक, रेचक और बाह्य कुंभक क्रियाएं करें ।

विषमवृत्ति प्राणायाम

13. विषम का अर्थ है—अनियमित । विषमवृत्ति प्राणायाम को ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें पूरक, अंतरकुंभक, रेचक और बाह्य कुंभक की समयावधि अलग-अलग होती है । यह अवरुद्ध लय की ओर उन्मुख होता है और अनुपात का अंतर शिष्य के लिए कठिनाई और भय उत्पन्न करता है जब तक कि वह दृढ़ नाड़ियों और स्वस्थ फुफ्फुसों वाला न हो ।

14. सर्वप्रथम पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया को 1:2:1 के अनुपात से प्रारंभ करें । इसके बाद धीरे-धीरे यह अनुपात बढ़ाकर 1:3:1 करें और फिर बढ़ाकर 1:4:1 करें। तत्पश्चात् इस अनुपात को समायोजित करें और अनुकूल बनाकर $1:4:1\frac{1}{4}$; $1:4:1\frac{1}{2}$; $1:4:1\frac{3}{4}$; और 1:4:2 करें। जब इस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाए तभी धीरे-धीरे बाह्य कुंभक $1:4:2:\frac{1}{4}$; $1:4:2:\frac{1}{2}$; $1:4:2:\frac{3}{4}$ और 1:4:2:1 के अनुपात से करें। यह चारों अनुपात विषम वृत्ति प्राणायाम के एक चक्र का निर्माण करते हैं ।

15. सर्वप्रथम शिष्य रेचक, बाह्य कुंभक और पूरक में लय को बनाए रखने में कठिनाई महसूस करेगा क्योंकि इस क्रिया में श्वास फूलने लगता है। परंतु यह क्रिया दीर्घ समय और बिना रुकावट के अभ्यास करने से सरल हो जाएगी ।

16. विषम वृत्ति प्राणायाम में आदर्श अनुपात इस प्रकार होता है: पूर्ण पूरक क्रिया में पांच सेकंड तक श्वास रुक जाती है और अंतर कुंभक में बीस सेकंड लगते हैं; रेचक क्रिया में दस सेकंड लगते हैं और बाह्य कुंभक में पांच सेकंड लगते हैं । इस प्रकार यह अनुपात 1:4:2:1 हो जाता है ।

17. जब इस स्थिति को प्राप्त कर लिया जाए तब इस क्रम को उलट देना चाहिए। दस सेकंड तक पूरक क्रिया करें और बीस सेकंड तक कुंभक क्रिया करें तथा पांच सेकंड तक रेचक क्रिया करें और इस प्रकार यह अनुपात 2:4:1 हो जाता है। इसके बाद इस प्रक्रिया में बाह्य कुंभक जोड़कर यह अनुपात 2:4:1:½; 1:4:1:¾ और 2:4:1:1 कर लें।

18. समय की अवधि अलग-अलग हो सकती है। उदाहरणार्थ यदि पूरक क्रिया बीस सेकंड, कुंभक क्रिया दस सेकंड और रेचक क्रिया पांच सेकंड की हो तो बाह्य कुंभक की अवधि कम करके ढाई सेकंड कर लें ताकि इनके बीच का अनुपात 4:2:1:½ हो जाए।

19. विषम वृत्ति प्राणायाम की अवधि विभिन्न अनुपातों में अलग-अलग हो सकती है, उदाहरण के लिए 1:2:4:½; 2:4:½:1; 4:½:2:1; ½:1:4:2। विषम वृत्ति प्राणायाम में अनेक क्रम परिवर्तन और संयोजन हो सकते हैं तथा कोई भी नश्वर व्यक्ति अपने जीवन काल में सभी संभव संयोजन नहीं कर सकता। अध्याय 27 में ऐसे क्रम परिवर्तनों और संयोजन के उदाहरण सूर्य और चंद्र भेदन प्राणायाम में दिए गए हैं।

ध्यान देने योग्य संकेत

20. विषम वृत्ति प्राणायाम का मार्ग खतरे से भरा हुआ है इसलिए किसी अनुभवी गुरु की सीधी देखरेख के बिना अपने आप ही इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

21. पूरक क्रिया, पूरक क्रिया-कुंभक क्रिया, रेचक क्रिया और रेचक क्रिया-कुंभक क्रिया के अलग-2 अनुपातों के कारण शरीर की सभी प्रणालियां और विशेषकर श्वास-प्रणाली के अवयव, हृदय और नाड़ियां अधिक थक जाती हैं और उन पर अधिक दबाव पड़ता है। इससे मस्तिष्क में तनाव हो सकता है और इससे रक्त की धमनियों में भी तनाव हो सकता है जो परिणामस्वरूप उच्च रक्त चाप, बेचैनी और चिड़-चिड़ापन पैदा कर सकता है।

22. संवृत्ति प्राणायाम के संबंध में यह चेतावनी और कुंभकों के अभ्यास के प्रति भी चेतावनी अधिकांश रूप से विषम वृत्ति प्राणायाम में भी लागू होती है। स्वात्माराम के **हठयोग प्रदीपिका** के शब्दों को याद रखें: प्राण को सिंहों, हाथियों और चीतों की अपेक्षा अधिक धीरे-धीरे नियंत्रित करें अन्यथा यह साधक को ही समाप्त कर देगा।

खंड तीन

प्राणायाम की तकनीकें

19

उज्जायी प्राणायाम

'उत्' उपसर्ग का अर्थ ऊपर की ओर उठना अथवा फैलाना है। यह प्रकर्ष तथा सामर्थ्य के भाव को भी व्यक्त करता है। 'जय' का अर्थ विजय अथवा सफलता है और दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो इसका अर्थ प्रतिरोध अथवा अवरोध है। उज्जायी वह क्रिया है जिसमें फुप्फुस पूरी तरह फैलाये जाते हैं और अभिमानी विजेता के समान सीना बाहर निकल जाता है।

इस प्राणायाम की सभी अवस्थाओं का कुंभक की अवस्थाओं को छोड़कर किसी भी समय अभ्यास किया जा सकता है। फिर भी, यदि हृदय में भारीपन, भरापन या दर्द महसूस होता हो अथवा डायाफ्राम कड़ा हो और यदि आप उत्तेजित हों अथवा हृदय के स्पंदन असामान्य हों तो फर्श पर दो लकड़ी के तख्तों पर लेट जाएं (प्रत्येक तख्ता एक फुट वर्ग और डेढ़ इंच मोटाई का होना चाहिए। पीठ को तख्तों पर आराम करने दें। नितंब उनके नीचे हों और बाहें नीचे की ओर फैली हुई हों (चित्र 79 से 81 तक)। आप मसनद के सहारे भी लेट सकते हैं जैसाकि चित्र 82 में दिखाया गया है। आप अपनी टांगों पर भार रखें ताकि आपको आराम और विश्राम मिल सके जैसाकि चित्र 83 में दिखाया गया है। तख्तों के स्थान पर दो गद्दियों का उपयोग किया जा सकता है (चित्र 84)। यदि दुर्बलता या रोग के कारण टांगें फैलाई न जा सकें तो घुटनों को झुका लें और निचली टांगों को किसी मसनद या स्टूल पर आराम करने दें (चित्र 85 और 86)।

इस प्रकार जब पीठ को आराम मिलता है तो श्रोणि मांसपेशियां पूरक क्रिया (श्वसन) प्रारंभ कर देती हैं। इससे सभी प्रकार का तनाव दूर हो जाता है और डायाफ्राम कोमल हो जाता है। फुप्फुस और श्वसन मांसपेशियां सरलता से अपना कार्य करने लगती हैं और श्वसन क्रिया गहन हो जाती है। इस प्राणायाम के अभ्यास से बढ़े हुए निलय और सहज हृदय के दोषों से पीड़ित रोगियों को भी आश्चर्यजनक आराम मिलता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का वहम भी दूर हो जाता है कि हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को सदैव भय रहता है कि यदि उन्होंने कम से कम संचलन न किए तो उनकी दशा अधिक बिगड़ जाएगी।

ध्यान देने योग्य संकेत

1. सभी प्राणायामों की सभी अवस्थाएं रेचक (उच्छ्वसन) से प्रारंभ होती हैं और पूरक (अंतःश्वसन) से समाप्त होती हैं। सर्वप्रथम, आपको अपने फुफ्फुसों में से जो कुछ भी ज्वारीय वायु हो, उसे बाहर निकालना चाहिए। और उसके बाद प्राणायाम प्रारंभ करना चाहिए। प्राणायाम को उच्छ्वसन के साथ समाप्त नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे हृदय पर जोर पड़ता है बल्कि प्राणायाम की प्रत्येक अवस्था के अंत में साधारण अंतःश्वसन करना चाहिए। बल का प्रयोग न करें।

2. श्वास के अंदर आने और बाहर जाने के मार्ग शिरानाल क्षेत्रों में अलग-अलग होते हैं। पूरक क्रिया में श्वास निचले तल पर शिरानाल के मार्गों की भीतरी सतह को छूती है (चित्र 87)। रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) में यह श्वास ऊपर के सिरे पर बाहरी सतह को छूती है (चित्र 88)।

3. सभी पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) सिसकारी ध्वनि 'स स स स' और सभी रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) महाप्राण 'ह ह ह ह' के साथ किए जाते हैं।

4. प्रारंभिक अवस्थाओं में प्राणायाम का आसन लगाते समय किसी टेक का प्रयोग करें जैसी कि अध्याय 2 में पैरा 30 (चित्र 42, 43) में व्याख्या की गई है।

5. यद्यपि प्रत्येक प्राणायाम के अंत में शवासन करने का सुझाव दिया जाता है फिर भी यदि आप एक ही अवस्था, में अथवा लगातार विभिन्न प्राणायाम करना चाहते हैं तो इस प्रकार का श्वसन अभ्यास के बाद ही किया जाना चाहिए।

अवस्था एक

यह प्रारंभिक अवस्था साधक को फुफ्फुसों के स्पंदनों के प्रति सजग रहने की कला के संबंध में प्रशिक्षित करती है; यह श्वास लेने तक की स्थिति की ओर भी उन्मुख करती है।

तकनीक

1. लंबाई में दोहरा लपेटा हुआ कंबल फर्श पर बिछाएं। इसके ऊपर, सिर की ओर और किनारे की ठीक समरेखा में तीन या चार तह करके दूसरा कंबल रखें ताकि सिर का पिछला भाग और धड़ उस पर ठीक बैठ जाए (चित्र 89)।

2. तह किए हुए कंबल पर पीठ के बल सपाट लेट जाएं और शरीर को सीधी रेखा में रखें। पसलियों के पिंजर में गड्ढा न होने दें। नेत्र बंद कर लें और एक या दो मिनट के लिए मौन हो जाएं (चित्र 50)। चेहरे की मांसपेशियों के शीघ्र विश्राम करने के लिए मुलायम कपड़े से नेत्रों को ढक लें (चित्र 90)।

3. सामान्य रूप से श्वास लें। श्वास के प्रभाव का बराबर चैतन्य से अवलोकन करें और उसे महसूस करें।

4. जब आप श्वास लेते हों तो इस बारे में आश्वस्त हो जाएं कि दोनों फुफ्फुसों में श्वास सामान्य रूप से भर जाती है। यह महसूस करें कि सीना ऊपर और बाहर की ओर फैलता है। दोनों संचलनों को समकालिक करें।

5. मौन होकर श्वास बाहर निकालें और दोनों ओर समान रूप से फुफ्फुसों को खाली करें। यदि फुफ्फुस अनियमित रूप से संचलित हों तो इस क्रिया को शुद्ध करें।

6. इस रूप में दस मिनट तक अभ्यास करें और बराबर नेत्रों को बंद रखे।

प्रभाव

ऊपर बताए गए अभ्यास से साधक एकाग्र हो जाता है, उसकी नाड़ियां सशक्त हो जाती हैं, फुफ्फुसों की कठोरता शिथिल हो जाती है और इस प्रकार फुपफुस गहन श्वसन के लिए तैयार हो जाते हैं।

अवस्था दो

यह प्रारंभिक अवस्था साधक को अपने प्रत्येक उच्छ्वसन की अवधि को बढ़ाने और रेचक की कला सीखने के लिए तैयार करती है।

तकनीक

1. अवस्था एक के पैरा 1 और 2 में दिए गए अनुदेशों का अनुसरण करते हुए लेट जाएं। (चित्र 89)

2. पुतलियों को कड़ा किए बिना ही नेत्रों को बंद कर लें। उन्हें निष्क्रिय और ग्राह्य रखें तथा दृष्टि को अंतर्मुखी कर लें। (चित्र 54)।

3. आंतरिक कानों को सावधान और ग्राह्य रखें।

4. सर्वप्रथम मौन होकर श्वास बाहर निकालें जब तक आप फुफ्फुसों को खाली न महसूस करें परंतु उदरीय अवयवों पर दबाव नहीं दें (चित्र 91)।

5. नासिका में से सामान्य रूप से अंतःश्वसन करें। इसी को पूरक क्रिया (अंतः-श्वसन) कहते हैं।

6. धीमे, गहनता और स्थिरता से श्वास बाहर निकालें जब तक कि फुफ्फुस खाली न हो जाएं। इसी को रेचक (उच्छ्वसन) क्रिया कहते हैं।

7. दस मिनट तक यही अभ्यास जारी रखें और इसके बाद विश्राम करें।

यहाँ इस बात पर जोर दिया गया है कि धीमे, गहन और स्थिर रूप से रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) की जाए।

प्रभाव

यह अवस्था नाड़ियों को आराम देती है और मस्तिष्क को शांत करती है। इसका धीमे, स्थिर और गहन रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) हृदय-रोग और उच्च रक्तचाप से पीड़ित साधकों के लिए रामबाण हैं।

अवस्था तीन

यह प्रारंभिक अवस्था प्रत्येक साधक को अंतःश्वसन की अवधि को बढ़ाने में प्रशिक्षित करती है और इससे पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) की कला सीखी जाती है।

तकनीक

1. लेटें, जैसा कि अवस्था 1 के पैरा 1 और 2 में वर्णन किया गया है। इसके बाद अवस्था दो के पैरा 2 से 4 तक में दिए गए अनुदेशों का अनुसरण करें।

2. डायाफ्राम को विश्राम दें और दोनों ओर उसे फैलाएं। जब आप श्वास लेते हों उस समय उदर को न फैलाएं (चित्र 92)। इसको बचाने के लिए डायाफ्राम को प्लावी पसलियों के ऊपर संचलन न करने दें या लपेटने न दें (चित्र 93 और 94)।

3. नासिका में से अधिक सावधानी से धीमी, गहन, स्थिर और सिसकारी-भरी श्वास लें। यह निश्चय कर लें कि दोनों फुफ्फुस समान रूप से भर गए हैं।

4. ध्यान से यह ध्वनि सुनें और उसकी लय बराबर बनाए रखें।

5. फुफ्फुसों को पूर्णतया वायु से भर लें जब तक कि पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) की ध्वनि साफ सुनाई न देने लगे।

6. गहन पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) पुतलियों को ऊपर संचलन करने में सहायता देती है (चित्र 95)। सचेत होकर उन्हें नीचे लाएं और फुफ्फुसों को ध्यान से देखें (चित्र 54 देखें)।

7. रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) प्रारंभ करने के समय डायाफ्राम को गतिहीन करें और इसके बाद धीरे-धीरे श्वास निकालें लेकिन यह रेचक क्रिया गहन न हो। यहां बाह्य श्वास सामान्य श्वास की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक दीर्घ होगी।

8. इस स्थिति में दस मिनट तक अभ्यास करें और इसके बाद विश्राम करें।

यहां इस बात पर जोर दिया गया है कि पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) धीमी, गहन और स्थिर होनी चाहिए। एक बार फिर ध्वनि को सुनें और उसकी लय को बराबर बनाए रखें। अपेक्षाकृत अधिक लयात्मक गहन श्वास के लिए यह ठीक है कि पीठ के लिए दो तख्तों का उपयोग करें जैसा कि इस अध्याय के प्रारंभ में बताया गया है (चित्र 80 से 86 तक देखें)।

प्रभाव

यह प्रारंभिक अभ्यास उन साधकों के लिए हितकर है जो निम्न रक्त दबाव से पीड़ित रहते हैं अथवा जिन्हें दमे की बीमारी होती है अथवा जो अवसाद से घिर जाते हैं। इससे तंत्रिका प्रणाली सशक्त होती है और विश्वास बढ़ता है।

अवस्था चार

यह प्रारंभिक अवस्था साधक को प्रत्येक अंत:श्वसन और बाह्य श्वसन की अवधि को बढ़ाने में प्रशिक्षित करती है। इससे गहन पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) और गहन रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) की कलाओं पर अधिकार पा लिया जाता है।

तकनीक

1. लेटें, जैसा कि अवस्था एक के पैरा 1 और 2 में वर्णन किया गया है। इसके

बाद अवस्था दो, पैरा 2 से 4 तक में दिए गए अनुदेशों का पालन करें।

2. अवस्था तीन के पैरा 2 से 5 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें।

3. डायाफ्राम को पकड़ें और उसे धीरे-धीरे छोड़ें। धीमे, गहन और स्थिर रूप से श्वास बाहर निकालें जब तक कि फुफ्फुस खाली न हो जाएं।

4. यह एक चक्र पूरा करता है। इन चक्रों को दस से पंद्रह मिनटों तक करें और बाद में विश्राम करें।

प्रभाव

इस अवस्था से ऊर्जा मिलती है, नाड़ियों को आराम मिलता है और उनका सामंजस्य स्थापित हो जाता है। उज्जायी प्राणायाम की प्रारंभिक अवस्थाएं अवस्था एक से चार तक हैं। उज्जायी प्राणायाम लेटे रहने की स्थिति में किया जाता है।

अवस्था पांच

अवस्था एक के समान यहां भी श्वास-क्रिया समान होती है लेकिन यह क्रिया उसी स्थिति में होती है जब साधक बैठा हो। यह साधक को अवलोकन में प्रशिक्षित करती है और समान गति के श्वसन की ओर उन्मुख करती है।

तकनीक

1. पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन अथवा वीरासन या किसी भी सुगम और आरामदायक आसन में बैठें।

2. कुछ क्षण के लिए मौन बैठें तथा पीठ और रीढ़ के स्तंभ को कड़ा रखें परंतु धड़ को समायोजित करने के लिए रीढ़ की मांसपेशियों को कोमल और संचलन योग्य गतिमान रखें। रीढ़ की कठोरता को पीठ की मांसपेशियों के संचलन के साथ समरूप से संतुलित किया जाना है जो अंतःश्वास और बाह्यश्वास के साथ प्रसार पाते हैं और संकुचित होते हैं। श्वास के अवशोषण को पीठ की मांसपेशियों के गति-संचलन के साथ समायोजित किया जाना चाहिए। जैसे कि उनकी गति-संचलन स्थिति अपेक्षाकृत धीमी होगी, उसी प्रकार अपेक्षाकृत अधिक श्वास का अवशोषण होगा।

3. सिर को धड़ की ओर झुकाएं और सीने के आंतरिक फ्रेम को झुकी हुई चिबुक की ओर ऊंचा करें। वक्ष की अस्थि के ठीक ऊपर गर्त में चिबुक को आराम दें। यही ठोड़ी-ताला (जालंधर बंध) कहलाता है (चित्र 57)। यदि आप इसे पूर्ण रूप से नहीं कर पाते तो आप बिना किसी थकान के सिर को उतना नीचा रखें जितना आप रख सकते हैं और यह अभ्यास जारी रखें (चित्र 63)।

4. बांहों को नीचे रखें और कलाइयों का पृष्ठ भाग घुटनों पर टेकें (चित्र 32) और प्रत्येक हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाएं और अन्य अंगुलियों को फैलाएं (ज्ञानमुद्रा) (चित्र 13)।

5. पुतलियों को तनाव में न रखें जैसा कि चित्र 95 में दिखाया गया है। उन्हें निष्क्रिय और ग्राह्य रखें। नेत्रों को बंद करें और दृष्टि को अंतर्मुखी कर लें

(चित्र 54)।

6. कान के भीतरी भाग सावधान और ग्राह्य रखें।

7. सर्वप्रथम यथासंभव शांति से श्वास निकालें और उदरीय अवयवों पर दवाव न डालें (चित्र 96-97)। धड़ पर उन बिंदुओं को ध्यान से देखें जो बाह्य श्वास, अंतः-श्वास और वायु-धारण के लिए त्वचा-संचलनों को दिखाते हैं।

8. अवस्था एक के पैरा 3 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें और श्वास के प्रवाह को देखें। इसका दस मिनट तक अभ्यास करें और उसके बाद श्वसन में कुछ मिनट के लिए आराम करें (चित्र 182)।

अवस्था छह

इस अवस्था में श्वसन-क्रिया उसी प्रकार की होती है जैसी अवस्था दो में वताई गई है लेकिन यह क्रिया बैठने की स्थिति में की जाती है। यह प्रत्येक बाह्य श्वास की अवधि को बढाने में प्रशिक्षित करती है और रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) की कला को सिखाती है।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. नासिका से सामान्य रूप में श्वास लें।

3, जव तक फुफ्फुस खाली न महसूस करें, तब तक धीमे, गहन और स्थिर रूप से उच्छ्वसन करें।

4. जब आप वायु वाहर निकालें तब आसन पर ध्यान दें और सावधानी से श्वास की महाप्राण ध्वनि को सुनें। इसकी लय और कोमलता को बरावर वनाए रखें।

5. इससे एक चक्र पूरा होता है। इस प्रकार के चक्रों को दस मिनट तक दोह-राते रहें। अंतःश्वसन करें और उसके बाद शवासन में आराम करें (चित्र 182)।

यहां पर धीमे, गहन और स्थिर रूप से रेचक क्रियाओं (उच्छ्वसनों) पर जोर दिया गया है।

अवस्था सात

इस अवस्था में श्वसन क्रिया उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था दो में बताई गई है लेकिन यह क्रिया उसी समय की जाती है जब साधक बैठा हो। इस क्रिया के द्वारा साधक को प्रत्येक अंतःश्वसन की अवधि को वढ़ाने का प्रशिक्षण मिलता है और वह पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) की कला को सीख जाता है।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए

किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था तीन के पैरा 3 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए, नासिका से सावधानीपूर्वक धीमे और गहन रूप से श्वास लें।

3. धीमी गति से श्वास निकालें परंतु यह प्रक्रिया गहन रूप से नहीं होनी चाहिए और इस प्रकार सामान्य की अपेक्षा कुछ अधिक समय तक रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) की जानी चाहिए।

4. इससे एक चक्र पूरा होता है। इस प्रकार के चक्रों को दस मिनट तक दोहराते रहें। अंतःश्वसन करें और इसके बाद शवासन में विश्राम करें (चित्र 182)।

उज्जायी प्राणायाम के अभ्यासों के लिए अवस्था पांच से लेकर अवस्था सात तक की प्रारंभिक अवस्थाएं हैं जिन्हें बैठने के आसन में संपन्न किया जाता है।

अवस्था आठ

अब उचित रूप से उज्जायी प्राणायाम प्रारंभ करें जिसमें गहन रूप से श्वास ली जाए और बाहर निकाली जाए।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. नासिका से धीमे, गहन और स्थिर रूप से अंतःश्वास लें।

3. श्वास की सिसकारी ध्वनि को सुनें। इसके प्रवाह, ध्वनि और लय को नियंत्रित, समायोजित और समकालिक करें। प्रवाह ध्वनि के अनुवाद द्वारा नियंत्रित किया जाता है और ध्वनि प्रवाह के द्वारा नियंत्रित की जाती है। प्राणायाम की सफलता की यही कुंजी है।

4. तल से लेकर सिरे तक, यहां तक कि हंसली तक फुफ्फुसों में वायु भरें। सावधानी से फुफ्फुसों के दूर तक के भागों में वायु के प्रवाह को बनाए रखने का प्रयास करें (चित्र 98 सामने का दृश्य; 99 पश्च दृश्य; 100 पार्श्व दृश्य)।

5. लगातार श्वास के अंतःप्रवाह के प्रति सजग रहें।

6. जब आप वायु अंदर लें, उस समय आपका शरीर, फुफ्फुस, मस्तिष्क और चेतना सक्रिय होने की अपेक्षा ग्राह्य होनी चाहिएं। श्वास दैवी वरदान के रूप में प्राप्त की जाती है और इसे बलपूर्वक नहीं लेना चाहिए।

7. जब आप श्वास लेते हों, उस समय उदर को न फुलाएं। डायाफ्राम को पूरे समय तक पसलियों के नीचे रखें। सभी प्रकार के प्राणायाम में इस स्थिति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि डायाफ्राम को प्लावी पसलियों से ऊपर उठाया जाता है तो सीने की अपेक्षा उदर फूल जाता है।

8. ऊपर पैरा 4, 6 और 7 में वर्णित संचलन जघनास्थि से रीढ़ की ओर वक्षास्थि तक कुल उदर के क्षेत्र को खींचकर किए जाते हैं और इसके बाद इन्हें सिर

की ओर ऊपर किया जाता है। इससे स्वतः आंतरिक अवयवों की मालिश हो जाती है।

9. गहन पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) में सामने की आंतरिक अंतरापर्शुक मांसपेशियों को ऊपर उठाया जाता है। रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) से ठीक पहले इन मांसपेशियों को और अधिक ऊंचा किया जाता है जो श्वास निकालने से पूर्व साधक को तैयार करती है।

10. अब गहन रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) प्रारंभ होती है जिसमें धड़ और डायाफ्राम सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

11. डायाफ्राम के साथ अंतरापर्शुक मांसपेशियों के उठान को बनाए रखें और रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) प्रारंभ करें। श्वास को धीमे, गहन और स्थिर रूप से बाहर निकालें।

12. कुछ सेकिंडों में धड़ की पकड़ अपने-आप ही धीरे-धीरे शिथिल हो जाती है जब तक कि फुफ्फुस निष्क्रिय रूप से खाली हो जाते हैं। श्वास के बाह्य-प्रवाह के दौरान लगातार चेतना को बनाए रखें।

13. इससे एक चक्र पूरा होता है। नेत्रों को बंद करके और भुजाओं को विश्राम देते हुए इस प्रक्रिया को दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं, श्वास लें और इसके बाद लेट जाएं तथा शवासन में आराम करें (चित्र 182)।

14. ऊष्मा, उल्लास और प्रसन्नता के साथ श्वास लें, मानों आप परमात्मा से वरदान के रूप में जीवन शक्ति प्राप्त कर रहे हों। परमात्मा के प्रति समर्पणकर्ता की मौन नम्रता को व्यक्त करते हुए आभार की भावना से श्वास बाहर निकालें।

15. प्रत्येक पूरक (अंतःश्वसन) और रेचक (बाह्यश्वसन) क्रिया के बाद कुछ अंतराल होता है जब धड़ की मांसपेशियां अपने आपकों समायोजित कर लेती हैं। इसको समझें।

प्रभाव

प्राणायाम से फुफ्फुसों में वायु भरती है तथा प्राणायाम तंत्रिका प्रणाली शांत करता है और उसमें सामंजस्य स्थापित करता है। गहन श्वास-प्रश्वास क्रिया के परिणामस्वरूप रक्त-तंतुओं के सूक्ष्मतम भागों तक जीवनदायिनी ऊर्जा ले जाता है। इससे कफ कम हो जाता है, सीने का दर्द दूर हो जाता है और स्वर मधुर हो जाता है।

अवस्था नौ

यह अवस्था नौसिखिया साधकों की है जो कुंभक क्रिया (श्वास का धारण) प्रारंभ करते हैं जब फुफ्फुसों में वायु भरी रहती है। यह सहित अंतर कुंभक है।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 8 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और श्वास बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. श्वास लें और श्वास को रोकें। धड़ को दृढ़ और सतर्क रखें (चित्र 101 सामने का दृश्य; 102 पश्च दृश्य; 103 पार्श्व दृश्य)।

3. कुंभक क्रिया (वायु धारण की क्रिया) के दौरान नासिका के सेतु अथवा नेत्र या सिर को ऊंचा न उठाएं (चित्र 78)।

4. धड़ की त्वचा के सुदूर छिद्रों में भेद करने वाली वायु को महसूस करें और इस प्रक्रिया से सचेत रहें।

5. कुछ सेकिंड के बाद यह चेतना अपनी पकड़ को शिथिल करने लगती है। जिस क्षण भी यह प्रक्रिया हो, उसी समय सामान्य रूप से श्वास बाहर निकालें। यह एक चक्र है अतः इसका अभ्यास दस से पंद्रह बार करें।

6. इस अभ्यास में कोई भी थकावट महसूस हो तो इन चक्रों को सामान्य श्वसन के साथ वैकल्पिक रूप से संपन्न करना चाहिए।

7. जब यह अभ्यास सरल हो जाए तब इसे बढ़ा दें। जब तक कि आप एक ही समय में दस से पंद्रह सेकिंड तक सरलता से श्वास को रोके न रखें। कुंभक क्रिया की अवधि को बढ़ाने के लिए डायाफ्राम को फुफ्फुसों की ओर ऊंचा उठाएं, उसे मजबूती से पकड़ें और उदर को रीढ़ की ओर अंदर और बाहर करें। इसके बाद नासिका के सेतु को उठाए बिना श्वास को रोकें (चित्र 78)।

8. यदि फुफ्फुसों में कठोरता महसूस हो अथवा कनपटियों में और उनके बाहर अथवा सिर में तनाव महसूस हो तो यह इस बात का संकेत है कि आप अपनी क्षमता से आगे बढ़ गए हैं; यदि ऐसा है तो आंतरिक कुंभक क्रिया (आंतरिक धारण क्रिया) की अवधि को कम कर दें। आंतरिक धारण (आंतरिक कुंभक) की क्रिया से रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) तक का संक्रमण सरल होना चाहिए।

9. धड़, डायाफ्राम तथा फुफ्फुसों पर नियंत्रण शिथिल किए बिना धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें। इस अभ्यास को पूरा करने के बाद कुछ गहन श्वास लें और तत्पश्चात् शवासन में आराम करें (चित्र 182)।

ध्यान देने योग्य संकेत

जब आप लेटे हों तो आंतरिक कुंभक क्रिया करनी चाहिए तथा सिर के नीचे तकिया रख लेना चाहिए ताकि जालंधर बंध को उत्तेजित किया जा सके (चित्र 77)।

प्रभाव

श्वास और फुफ्फुसों तथा नाड़ियों और मस्तिष्क के मध्य समरसता के विकास के लिए सहित अंतर कुंभक का अभ्यास करना चाहिए। यदि इनका अभ्यास सही तरीके से किया जाए तो इससे गतिशील स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें शरीर ऊर्जा से लबालब भर जाता है। इससे साधक के कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है, इससे साधक की निराशा दूर हो जाती है तथा उसमें आशा पनपती है। ऊर्जा के सर्जन से तंत्रिका प्रणाली सशक्त हो जाती है और सहनशक्ति का विकास होता है। यह उन्हीं साधकों के लिए आदर्श है जो निम्न रक्त दबाव, नीरसता, सुस्ती और संदेह से पीड़ित होते हैं।

फिर भी, अंतर कुंभक उन साधकों के लिए ठीक नहीं है जो उच्च रक्त-दवाव, उच्च रक्तचाप और हृदय-विषमताओं से पीड़ित होते हैं ।

अवस्था दस

यह अवस्था नौसिखिया साधकों के लिए है, जब फुफ्फुस खाली होते हैं तब श्वास की कुंभक क्रिया प्रारंभ की जाती है । इसे स्वतः बाह्य श्वसन धारण (सहित बाह्य कुंभक) कहते हैं ।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और जहां कहीं भी फुफ्फुसों में श्वास हो, उसे वाहर निकालें (चित्र 96) ।

2. बिना किसी थकान के यथासंभव फुफ्फुसों को खाली करते हुए सामान्य रूप से श्वास अंदर लें और स्थिरता तथा धीमी गति से श्वास को बाहर निकालें ।

3. निष्क्रिय रहें और यथासंभव श्वास को रोकें (चित्र 96) और इसके बाद सामान्य रूप से श्वास लें । यह एक चक्र है । इसे दस या बारह बार दोहराएं अथवा दस मिनट तक जारी रखें ।

4. उदर में संकुचन, कनपटियों पर दवाव अथवा वायु के लिए श्वास लेने में हांफने की स्थिति से विदित होता है कि आप बाह्य कुंभक (बाह्य धारण) में अपनी क्षमता तक पहुंच गए हैं; ऐसी स्थिति में आप कुंभक क्रिया की अवधि को कम कर दें । पूरक क्रिया (अंतःश्वसन क्रिया) में परिवर्तन सरल होना चाहिए । यदि अभ्यास की अवधि में थकान महसूस हो तो इस अवस्था के चक्रों को सामान्य श्वसन के साथ परिवर्तित कर लेना चाहिए ।

5. कुछ गहरे श्वास लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182) ।

ध्यान देने योग्य संकेत

सिर के नीचे तकिया रखकर लेटते समय बाह्य कुंभक क्रिया (बाह्य धारण क्रिया) भी की जा सकती है (चित्र 77) ।

प्रभाव

बाह्य कुंभक उन लोगों के लिए विशेषकर हितकर है जो अधिक तनाव में रहते हों अथवा उच्च रक्त दवाब से पीड़ित हों क्योंकि इससे नाड़ियों का तनाव दूर हो जाता है । इससे निष्क्रिय स्थिति पैदा हो जाती है जो एक प्रकार की शांति की भावना है जैसे कि कोई खाली जलयान पानी पर तैर रहा हो । फिर भी, यह उन लोगों के लिए ठीक नहीं है जो उदासी, विषाद और निम्न रक्त दवाब से पीड़ित हों ।

अवस्था ग्यारह

यह उच्च स्तरीय छात्रों के लिए अंतरकुंभक है ।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और श्वास छोड़ें (चित्र 96)।

2. धड़ को सावधान रखते हुए किसी बल, झटके अथवा कठोरता के बिना दृढ़ और गहन श्वास लें।

3. 10 से 15 सेकिंड तक श्वास रोकें (चित्र 101 और 103)।

4. कुछ ही क्षणों में शरीर अपनी पकड़ शिथिल कर लेता है। इस पकड़ को बनाये रखने के लिए, किनारे की पसलियों को ऊँचा उठायें। जघनास्थि, मूलाधार और गुदा से नीचे के धड़ को संकुचित करें तथा रीढ़ के सहारे सीने की ओर से ऊपर उठाएं। यह मूलबंध है (चित्र 69)।

5. धड़ के ऊंचा करने से सिर में तनाव उत्पन्न होता है। गर्दन के पश्च भाग के आधार से सिर को नीचा करें। इससे अपेक्षाकृत अधिक अच्छा जालंधर बंध होता है। इससे सिर का तनाव कम हो जाता है।

6. धड़ की त्वचा के सुदूर छिद्रों को पार करती हुई श्वास को महसूस करें जिस से शरीर में सभी जगह चेतना आ जाए।

7. नेत्रों, कानों और जिह्वा को निष्क्रिय रखें और मस्तिष्क को भी शांत रखें।

8. यदि कुंभक क्रिया (धारण क्रिया) की अवधि अधिक हो तो गले में थकान महसूस होती है और चेहरे की मांसपेशियां तथा कनपटियां कस जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि आप अपनी पकड़ को ढीला कर रहे हैं। इसलिए ऊपर बताए गए पैरा 4 में जो निर्देश दिए गए हैं, उनके अनुसार धड़ की ऊर्जा को पुनः चार्ज करें।

9. यदि सिर और धड़ में अभी भी तनाव महसूस होता हो और चेहरा उत्तेजित हो उठे तो इसका अर्थ यह है कि आपकी सही पकड़ नहीं है अथवा आप अपनी क्षमता से अधिक अभ्यास कर चुके हैं। इससे तंत्रिका प्रणाली में आघात पहुंच सकता है। ऐसी स्थिति में आप कुंभक क्रिया (धारण क्रिया) को जारी न रखें।

10. धड़, डायाफ्राम और फुफ्फुसों की पकड़ को शिथिल किए बिना साधारण या गहन रूप से श्वास निकालें।

11. यह कुंभक क्रिया का एक चक्र है। इस प्रकार के दस या बारह चक्रों का अभ्यास करें और जैसी सावधानी पहले चक्र में रखी हो, उसी प्रकार की सावधानी सारे चक्रों में रखें। कुंभक क्रिया (धारण) की क्षमता व्यक्तियों में अलग-अलग होती है अतः श्वास के धारण की अवधि को एकसा बनाए रखना संभव नहीं है। तीन या चार-श्वास की अवधि के बाद आंतरिक कुंभक क्रिया करना ठीक है।

12. इस अभ्यास के पूरा करने के बाद श्वास अंदर लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

इस अवस्था में अंतःश्वास और बाह्य श्वास की अपेक्षा श्वास के धारण पर अधिक बल दिया जाता है।

प्रभाव

यह अवस्था सुस्ती, मितली और शारीरिक थकावट से पीड़ित लोगों के लिए हितकर है। इससे शरीर में ऊष्मा बनी रहती है, कफ दूर हो जाता है और प्रसन्नता तथा विश्वास पैदा होता है। इससे साधक अपेक्षाकृत अधिक एकाग्रता की ओर उन्मुख हो जाता है। गलत अभ्यास करने से चिड़चिड़ापन, घबराहट, क्रोध और थकान पैदा होती है।

अवस्था बारह

यह उच्च स्तरीय विद्यार्थियों के लिए बाह्य कुंभक है।

तकनीक

1. अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें और श्वास बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. सामान्य रूप से श्वास लें और स्थिरता तथा शक्ति से श्वास बाहर निकालें। बिना किसी बल, झटके या खिंचाव के फुफ्फुसों को उतना खाली करें जितना कि आप कर सकते हैं।

3. जब रेचक क्रिया (उच्छ्वसन क्रिया) पूर्ण हो जाए तो पूरक क्रिया (अंतःश्वसन क्रिया) न करें लेकिन ठहरें तथा रीढ़ की ओर पश्च भाग और सीने की ओर ऊपरी भाग के कुल उदरीय क्षेत्र को अंदर की ओर खींचें। इसी को उड्डीयान बंध कहते हैं (चित्र 104)।

4. आपके लिए जितने भी समय तक पकड़ बनाए रखना संभव हो, उतनी देर तक पकड़ बनाए रखें। जब तनाव महसूस किया जाता है तो उदर को विश्राम और उसे सामान्य बनाएं तथा बाद में श्वास लें।

5. यह एक चक्र होता है। ऐसे आठ से दस चक्रों को दोहराएं, तत्पश्चात् श्वास लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

6. जैसे-जैसे अभ्यास में सुधार आता जाए, रेचक (उच्छ्वसन) के बाद कुंभक (धारण) की क्रिया की अवधि को बढ़ाते जाएं। यह अवधि प्रत्येक व्यक्ति के साथ घटती-बढ़ती रहती है। आप इसे बढ़ाने के लिए अपनी क्षमता देखें।

7. उड्डीयान बंध के दौरान कभी भी श्वास न लें क्योंकि इससे आप हांफने लगेंगे और हृदय को थकान लगेगी।

8. प्रारंभ में यह परामर्श दिया जाता है कि तीन या चार गहन श्वास के बाद बाह्य कुंभक क्रिया करें।

प्रभाव

इस अवस्था से उदरीय अवयव स्वच्छ हो जाते हैं और उनके अंश दूर हो जाते हैं।

अवस्था तेरह

इस उच्च अवस्था में दोनों आंतरिक और बाह्य कुंभक क्रियाएं पूरक और रेचक क्रियाओं के साथ सम्मिलित की जाती हैं।

तकनीक

1. यहां सर्वप्रथम श्वास बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. गहरा श्वास लें। पूर्ण पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) के बाद 10 सैकिंड तक श्वास की अंतरकुंभक क्रिया करें। (चित्र 101)

3. गहनता से श्वास बाहर निकालें। पूर्ण रेचक के बाद पांच सैकिंड के लिए उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें, श्वास को रोकें (चित्र 104) और गहराई से श्वास लें। इससे एक चक्र पूरा होता है।

4. श्वास बाहर निकालें और दो या तीन गहरी श्वास लें और बाहर निकालें। इसके बाद कुंभक के चक्र दोहराएं, तत्पश्चात् फिर दो या तीन बार गहन श्वास लें और निकालें।

5. पांच से छह चक्र पूरे करें और पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) से समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र1 82)।

उज्जायी प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक		बाह्य कुंभक	
	सा	ग	मू बं सं	मू बं	सा	ग	उ बं सं	उ बं
लेटे हुए								
एक	√				√			
दो	√					√		
तीन		√			√			
चार		√				√		
बैठे हुए								
पांच	√				√			
छह	△					√		

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक		बाह्य कुंभक	
	सा	ग	मू वं	सं मू वं	सा	ग	उ वं सं	उ वं
सात		√			√			
आठ		√				√		
नौ	√		कु से		√			
दस	√					√	य दे त	
ग्यारह		अ ग		10-15 से		सा या ग		
बारह	√					अ ग		य दे त
तेरह		अ ग		10-15 से		सा या ग		य दे त

अ ग — अधिक गहन
उ बं — उड्डीयान बंध
उ बं सं — उड्डीयान बंध की संख्या
कु से — कुछ सेकण्ड
ग — गहन
मू बं — मूल बंध
मू बं सं — मूल बंध की संख्या
सा — साधारण
सा या ग — साधारण या गहन
से — सेकण्ड
य दे त — यथासंभव देर तक

20

विलोम प्राणायाम

लोम का अर्थ केश है और 'वि' उपसर्ग निबंध अथवा अभाव के अर्थ में व्यक्त हुआ है। विलोम का अर्थ 'केश के विपरीत' अथवा 'वस्तुओं की सामान्य व्यवस्था के विपरीत' से है।

विलोम प्राणायाम में पूरक (श्वसन) अथवा रेचक (उच्छ्‌वसन) क्रिया अनवरत प्रक्रिया नहीं है परंतु एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई विरामों से अवरुद्ध होती है। उदाहरणार्थ यदि एक पूर्ण पूरक (अंतःश्वसन) में 15 सैकिंड लगते हैं तो विलोम में प्रति दो या तीन सैकिंड के बाद अवरोध होगा और इस प्रकार पूरक की अबधि पच्चीस या तीस सैकिंड तक हो जाएगी। इसी प्रकार अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्‌वसन) में बाह्य श्वास की अवधि पच्चीस से तीस सैकिंड तक होती है। इस प्राणायाम की तुलना उस ऊपर चढ़ने वाली या उतरने वाली लंबी सीढ़ी से की जा सकती है जिसमें प्रत्येक कदम के बाद रुकने का स्थान होता है। यह ध्यान रखें कि अवरुद्ध पूरक (श्वसन) या रेचक (उच्छ्‌वसन) के विरामों के दौरान अचेतन रूप से बाह्य या अंतःश्वास न हो। आगे जो तकनीकें दी गई हैं, वे नौ अवस्थाओं में निहित हैं।

अवस्था एक

यह अवस्था लेटे हुए आसन में अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) की भूमिका है। यह नौसिखिया साधकों और विकलांगों के लिए उपयुक्त है अथवा उन साधकों के लिए ठीक है जो थकान, कमजोरी, बेचैनी अथवा निम्न रक्त दबाव से पीड़ित होते हैं।

तकनीक

1. कुछ मिनटों के लिए मौन होकर लेट जाएं जैसा कि उज्जायी अवस्था एक में बताया गया है और प्राथमिकता के आधार पर तख्तों या गद्दियों का उपयोग कर जैसा कि अध्याय उन्नीस के प्रारंभ में बताया गया है।

2. उज्जायी में अवस्था दो के पैरा दो, तीन और चार में दी गई तकनीकों

का अनुसरण करें और फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो उसे बाहर निकालें (चित्र 91)।

3. अब अवरुद्ध पूरक क्रिया (श्वसन क्रिया) के साथ अभ्यास प्रारंभ करें जैसा कि आगे बताया गया है। दो या तीन सैकिंड के लिए श्वास लें, ठहरें और दो या तीन सैकिंडों के लिए श्वास को रोक लें और यह क्रिया फिर दोहराएं। प्रत्येक समय रुकने के बाद डायाफ्राम कुछ गतिहीन हो जाता है। जब आप फिर श्वास लें तब प्रत्येक विराम के बाद डायाफ्राम को शिथिल न होने दें। इस प्रक्रिया को बराबर दोहराते रहें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया वायुपूरित न हो जाएं। इस प्रक्रिया में चार या पांच बार विराम करना होगा। इस अभ्यास के दौरान कोई भी थकान महसूस नहीं की जानी चाहिए।

4. अब धीरे-धीरे और गहन रूप से श्वास निकालें जैसा कि उज्जायी की अवस्था दो में दिखाया गया है और धीरे-धीरे डायाफ्राम की पकड़ को शिथिल करें।

5. इससे अवस्था एक में वर्णित विलोम का एक चक्र पूरा होता है। इन्हें सात से दस मिनट तक दोहराएं अथवा उतने समय तक दोहराते रहें जब तक कि आपको थकान महसूस न हो। सामान्य रूप से दो या तीन बार श्वास लें और इसके बाद शवासन में विश्राम करें (चित्र 182)।

अवस्था दो

यह अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) की भूमिका है जब लेटे हुए हों। यह नौसिखिया साधकों, कमजोर व्यक्तियों और विकलांगों के लिए उपयुक्त है अथवा ऐसे व्यक्तियों के लिए ठीक है जो थकान, बेचैनी, उच्च रक्त दबाव अथवा हृदय की शिकायत से पीड़ित होते हैं।

तकनीक

1. कुछ मिनटों के लिए मौन होकर लेट जाएं जैसा कि उज्जायी की अवस्था एक में बताया गया है और इसके बाद उज्जायी की अवस्था दो के पैरा 2, 3 और 4 में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो उसे बाहर निकालें (चित्र 91)।

2. कुछ समय तक बिना रुके गहरी श्वास लें जैसा कि उज्जायी में बताया गया है तथा फुफ्फसों को वायु से भर लें लेकिन अधिक थकने न दें।

3. दो या तीन सैकिंडों के लिए श्वास निकालें, ठहरें और दो या तीन सैकिंडों के लिए श्वास रोकें और इस क्रिया को दोहराएं। यह क्रिया उस समय तक करते रहें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतः रिक्त न हो जाएं। इस प्रक्रिया में चार या पांच बार विराम करना होगा। धीरे-धीरे उदर पर पकड़ को शिथिल करें।

4. इससे अवस्था दो में बताए गए विलोम का एक चक्र पूरा होता है। इन्हें सात से दस मिनट तक दोहराएं और उस समय तक दोहराते जाएं जब तक कि थकान

महसूस न होने लगे। श्वास लें और उसके बाद श्वासन करें (चित्र 182)।

प्रभाव

इस अवस्था से शरीर को आराम और हलकापन महसूस होता है।

अवस्था तीन

यह अवस्था पहली और दूसरी अवस्था का संयोजन है और यह क्रिया लेटे हुए आसन में की जाती है।

तकनीक

1. कुछ मिनटों के लिए मौन होकर लेट जाएं जैसा कि उज्जायी की अवस्था एक में वर्णित किया गया है और इसके बाद उज्जायी की अवस्था दो के पैरा 2, 3 और 4 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें तथा श्वास निकालें (चित्र 91)।

2. अब ऊपर बताई गई अवस्था एक के पैरा 3 में वर्णित अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) करें।

3. एक या दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकें।

4. अब ऊपर बताई गई अवस्था दो के पैरा 3 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) प्रारंभ करें। धीरे-धारे डायाफ्राम की पकड़ को शिथिल करें।

5. इससे अवस्था तीन में बताए गए विलोम का एक चक्र पूरा होता है। इन्हें आठ या बारह मिनटों तक दोहराएं अथवा इतने समय तक दोहराएं कि थकान महसूस न हो। श्वास लें और इसके बाद श्वासन में विश्राम करें (चित्र 182)।

अवस्था चार

यह अवस्था बैठने के आसन में अवरुद्ध पूरक (अंतःश्वसन) की भूमिका है। नौसिखिया साधकों के लिए यह क्रिया उपयुक्त है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच में वर्णित पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। बिना किसी थकान के श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अब अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) करें, जैसा कि आगे दिया गया है। दो या तीन सैकिंड के लिए श्वास लें, ठहरें, और दो या तीन सैकिंडों के लिए श्वास रोकें। फिर दो या तीन सैकिंडों के लिए श्वास लें और उतने ही समय तक श्वास को रोकें। विराम के लिए डायाफ्राम हल्के से पकड़ लिया जाता है। जब आप प्रत्येक बार रोकने

के बाद फिर से सांस लें तो डायाफ्राम को शिथिल न करें। इस अवस्था को बनाए रखें। जब तक की फुफ्फुसों में पूरी वायु न भर जाए। इसमें चार या पांच बार विराम करना पड़ता है। क्रिया करते समय कोई भी थकान महसूस नहीं करनी चाहिए।

3. रीढ़ की ओर उदरीय अवयवों को धीरे से खींचें और ऊपर उठाएं। इसके बाद धीरे और गहन रूप से श्वास बाहर निकालें जैसा कि उज्जायी की अवस्था छह में दिया गया है और धीरे-धीरे उदर के ऊपर पकड़ को ढीला करें।

4. इससे अवस्था चार के विलोम का एक चक्र पूरा होता है। इन चक्रों को सात से दस मिनट तक दोहराएं अथवा इन चक्रों को उस समय तक दोहराते रहें जब तक कि आप थक न जाएं। दो या तीन बार सामान्य रूप से श्वास लें और इसके बाद श्वासन में आराम करें (चित्र 182)।

प्रभाव

प्रभाव उसी प्रकार के हैं जैसे कि अवस्था एक में दिए गए हैं।

अवस्था पाँच

यह अवस्था बैठने के आसन में अवरुद्ध रेचक क्रिया (ब्राह्य श्वसन) की भूमिका है। यह साधारण स्वास्थ्य वाले नौसिखिया साधकों के लिए उपयुक्त है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठें। बिना थकान के श्वास बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. एक ही बार दीर्घ और गहन श्वास लें और श्वास लेते समय न रुकें। फुफ्फुसों को वायु से लबालब भर लें।

3. अब अवरुद्ध बाह्य श्वसन प्रारंभ करें जैसा कि अवस्था दो में बताया गया है लेकिन डायाफ्राम का संचलन नहीं किया जाता है, यह क्रिया इस प्रकार की जाती है: दो सैकिंडों के लिए श्वास बाहर निकालें, ठहरें, डायाफ्राम को पकड़ें और श्वास को दो या तीन सैकिंडों तक रोकें तथा इस क्रिया को दोहराएं। यह तब तक करते रहें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया खाली न हो जाएं जिसमें चार या पांच बार विराम करने होंगे। डायाफ्राम की पकड़ को धीरे-धीरे ढीला करें।

4. इससे अवस्था पांच में बताए गए विलोम का चक्र पूरा होता है। इन्हें आठ से दस मिनट तक दोहराएं अथवा इतनी देर तक दोहराएं जब तक कि कोई थकान महसूस न हो। दो या तीन साधारण श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इस अभ्यास से उल्लास और शांति की भावना उत्पन्न होती है।

अवस्था छह

यह अवस्था चौथी और पांचवीं अवस्था का संयोजन है तथा यह क्रिया बैठने के आसन में की जाती है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच में वर्णित पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठें। बिना किसी थकान के श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अब ऊपर बताई गई अवस्था चार के पैरा 2 की तकनीक का अनुसरण करते हुए अवरुद्ध अंत:श्वसन करें।

3. श्वास को दो या तीन सेकिंडों के लिए रोकें। उदर को पकड़ें और इसके बाद अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) प्रारंभ करें तथा रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) से पूर्व ऊपर बताई गई अवस्था पांच के पैरा 3 की तकनीक का अनुसरण करें।

4. इससे अवस्था छह के विलोम का एक चक्र पूरा होता है। दस या पंद्रह मिनट तक इसे दोहराएं अथवा उतनी अवधि तक दोहराएं जब तक आपको थकान न महसूस हो। दो या तीन श्वास लें और इसके बाद श्वासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे सहन शक्ति और उल्लास की भावना का विकास होता है।

अवस्था सात

इसमें अवरुद्ध अंत:श्वसन क्रिया के बाद अंतर कुंभक क्रिया (आंतरिक धारण) प्रारंभ की जाती है। यह उन विद्यार्थियों के लिए है जो मध्यम प्रकार के हैं और जिन्होंने गहन अभ्यास किया है तथा जिन्होंने अपने अभ्यास से कुछ शक्ति और स्थिरता प्राप्त कर ली है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच में वर्णित पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। बिना थकान के गहन उच्छ्वसन करें (चित्र 96)।

2. ऊपर बताई गई अवस्था चार के पैरा 2 में वर्णित अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतः-श्वसन) प्रारंभ करें।

3. अब श्वास को दस से पंद्रह सेकिंड तक रोकें। इसी को अंतर कुंभक क्रिया (आंतरिक धारण) कहा जाता है (चित्र 191)। डायाफ्राम को पकड़ें और इसके बाद

धीरे-धीरे श्वास निकालें तथा गहनता और धीमी गति से डायाफ्राम की पकड़ को शिथिल करें ।

4. इससे अवस्था आठ के विलोम का एक चक्र पूरा होता है । इसे पंद्रह से बीस मिनट तक दोहराएं अथवा इतनी अधिक देर तक दोहराएं जब तक कोई थकान अथवा बेचैनी महसूस न हो । दो या तीन बार श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182) ।

प्रभाव

यह अवस्था उन लोगों के लिए लाभदायक होती है जो निम्न रक्त दबाव से पीड़ित हों । फुफ्फुसों की कोशिकाओं में वायु भरी होती है, फुफ्फुसों में लचक पैदा होती है और गहन श्वास की क्रिया सूक्ष्मता, सरलता और आराम से सीखी जाती है ।

अवस्था आठ

इसमें अवरुद्ध उच्छ्वसन का अनुसरण करते के बाद बाह्य कुंभक क्रिया (बाह्य धारण) प्रारंभ की जाती है । यह उन विद्यार्थियों के लिए है जिन्होंने अभ्यास करते हुए शक्ति और स्थिरता प्राप्त कर ली है ।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए कुछ समय के लिए बैठें । धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें जब तक कि फुफ्फुस खाली न हो जाएं । इस प्रक्रिया में थकान नहीं होनी चाहिए (चित्र 96) ।

2. बिना किसी विराम के लम्बी गहरी श्वास लें । फुफ्फुसों को वायुपूरित कर लें परंतु अधिक थकान न होने दें ।

3. दो से तीन सेकिंडों के लिए श्वास को रोकें ।

4. ऊपर बताई गई अवस्था पांच के पैरा 3 में वर्णित अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) करें ।

5. पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) से पूर्व पांच या छह सेकिंडों तक श्वास को रोकें ।

6. इससे अवस्था आठ के विलोम का एक चक्र पूरा हो जाता है । पंद्रह से बीस मिनटों तक इन क्रियाओं को दोहराएं अथवा इतने अधिक समय तक दोहराएं कि आप को थकान न महसूस हो । दो या तीन साधारण श्वास लें और बाद में शवासन में लेट जाएं (चित्र 182) ।

प्रभाव

इससे नाड़ियों को आराम मिलता है ओर मस्तिष्क को शांति मिलती है ।

अवस्था नौ

अवस्था सात और आठ को इस अवस्था में सम्मिलित किया गया है और इसमें (क)

अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) और रेचक क्रिया (वाह्य श्वसन), (ख) अंतर और बाह्य कुंभक क्रिया (आंतरिक और बाह्य धारण), और (ग) बंध शामिल कर लिए जाते हैं। यह केवल उन उच्च स्तरीय विद्यार्थियों के लिए है जिन्होंने कई वर्षों तक योग में अभ्यास किया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठें। उस समय तक श्वास बाहर निकालें जब तक फुफ्फुस खाली न हो जाएं और इस क्रिया में थकान नहीं होनी चाहिए (चित्र 96)।

2. अवस्था चार के पैरा 2 में वर्णित अवरुद्ध पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) प्रारंभ करें।

3. इसके बाद दस से पंद्रह सेकिंड के लिए अथवा उतने समय के लिए जितना आप कर सकें, मूलबंध के साथ श्वास को रोकें (चित्र 101)।

4. अब ऊपर बताई गई अवस्था पांच के पैरा 3 में वर्णित अवरुद्ध रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) करें।

5. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब श्वास को पांच से छह सेकिंड के लिए रोकें। उज्जायी की अवस्था बारह के पैरा 3 में वर्णित उड्डीयान बंध करें परंतु इस बात का ध्यान रखें कि अधिक थकान न हो (चित्र 104)।

6. इससे अवस्था नौ के विलोम का एक चक्र पूरा होता है। इन्हें पंद्रह से बीस मिनट तक दोहराएं अथवा उतनी देर तक दोहराएं जब तक थकान महसूस न हो। दो या तीन सामान्य श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इस अवस्था में अवस्था सात और आठ के प्रभाव सम्मिलित हैं।

विलोम प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक		बाह्य कुंभक	
	को वि न	वि	को मू बं न	मू बं	को वि न	वि.	उ बं न	उ बं
लेटे हुए								
एक		√			√			
दो	√					√		

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक		वाह्य कुंभक	
	को वि न	वि	को मू वं न	मू वं	को वि न	वि	उ वं न	उ वं
तीन		√				√		
बैठे हुए								
चार		√			√			
पाँच	√					√		
छः		√				√		
सात		√	10-15 से		√			
आठ	√					√	5-6 से	5-6 से
नौ		√		10 से		√		

को वि न — कोई विराम नहीं
वि — विराम
को मू बं न — कोई मूलबंध नहीं
मू बं — मूलबंध
उ वं न — उड्डीयान बंध नहीं
उ वं — उड्डीयान बंध

21

भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी प्राणायाम

भ्रामरी प्राणायाम

भ्रमर का अर्थ एक बड़ा काला भौंरा है और इस प्राणायाम को भ्रामरी प्राणायाम इसलिए कहते हैं कि उच्छ्वसन के समय ऐसी मंद भिन भिन ध्वनि उठती है जो भौंरों के गुंजार जैसी होती है । इस प्राणायाम को करने का समय मौन और शांत रात्रि है । भ्रामरी प्राणायाम को दो अवस्थाओं में संपन्न किया जाता हैं, एक अवस्था लेटे रहने की है और दूसरी अवस्था बैठे रहने की है ।

तकनीक

इसमें गहन पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) उसी प्रकार की जाती है जैसी कि उज्जायी प्राणायाम में किया करते हैं और गहन रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) के समय गुंजार या मर्मर ध्वनि होती है । फिर भी यह उचित नहीं है कि इस प्राणायाम में श्वास को रोका जाए। भ्रामरी प्राणायाम को जालंधर बंध के बिना षण्मुखी मुद्रा संपन्न करते समय भी किया जा सकता है ।

षण्मुखी मुद्रा (चित्र 105 और 106)

हाथों को चेहरे तक उठाएं और कुहनियों को कंधों के समान स्तर तक उठाएं । अंगूठों के अग्रभागों को कानों के छेदों में (कर्ण कुहरों में) रखें जिससे वाहरः की आवाज कानों में न आए। यदि अंगूठों के अग्रभागों से कर्णपुटों में पीड़ा होती है तो दबाव को कम करें अथवा ट्रेगी (वाहरी कान के द्वार पर की छोटी ऊंचाई) को कर्णपुटी की ओर धकेलें और उन्हें अंदर की ओर दबाएं ।

तर्जनी और मध्यमा (अंगुलियों) तथा पलकों को सुगमतापूर्वक बंद करने के लिए उपयोग करें। मध्यमा के पोरे ऊपरी पलकों को नीचे लाते हैं और तर्जनी के पोरे ऊपर के भाग को ढक लेते हैं ताकि प्रकाश नेत्रों के अंदर नहीं आ पाता ।

अनामिका के अग्रभाग से दोनों नासापुटों को समान रूप से दबाएं । इस प्रकार नाक के छिद्र धीमे, गहरे, निश्चित, लयपूर्ण और सूक्ष्म श्वास के लिए छोटे हो जाएंगे। कनिष्ठिका को ऊपर के होंठ पर रखें ताकि श्वास का प्रवाह महसूस किया जा सके ।

साधक अपने स्वयं के अंतर के दिव्य नाद को सुन सकता है जैसे ही अंगूठों पर दबाव के कारण वह चकाचौंध करने वाले कई प्रकार के रंग देखता है और कभी-कभी स्थिर प्रकाश देखता है जैसा कि सूर्य का प्रकाश होता है । यदि षण्मुखी मुद्रा पकड़ना कठिन है तो सिर के चारों ओर तथा कानों और कर्णपुटों के ऊपर कपड़ा लपेट लें (चित्र 107) ।

भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास की समाप्ति के बाद पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) करें और बाद में शवासन करें (चित्र 182) ।

ध्यान देने योग्य संकेत

कुंभक के लिए प्रयत्न किया जा सकता है, अन्य प्राणायामों में जालंधरबंध के साथ सिर के चारों ओर कपड़ा लपेटा जा सकता है (चित्र 108) ।

प्रभाव

मर्मर ध्वनि से नींद आ जाती है और उन व्यक्तियों के लिए यह प्राणायाम लाभप्रद है जो अनिद्रा रोग से पीड़ित होते हैं ।

मूर्च्छा प्राणायाम

मूर्च्छा का अर्थ बेहोशी की अवस्था है । यह प्राणायाम उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि उज्जायी प्राणायाम किया जाता है और अंतरकुंभक क्रिया (आंतरिक धारण) बनी रहती है जब तक कि साधक को बेहोशी महसूस न हो उठे । इससे मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है और ऐंद्रिय शांति मिल जाती है ।

प्लाविनी प्राणायाम

प्लाव का अर्थ तैरना या उतराना है । इस प्राणायाम के बारे में बहुत कम ज्ञान उपलब्ध है । यह कहा जाता है कि इस प्राणायाम की सहायता से साधक बड़ी सरलता से जल पर तैरता है ।

मूर्च्छा और प्लाविनी प्राणायाम अब प्रचलित नहीं हैं ।

भ्रामरी प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक		रेचक	षण्मुखी मुद्रा
	सा	ग	ग म ध्व	
लेटे हुए				
एक क	√		√	
ख	√		√	√
दो क		√	√	
ख		√	√	√
बैठे हुए				
तीन क	√		√	
ख	√		√	√
चार क		√	√	
ख		√	√	√

सा — साधारण
ग — गहन
ग म ध्व — गहन मर्मर ध्वनि

22

आंगुलिक प्राणायाम तथा नासिका पर अंगुलियां रखने की कला

नासिका

1. नासिका शुक आकार का कक्ष है और यह हड्डी तथा उपास्थि से सहारा प्राप्त करती है, इसके बाहर त्वचा होती है और अंदर श्लेष्मा की झिल्लियां होती हैं। नासारंध्र पट से सहारा पाते हैं और उन्हीं से अलग-अलग होते हैं। नासारंध्रों के आंतरिक भाग अनियमित होते हैं और वे कपाल के स्नायु के छोटे-छोटे छिद्रों के साथ जुड़े होते है।

2. नासारंध्रों में प्रवेश करने वाली वायु निस्यंदित हो जाती है और वायु-नली द्वारा फुफ्फुसों में आगे बढ़ जाती है। यह प्रवाह कुछ हलका हो जाता है जब वायु नासिका के अर्ध भाग के चौड़े मार्ग में प्रवेश करती है। कपाल में नासिका कक्ष के किनारे उन तीन चक्करदार और छिद्रिल अस्थियों से घिरे रहते हैं जो शुक्तिकाएं कहलाती हैं। इनकी आकृति पक्षी के पंखों जैसी होती है, वे वायु की लहरों को सर्पिल गति से घेर लेती हैं ताकि जटिल और परिवर्तित प्रतिरूप में एकत्रित श्लेष्मा झिल्लियों को साफ कर सकें। नासिका पर अंगूठे और दो अंगुलियों के दबाव से नासिका मार्ग चौड़ा हो जाता है अथवा कम हो जाता है। इससे इन धाराओं की आकृति, दिशा और प्रवाह को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। इस प्रवाह को चलाने के लिए आवश्यक अधिक ध्यान से आंतरिक चेतना का विकास होता है। यह चेतना सीखने से भी बढ़ जाती है ताकि वायु-प्रवाह द्वारा स्थापित सूक्ष्म परिवर्तनों को सुना जा सके। इस प्रकार प्राणायाम में कान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3. वायु-धाराएं कपाल के आधार पर स्थित झर्झरिका अस्थि द्वारा सुगंध के अवयवों को प्रभावित करती हैं। यह अस्थि घ्राण नाड़ी के तंतुओं के लिए छिद्रित होती है। यह नाड़ी प्रत्यक्ष बोध को भावना में परिवर्तित करने वाले संबंधित मस्तिष्क की अवयव प्रणाली को उत्तेजित करती है।

4. अंतःश्वसन की वायु श्लेष्मा झिल्लियों (श्लेष्मा) के क्षेत्रों के ऊपर प्रवाहित होती है। जब तक यह प्रक्रिया दक्षतापूर्वक न हो तब तक श्वसन में थकावट होती है और वह अनियमित हो जाती है। वे वातावरण के परिवर्तनों द्वारा घनीभूत हो जाते हैं अथवा उनका स्राव तंबाकू, धुंआ, संक्रमण, संवेगीय अवस्थाओं और इसी प्रकार की अन्य बातों जैसे विविध कारकों द्वारा प्रभावित होता है। वायु का प्रभाव समय-समय पर एक नासारंध्र से दूसरे नासारंध्र को परिवर्तित होता है जिसका कारण यह है कि रक्त संचार में परिवर्तन होते हैं और आघात, रोग अथवा सर्दी से ऐसा होता है। इस प्रकार के परिवर्तन नासिका, नासारंध्रों और नासिकामार्गों की आकृति और आकार को बदल देते हैं।

5. उपास्थियों से संलग्न मांसपेशियां उपांग होती हैं जो नासारंध्रों को बढ़ाती या दबाती हैं। होठों और भौहों से संबद्ध चेहरे की मांसपेशियों की प्रणाली के भाग के रूप में वे संवेगीय अवस्थाओं यथा क्रोध, जुगुप्सा या खतरे को व्यक्त करती हैं और आंतरिक व्यक्तित्व को स्पष्ट करती हैं।

6. **शिवस्वरोदय** योग का एक ग्रंथ है। इसके अनुसार पृथ्वी, जल (अप), प्रकाश (तेजस्), वायु और आकाश के पांच आधारभूत तत्त्व नासिका में स्थित होते हैं (चित्र 109)। प्राणायाम में श्वास की इस सशक्त ऊर्जा (प्राण) के प्रवाह से ये तत्त्व संकुचित होते हैं जब वायु उनके स्थानों के ऊपर अथवा उनमें से होकर गुजरती है और साधक के व्यवहार को प्रभावित करती है। ये स्थल अथवा क्षेत्र प्रति कुछ मिनटों या इतने ही समय में बदल जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब वायु की धारा सीधे नासारंध्र के पृथ्वी वाले भाग को स्वच्छ करती है तो यह वायु बाएं नासारंध्र में जल वाले भाग को स्वच्छ करती है। यह प्रतिरूप इस प्रकार है :

दायां नासारंध्र	बायां नासारंध्र
पृथ्वी	जल
जल	अग्नि
अग्नि	वायु
वायु	आकाश
आकाश	पृथ्वी

एक स्थान से दूसरे स्थान का परिवर्तन धीमी गति का होता है। कई वर्षों के अभ्यास के बाद इन पांचों तत्त्वों अथवा ऊर्जाओं के स्थान अथवा क्षेत्रों का पता लगता है और उन्हें पहचाना जाता है और जब तथा जहां प्रत्येक नासारंध्र के संपर्क में वायु आता है। अनुभवी अध्यापक के मार्गदर्शन में ऊपर बताए गए क्षेत्रों का पता लगाने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है। दाहिने हाथ के अंगूठे, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों का नासिका पर सूक्ष्म और संवेदनशील समायोजन दोनों नासारंध्रों में एक ही स्थिति के ऊपर एक साथ श्वास का प्रवाह करेगा जिससे मस्तिष्क की स्पष्टता और मन की स्थिरता पैदा होगी। इस पुस्तक में इस बात की भी व्याख्या की गई है कि ध्यान के लिए सर्वोत्तम और आदर्श समय वह होता है जब श्वास दोनों नासारंध्रों

के केंद्रवर्ती भाग आकाश तत्त्व में से प्रवाहित होता है।

अंगुलि-साधन की कला

7. प्राणायाम के लिए किसी साधक के अपेक्षित प्रशिक्षण की तुलना संगीतकला के गुरु बनने से की जा सकती है। गायों के चराने वाले कृष्ण गोपियों को मोहित करते रहे और उन्होंने अपने वंशीनाद से गोपियों का हृदय जीत लिया। उन्होंने अपनी वंशी के स्वर इस प्रकार निकाले कि वे रहस्यात्मक ध्वनि जगत् के सृजक हो गए। प्राणायाम के अभ्यास में साधक अपने नासारंध्रों को 'स्वर देकर' संवेदनों पर विजय प्राप्त करता है और वह शांत हो जाता है। वह अधिक कोमलता से अपने श्वास के प्रतिरूपों को अंगुलि-साधन से इस प्रकार बना लेता है जैसे कि वह बांसुरी बजा रहा हो।

सुषिर वाद्य यंत्रों में कई छेद होते हैं परंतु नासिका में केवल दो छेद होते हैं। इस-लिए साधक को बांसुरी वादन की अपेक्षा अधिक दक्षता की आवश्यकता है ताकि वह अपनी श्वास की अनंत, सूक्ष्म और कोमल स्वर-लहरियों और लयगतियों पर नियंत्रण कर सके।

एक अच्छा संगीतज्ञ अपने वाद्य यंत्र की संरचना, आकार, विश्राम स्थल और अन्य लक्षणों तथा उन वायुमंडलीय परिवर्तनों का अध्ययन करता है जो उसको प्रभा-वित करते हैं। अपनी अंगुलियों से लगातार अभ्यास करते-करते वह कोमल समा-योजकों के लिए अपनी कला-मर्मज्ञता को प्रशिक्षित करता है और अपने कानों को ऐसा बना लेता है कि वह ध्वनि के न्यूनतम उतार-चढ़ाव को सुन सके। अपनी अंगुलियों की दक्षता का अपने कानों की श्रवण शक्ति के साथ समन्वय करना सीख जाता है। तभी वह संगीत की स्वरलहरियों—स्वर, तारता, अनुनाद और आरोह-अवरोह की पकड़ कर सकता है।

साधक अपने नासारंध्रों के आकार और निर्माण का भी अध्ययन करता है। वह अपनी बाह्य त्वचा की कोमलता, अपनी नासिका के विचित्र लक्षण यथा नथुनों की चौड़ाई, पट का विचलन और इसी प्रकार की अन्य बातों का अध्ययन करता है। इसके साथ ही साथ वह त्वचा की कोमलता को प्रभावित करने वाले वायुमंडलीय परिवर्तनों तथा नथुनों की खुश्की या इसी प्रकार के अन्य लक्षण का भी अध्ययन करता है। वह लगातार अपनी कलाई और अंगुलियों के गति-संचलन का अभ्यास उस समय तक करता है जब तक वह दक्ष न हो जाए और उन्हें अधिक अच्छा बनाने के लिए समर्थ न हो जाए। वह अपने नासारंध्रों के पांच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) के भागों को ढकने के लिए बाह्य नासिका-त्वचा की सतह पर अंगुलियों के अग्रभाग रखकर उन्हें समायोजित करता है। ये पांचों भाग विश्राम स्थल के रूप में कार्य करते हैं। वह श्वास के प्रवाह, लय और प्रतिध्वनि का समायोजन अपनी मुलायम अगुंलि-साधन या श्वास की उस ध्वनि को सावधानीपूर्वक सुनकर कर लेता है जिन्हें वह अनु-कूल बनाता है तथा उन्हें शुद्ध करता है।

परम पावन मंदिर-गर्भ के द्वारपाल भक्तों की पंक्ति को अनुशासित करते हैं। इसी प्रकार अंगुलियां श्वास के आयतन और प्रवाह को नियमित करती हैं और नासिका द्वार का संकुचन करते हुए श्वसन की क्रिया की अवधि में अशुद्धता को बाहर निकाल दिया जाता है।

संकुचित नासिका-मार्गों में से नियंत्रित पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) के कारण फुफ्फुसों को ऑक्सीजन शोषण करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय मिलता है जबकि नियंत्रित रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) से अनुप्रयुक्त ऑक्सीजन शोषित कर ली जाती है और व्यर्थ पदार्थ बाहर निकल जाता है।

साधक अपने आंगुलिक नियंत्रण से नासिका-मार्गों को संकुचित करके अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशीलता और चेतना का विकास कर लेता है। उज्जायी और विलोम प्रणायामों के अभ्यास द्वारा साधक अपने प्राणायाम के ज्ञान को द्विगुणित करता है जबकि उसका शरीर अपने अनुभव से व्यावहारिक ज्ञान अर्जित कर लेता है।

साधक आंगुलिक नियंत्रण द्वारा प्राणायाम के अभ्यास से अपने सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान को एकीकृत करता है। इस एकीकरण से वह अपने ज्ञान की ज्योति जगाता है जब तक कि वह ज्ञान बुद्धिमत्ता की अग्निशिखा बनकर प्रज्जवलित न हो उठे। यह एकीकरण संकल्प और उर्जा से भरपूर होता है जो व्यवसायात्मिका बुद्धि कहलाती है।

8. प्राणायाम को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) जब नासारंध्रों पर आंगुलिक नियंत्रण न हो।

(ख) जब दाहिने हाथ का अंगूठा और दो अंगुलियों की नासिका द्वारा श्वास के प्रवाह को नियमित करने और नियंत्रित करने के उपयोग में लाया जाता है इसी को आंगुलिक नियंत्रित प्राणायाम कहते हैं।

इसके अलावा इस प्राणायाम के दो प्रकार हैं :

(i) नासारंध्रों के दोनों ओर पूरक और रेचक की क्रियाओं का अभ्यास किया जाता है। अंशत: उन्हें बंद करके यह सीखा जाता है कि दोनों नासारंध्रों से समान श्वास प्रवाह के लिए अंगूठे और अंगुलियों पर किस प्रकार दबाव और संतुलन का उपयोग किया जाए (चित्र 110)।

(ii) जब एक नासारंध्र अंगुलि अग्रभागों से बंद कर लिया जाता है तब अंगूठे की ओर से अथवा इसके विपरीत श्वास का प्रवाह बनाए रखा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि श्वास दाहिनी ओर से ली जाए तो मध्यमा और कनिष्ठिका अंगुलियों से पट की स्थिति को बिना बिगाड़े हुए बांया नासारंध्र बंद कर लेना चाहिए (चित्र 111) और इसके विपरीत क्रिया करनी चाहिए (चित्र 112)। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि श्वास बंद नासारंध्र में से होकर प्रवाहित न हो। प्रथम वर्ग (क) में केवल शरीर निहित होता है। द्वितीय वर्ग (ख) अपेक्षाकृत अधिक उन्नत प्राणायाम है जिसमें श्वास का प्रवाह अंगुलियों के दक्षतापूर्ण सूक्ष्म और

कोमल नियंत्रण द्वारा शारीरिक वल से नियमित किया जाता है।

9. प्राचीन भारत में सबसे अधिक पुरानी सभ्यताओं के समान शुभ और धार्मिक अनुष्ठान दाहिने हाथ से ही सम्पन्न किए जाते थे। सभी वाएं हाथ की क्रियाओं और अनुष्ठानों को पाप-कर्म समझा जाता था। इसलिए प्राणायाम में बाएं हाथ का प्रयोग केवल उसी अवस्था में किया जाना चाहिए जव दाहिना हाथ या भुजा से कोई क्रिया न हो सके (चित्र 113)।

10. **घेरंडसंहिता** नामक योग की पुस्तक में नासिका पर दाहिने हाथ के अंगूठे, मध्यमा और कनिष्ठिका के उपयोग की सिफारिश की गई है परंतु उनके सही स्थान के बारे में व्याख्या नहीं की गई है (चित्र 114)। इस बात पर जोर दिया गया है कि तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। यदि तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों का प्रयोग किया जाता है तो अग्रभुजा और कलाई झुक जाएगी तथा भारी हो जाएगी (चित्र 115)। इसके अलावा शुद्ध और सही दबाव नासारंध्रों पर लागू नहीं हो सकेगा क्योंकि नासिका अंगुलियों को नीचे धकेल देगी और प्राणायाम की क्रिया की शुद्धता समाप्त हो जाएगी। इसी प्रकार मांथे के मध्य भाग पर तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों के रखने (चित्र 116) अथवा बाहर की ओर फैलाने (चित्र 117) से अंगूठे, मध्यमा और कनिष्ठिका पर अलग-अलग दवाव पड़ेगा जो आंगुलिक प्राणायाम के झुकाव को असमान बना देगा और श्वास के प्रवाह को अनियमित कर देगा।

11. यदि हथेली के खोखले भाग में तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को मोड़ लिया जाता है तो अंगूठा नासिका के दाहिनी ओर विश्राम करता है (चित्र 118) और मध्यमा तथा कनिष्ठिका बाईं ओर विश्राम पाती हैं (चित्र 119) जबकि कलाई केंद्रीय भाग में स्थित होती है (चित्र 120)। इससे अंगूठे, तर्जनी और कनिष्ठिका को दोनों ओर सरलता और स्वतंत्रता से हिलने का अवसर मिलता है और हथेली भी समान रूप से संतुलित हो जाती है।

दाहिनी अग्रभुजा के मध्य भाग की नाड़ियां और मांसपेशियां। नासारंध्रों में से श्वास के आंगुलिक नियंत्रण के लिए जटिल स्थान वनाती हैं। यहां से दाहिनी अग्रभुजा का मध्य भाग, कलाई और अंगुलियों के संचलन नियमित होते हैं।

12. जव आंगुलिक या हस्त्य प्राणायाम के अभ्यास के लिए बैठा जाता है तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कंधे फर्श के समानांतर हों और एक ही धरातल पर रहें तथा चिबुक को हंसलियों के बीच गड्ढे में आराम करना चाहिए (चित्र 57)।

13. बाएं घुटने पर बाएं हाथ को आराम देते हुए दाहिनी भुजा को कोहनी पर मोड़ें। जिससे द्विशिर पेशी, अग्रभुजा अथवा कलाई कड़ी न हो जाए (चित्र 121-122)। स्थिरता, क्षमता और संवेदकता की आवश्यकता नासा मार्गों की चौड़ाई नियंत्रित करने के लिए होती है लेकिन सशक्त बनाने अथवा तनाव पैदा करने के लिए नहीं।

14. स्थिर दाहिने हाथ को सीना न छूने दें (चित्र 123)। बगलों को बंद न

करें। भुजाओं से सीना न दबाएं। कंधों को झुकाएं और भुजाओं को निष्क्रिय तथा हल्का करें परंतु अंगूठे, मध्यमा और तर्जनी के अग्रभागों को ऐसा न होने दें।

15. हथेली के खाली स्थान में तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों के अग्रभागों को मोड़ें और उन्हें लचीला बनाएँ (चित्र 124)। इससे अंगूठे के अग्रभाग के विपरीत मध्यमा और तर्जनी अंगुलियों के अग्रभाग का उपयुक्त समायोजन हो जाता है और इससे अंगुलियों और अंगूठे के बीच खाली स्थान पैदा हो जाता है। इससे हथेली मुलायम हो जाती है।

16. मध्यमा और तर्जनी की अलग-अलग चौड़ाई अंगूठे की चौड़ाई से कहीं कम होती है। इनमें समान स्थान बनाने के लिए अंगुलियों को मोड़ें ताकि वे अंगूठे से मिल सकें। उनके अग्रभागों को जोड़ें ताकि पोरों के बीच स्थान रहे (चित्र 125)। यदि यह कठिन हो तो एक गोल वस्तु रखें यथा कार्क जो लगभग आधा इंच चौड़ी हो और इसे पोरों के बीच में रखें (चित्र 126)। तत्पश्चात् अंगुलियां अपनी नई स्थिति के प्रति अभ्यस्त हो जाएंगी। अंगूठे का मध्य भाग दोनों अंगुलियों के मिले हुए अग्रभागों के सामने होना चाहिए (चित्र 127)। साधारणतया अंगूठे के अग्रभाग की त्वचा दोनों अंगुलियों की त्वचा की अपेक्षा अधिक कठोर और मोटी होती है। अंगूठे के अग्रभाग को मध्यमा और तर्जनी के अग्रभाग के विपरीत दबाएं ताकि वह मुलायम हो जाए।

17. दाहिनी कलाई को ऊंचा उठाएं जब तक कि अंगूठा, मध्यमा और कनिष्ठिका के अग्रभाग नासिका के सामने न हो जाएं। कलाई के अग्रभाग को चिबुक से अलग रखें और अंगूठे, मध्यमा और कनिष्ठिका के अग्रभाग को नासारंध्रों के सामने समतल रखें (चित्र 128)।

18. नासिका हड्डी और उपास्थि के बीच छोटी उल्टी वी (V) आकार के खांचे होते हैं। नासिका के वी(V) आकार खांचों के नीचे त्वचा नतोदर होती है। अंगूठे और अंगुलिओं के अग्रभागों के आकार उन्नतोदर होते हैं। इसलिए अंगूठे और अंगुलियों को समान रूप से विश्राम की स्थिति में रखें जैसा कि चित्र 129 में दिखाया गया है। नासिका के मार्गों की दीवारों को पट के समानांतर रखें और प्राणायाम के अभ्यास करने के दौरान अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभागों को सिरे और नीचे के कोनों से दबाव डालने के लिए उपयोग करें। कभी भी नासारंध्रों पर अंगुलियों को इस प्रकार न रखें जैसा कि चित्र 130 में दिखाया गया है बल्कि अंगुलियों के अग्रभागों को नासिका की जड़ पर नासारध्रों की ओर धीरे-धीरे घुमाएं ताकि श्वास का प्रवाह महसूस हो सके (चित्र 131-132)। दोनों नासारंध्रों के मार्ग को अंशतः बंद करें ताकि उनमें श्वास का समान प्रवाह मापा जा सके (देखें चित्र 110)। यदि अंगुलियां स्थिर न हों तो श्वास का प्रवाह असमान हो जाता है और इससे नाड़ी तंत्र में थकान तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं में भारीपन उत्पन्न हो जाता है। अंगुलियों के अग्रभागों का सूक्ष्म रूप से समायोजन इसलिए आवश्यक है कि वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुरूप क्षण प्रतिक्षण नासिका मार्गों को चौड़ा अथवा संकुचित किया जाए। आंगुलिक

नियंत्रण से नासिका मार्गों का चौड़ा करना या कम करना ठीक उसी प्रकार का है जैसे किसी रंगीन फिल्म के सही उद्‌भासन के लिए कैमरा-लेंस की परितारिका के छिद्र को सूक्ष्म रूप से समायोजित किया जाता है। यदि छिद्र का समायोजन ठीक नहीं है तो रंगों का सही अंकन ठीक नहीं होगा। इसी प्रकार यदि नासिका मार्गों के छिद्रों को सूक्ष्मता से कार्य व्यवहार में नहीं लाया जाता है तो प्राणायाम के परिणाम खंडित हो जाएंगे। नासिका मार्गों का सही समायोजन बाह्य नासारंध्रों के मापने योग्य क्षेत्र से लेकर न मापी जाने वाली आंतरिक गहराई तक श्वास का प्रवाह नियंत्रित करेगा।

आंगुलिक रूप से नियंत्रित प्राणायाम में दाहिने हाथ का अंगूठा और सामने की अंगुलियों को परकार के समान कार्य-व्यवहार में लाया जाता हैं (चित्र 127)। दाहिने नासारंध्र पर अंगूठे के अग्रभाग और बाएं नासारंध्र पर मध्यमा और कनिष्ठिका के अग्रभागों का नियंत्रण किया जाता है। इन तीनों अंगुलियों का उपयोग प्राणायाम के अभ्यास के लिए सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने हेतु किया जाता है।

20. साधारणतया नासिका की त्वचा अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभागों की अपेक्षा अधिक मुलायम होती है। जब अंगुलियां नासिका पर रखी जाती हैं तो अग्रभाग और अधिक कठोर हो जाते हैं। इस तनाव को कम करने लिए बाएं हाथ की सहायता से अंगुलिओं के पोरों से दाहिने हाथ की अंगुलियों की त्वचा पीछे हटाएं (चित्र 133 और 134)। यह देखें कि नासारंध्रों और अंगुलिओं के अग्रभागों की त्वचा समान रूप से मुलायम होती है। इससे झिल्लियां निष्क्रिय और ग्राह्य बन जाती हैं। इसके पश्चात् श्वास का अंतः और बाह्य प्रवाह सरलता और कोमलता से होता है तथा झिल्लियों के ऊपर इसका प्रवाह अच्छा होता है। झिल्लियों में इस प्रकार की ग्राह्यता से अंगूठे और अंगुलियों को श्वास के प्रवाह को सीखने, महसूस करने, चैक करने, नियंत्रण करने और बढ़ाने के साथ-साथ अवधि के बारे में भी सहायता मिलती है। झिल्लियों पर श्वास के सरल और कोमल प्रवाह के लिए अंगुलियों को कोमलता से नासिका-त्वचा पर समायोजित करें।

21. यदि अंगुलियों के अग्रभागों की त्वचा अपेक्षाकृत अधिक मुलायम और संवेदनशील हो तो अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध रूप से श्वास नियंत्रित की जा सकती है। प्रत्येक नासारंध्र के द्वार को हलके संवेदनात्मक दबाव से चौड़ा या कम किया जा सकता है ताकि श्वास का प्रभाव और उससे संबद्ध ऊर्जा के सूक्ष्म रूपों को नियमित किया जा सके।

22. नासिका की न तो चिकोटी लें अथवा न उसे उत्तेजित ही करें (चित्र 135), और न पट की स्थिति को हिलाएं ही (चित्र 136) इससे नासिका के दोनों ओर की श्वास का प्रभाव भंग होता है बल्कि चिबुक भी मजबूत भाग की ओर झुक जाती है। अंगुलियों या अंगूठे को धक्का न दें। उन्हें नासिका द्वारों के चौड़ा करने या कम करने के लिए सूक्ष्म समायोजनों हेतु सूक्ष्म और इसके साथ ही साथ गतिशील होना चाहिए।

23. जब कभी झिल्लियों में सूखापन अथवा उत्तेजना महसूस की जाती हो तो उस

संपर्क को खोए बिना ही उन पर अंगुली के दबाव को हलका कर देना चाहिए जिससे कि रक्त का प्रवाह होता है इससे नासिका और अंगुली के अग्रभागों को ताजगी, स्वच्छता और संवेदनशीलता प्राप्त होती है। कभी-कभी यदि यह चिपकने वाली हो तो साधक को अपने बाएं हाथ से नासिका की बाह्य त्वचा को नीचे कर लेना चाहिए (चित्र 137-138)।

24. यह देखें कि चिबुक दाहिनी ओर को गतिशील नहीं होती जैसे ही आप अपने हाथ को अपने नासारंध्रों के ऊपर लाते हैं।

25. जो साधक अपने दाहिने हाथ को काम में लाते हैं वे अपनी चिबुक और सिर को दाहिनी ओर झुका लेते हैं जबकि अंगुली दबावों को बाईं ओर से दाहिनी ओर को बदलते रहते हैं। जो साधक अपने बाएं हाथ को काम में लाते हैं वे बाईं ओर को झुक सकते हैं। उरोस्थि के मध्य भाग की समरेखा में चिबुक के मध्य भाग को रखना सीखें।

26. पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) के समय नासिका झिल्लियों में से वायु का प्रवाह उर्ध्वगामी होता है और रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) में अधोगामी होता है। अचेतना में आंगुलिक प्राणायाम श्वास का अनुसरण करते हैं। श्वास की धारा के विपरीत अंगुलियों का समायोजन करें और उन्हें चलाएं।

27. प्राणायाम में पट के किनारों के मध्यभाग पर श्वास नासिका में प्रवेश करती है और बिना किसी प्रयत्न के उस पर ऊपर-नीचे होती है और इसके बाद वह श्वास फुफ्फुसों में संचलित होती है। यह होठों के समीप नासारंध्रों के बाह्य किनारों द्वारा छोड़ी जाती है। अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभाग को अलग-अलग तरीके से पूरक (अंतःश्वसन) और रेचक (बाह्य श्वसन) के लिए प्रयोग में लाएं।

28. अग्रभागों को तीन भागों यथा बाह्य, मध्य और आंतरिक में विभाजित करें (चित्र 139)। पूरक क्रिया के समय आंतरिक अंगुलि का अग्रभाग आने वाली वायु को नियंत्रित करता है। मध्यमा अंगुलि इसको स्थिर करती है और कंपन से बचाती है और बाह्य अंगुलि श्वसनी में इसको प्रवाहित करती है।

29. पूरक क्रिया में आंगुलिक सिरे का अग्रभाग नासिका के मूल में द्वार को कम करने के लिए हल्का-सा दबाया जाता है। यहां आवश्यक आंगुलिक संचलन की तुलना किसी जलाशय से आसपास के खेतों में जल के प्रभाव से की जा सकती है। वायु, जलाशय के रूप में कार्य करती है और अंगुलियों के अग्रभाग जलद्वार के रूप में कार्य करते हैं। इन जल द्वारों से सिंचाई की नहरों में जल प्रवेश करता है और यह सिंचाई की नहरें श्वसनी के समान होती हैं। जलद्वारों से प्रवाह पर नियंत्रण किया जाता है। यह जलद्वार धारा के बल को रोक लेते हैं और नहर में जल के स्तर को स्थिर करते हैं। इन नहरों से सिंचाई की जलधाराएं फूटती हैं और इनके द्वारा खेतों की फसलों तक पानी पहुंचाया जाता है। श्वसनी भी अनेक शवसनियों में विभाजित हो जाती है ताकि अंतःश्वसित वायुकोष सुदूर कोनों तक जा सकें।

30. रेचक क्रिया में अंगुलि के भीतरी अग्रभागों को नियंत्रण के लिए मध्यमा

अंगुलि के बल को रोकने और स्थिर करने के लिए और कनिष्ठिका को श्वास के प्रवाह के लिए प्रयोग में लाते हैं। रेचक क्रिया में यदि अंगुलियों के भीतरी भागों को उसी प्रकार उपयोग में लाया जाए जैसा कि पूरक क्रिया में लाते हैं तो अवरुद्ध संवेदना होगी। अंगुलियों के अग्रभागों के दबाव को कम करें और मध्यमा अंगुलि को मोड़ें तथा स्थिर करें इससे श्वास का प्रवाह सरल हो जाएगा। रेचक क्रिया की समानता सरिता से सागर तक के प्रवाह से की जा सकती है। वायु कोष से श्वास का प्रवाह उसी प्रकार का है जैसे पर्वतीय धाराओं के जल का प्रवाह छोटी-छोटी धाराओं में परिवर्तित हो जाता है। इन छोटी-छोटी धाराओं के समान ही श्वसनिकाएं होती हैं। छोटी-छोटी जलधाराएं अपनी सहायक धाराओं से मिलती जाती हैं और अंततोगत्वा एक महान् नदी डेल्टा में से प्रवाहित होकर समुद्र में विलीन हो जाती है। श्वसनिकाओं में वायु का प्रवाह श्वसनिका में होता है और वहां से नासिका के रिक्त स्थान में आ जाता है। यह नासिका का रिक्त स्थान डेल्टा के समान है। वायु का प्रवाह वायु मंडल के समुद्र में मिल जाता है।

31. यदि श्वास की ध्वनि असमान है अथवा यदि श्वसन क्रिया तीव्र है तो इस का कारण यह है कि नासिका के द्वार चौड़े होते हैं। यह प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक सरल हो जाएगा। यदि यह द्वार छोटा हो जाता है और यदि यह प्रवाह शुद्ध और समान है तो कोमल न्यूनाधिकता अंगुलि के अग्रभागों द्वारा महसूस की जायेगी। श्वास की प्रतिध्वनि को सुनें और उसे कोमल बनाएं। यदि ध्वनि अपने जैसे स्वरूप में नहीं होती बल्कि कठोर होती है तो यह स्थिति इस बात का संकेत देती है कि अंगुलि के अग्रभाग, नासारंध्रों पर लंबे रूप में हैं। (देखें चित्र 130)। उन्हें तत्काल ही समायोजित करें ताकि वे नासारंध्रों के समतल रहें।

32. अंगुलि के अग्रभागों और नासिका की झिल्लियों के बीच में पूरी समझ के साथ कार्य करें। वायु के प्रवाह का पता लगाने के लिए स्पर्श, संतुलन और संतुलित दबाव ही केवल आगुंलिक प्राणायाम की पूर्णता की ओर उन्मुख करेंगे।

33. जैसे हम किसी फूल की कोमल सुगंधि को सरलता से सूंघते हैं, इसी प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करें मानो आप वायु से सुगंध ले रहे हों।

34. यदि रेचक क्रिया की अपेक्षा पूरक क्रिया की अवधि अधिक है तो इससे यह विदित होता है कि नासिका द्वार रेचक क्रियां की अपेक्षा पूरक क्रिया के दौरान अपेक्षाकृत अधिक अवरुद्ध रहे हैं। रेचक और पूरक के समय को बढ़ाने और समायोजित करने के लिए पूरक क्रिया की अवधि में आगुंलिक दबाव धीमे से कम करें लेकिन इन्हें रेचक और इसके विपरीत बढ़ाएं। इन दोनों में ही कुछ समय के बाद समानता प्राप्त करने के बाद नासिका द्वारों को संकुचित करें ताकि श्वास-प्रश्वास क्रिया गहन और अधिक अवधि की हो तथा इसके साथ-ही-साथ वह सरल और सूक्ष्म भी रहे। अधिक या नगण्य आंगुलिक दबाव अंगुलि के अग्रभागों को संवेदना रहित बना देता है। शुद्ध संवेदनशीलता प्रशिक्षण और अनुभव से ही प्राप्त की जा सकती है।

35. जब पहली बार पूरक क्रिया की जाए तो उसकी कोमलता और समयावधि

का मापन करें और इस बात का प्रयास कर कि यह स्थिति उस समय भी बनी रहे जब आप वायु को बाहर निकालते हैं । यही बात उस समय भी लागू होती है जब आप इस अवधि को बढ़ाते हैं क्योंकि लय और संतुलन ही योग के रहस्य हैं ।

36. हम अचेतन रूप से श्वास-प्रश्वास में प्रार्थना करते हैं 'सोऽहम्': 'वह (सः) अनश्वर आत्मा मैं (अहं) हूं ।' पूरक क्रिया 'सः' की ध्वनि के साथ और रेचक क्रिया 'अहं' की ध्वनि के साथ प्रवाहित होती है । यह अचेतन रूप से किया गया जप अर्थ और भावना को महसूस किये बिना ही किया जाता है । जब प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है तब यह जप अर्थ और भावना के साथ सुनाई पड़ता है और यह अनुभव नाद, अनुसंधान (नाद=ध्वनि, अनुसंधान=खोज) हो जाता है और इस क्रिया के द्वारा साधक अपनी श्वास की ध्वनि में तल्लीन हो जाता है । इससे साधक अपने जीवन के अमृत को पूरक की क्रिया में प्राप्त करता है और वह परमात्मा के आशीर्वाद को प्राप्त करता है और रेचक क्रिया द्वारा वह परमात्मा के प्रति समर्पित हो जाता है ।

37. कनपटियों के चारों ओर नेत्रों, जबड़ों, चिबुकों और त्वचा को कोमल रखें और उन्हें विश्राम दें । जब आप श्वास ले रहे हों तब भौहों को ऊपर न उठाएं ।

38. सशक्त पूरक क्रिया ओर रेचक क्रिया से 'अहं' उत्पन्न होता है । यदि यह प्रवाह कोमल हो और साधक को बिलकुल सुनाई नहीं दे तो उसमें नम्रता कूट-कूटकर भर जाती है । यही स्थिति आत्म साधना का प्रारंभ होती है ।

39. यदि आपकी नासिका की हड्डी टूट गई है अथवा पट सीधा नहीं है तो अंगुलियों को कुछ अलग तरीके से समायोजित करें । हड्डी के समीप ही नासिका द्वार के खुले भाग का पता लगाएं और खुले भाग के ठीक ऊपर की त्वचा पर अंगुलियों के अग्र-भागों को रखें । यदि यह झुकाव अथवा मोड़ दाहिनी ओर है तो अंगूठे के मध्य भाग को हटा देना चाहिए (चित्र 141) और यदि यह बाईं ओर हो तो अनामिका के अग्र-भाग को संचलित करें (चित्र 141) ।

40. नासिका के अग्रभाग पर मांसल झुकावदार भाग प्रारंभिक पक्षक कहलाते हैं जो नासारंध्रों को उभारते और फैलाते हैं । यदा-कदा वहां की त्वचा बहुत ही कोमल होती है । इसका परिणाम यह होता है कि नासारंध्र तनिक दबाव से अवरुद्ध हो जाते हैं । यदि आप महसूस करें कि बाएं नासारंध्र में ऐसा हो रहा है तो इसमें तर्जनी अंगुलि डालकर फैलाएं (चित्र 142) परंतु यदि दाहिने नासारंध्र में ऐसा हो तो नासिका के मूल से ऊपर की ओर अंगूठे के अंदर का अग्रभाग चलाएं । (चित्र 140)

41. यदि नासिका की त्वचा बहुत ही सूखी महसूस हो तो उसे अंगुलियों के अग्र-भाग से उठाएं और पट की तरफ उसे धीरे से बढ़ाएं जैसे ही आप श्वास लें । यदि नासारंध्र सूखने लगें तो नासारंध्रों के दबाव को शिथिल करें । यदि अंगुलियों के अग्रभाग श्वास के प्रवाह के प्रति प्रतिक्रिया न करें तो उस दिन अभ्यास बंद कर दें ।

42. प्रारंभ में ही श्वास के परिमाण और क्षमता का मापन करें । जब श्वास का आयतन अथवा दीर्घता अलग-अलग लगे अथवा जब बाह्य नासारंध्र कठोर और रूक्ष

हो जाएं तब उस दिन अभ्यास रोक द ।

.43. जब सिर में दर्द हो अथवा आप दुःखी, चिंतित अथवा बेचैन हों अथवा नासिका अवरुद्ध हो या बह न रही हो अथवा जब आप ताप से पीड़ित हों या ताप से अभी-अभी उठे हों—ऐसी किसी भी अवस्था में आंगुलिक प्राणायाम का अभ्यास कभी न करें । इन घड़ियों में शवासन (चित्र 182) का अभ्यास करें और साधारण रूप से श्वास लें तथा शनैः-शनैः और गहन रूप से श्वास को बाहर निकालें ।

23

भस्त्रिका और कपालभाति प्राणायाम

भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ धौंकनी है: इसमें वायु जबरदस्ती अंदर और बाहर की जाती है मानो धौंकनी का प्रयोग किया जा रहा हो। अन्य प्रकारों के प्राणायाम में पूरक क्रिया रेचक क्रिया के लिए प्रगति प्रारूप और लय स्थापित करती है परंतु भस्त्रिका प्राणायाम में रेचक क्रिया बल और गति स्थापित करती है। यहां दोनों ही बाह्य और अंतः श्वास बलशाली और सशक्त होते हैं। इसमें इस प्रकार की ध्वनि आती है जैसे किसी लोहार की धौंकनी की ध्वनि हो।

अवस्था एक

नासारंध्र बराबर खुले रखे जाते हैं।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से लेकर 7 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. अल्पावधि के लिए सशक्त श्वास लें और तीव्र सशक्त धमाके के साथ श्वास को बाहर निकालें। इसे फिर दोहराएं और आपको यह लगेगा कि दूसरी बार श्वास का लेना तीव्रतर और अधिक सशक्त है जबकि पहली बार ऐसा नहीं था। इसका कारण यह है कि इससे पूर्व बाह्य श्वास की प्रकृति अधिक शक्तिशाली रही थी।

3. यदि पूरक क्रिया और रेचक क्रिया एक साथ ही की जाए तो भस्त्रिका का एक चक्र पूरा होता है।

4. एक साथ चार से आठ तक प्रक्रियाओं में से एक चक्र पूरा होता है और इसकी समाप्ति बाह्य श्वास से होती है।

5. अब कुछ धीमे और गहरे श्वास लें जैसा कि उज्जायी प्राणायाम में किया जाता है अथवा यदि आप चाहें तो पांच से आठ सैकिंड के लिए मूलबंध के साथ श्वास रोक सकते हैं (चित्र 101)। इसके बाद श्वास को धीरे और गहनता से बाहर निकालें जैसा कि उज्जायी प्राणायाम में किया जाता है। इससे फुफ्फुसों और डायाफ्राम को आराम मिलता है और यह भस्त्रिका के नए झोंकों के लिए उन्हें तैयार करता है।

6. भस्त्रिका के झोंके के चक्रों को दोहराएं और उनके बीच-बीच में उज्जायी प्राणायाम। करें यह क्रिया कुंभक के साथ या उसके बिना तीन या चार बार करें। तत्पश्चात् गहरी श्वास लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

7. जैसे-जैसे सहनशक्ति में सुधार होता है वैसे-वैसे प्रत्येक चक्र के झोकों की संख्या और चक्रों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। फिर भी, यदि श्वास का स्वरूप शीघ्र ही बदल जाता है तो यह प्राणायाम शीघ्र ही बंद कर दें।

अवस्था दो

दोनों नासारंध्रों को प्राणायाम की अवधि में अंशतः बंद रखा जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीक का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय बाईस में पैरा 12 से 22 तक में वर्णित ढंग से नासारंध्रों तक दाहिना हाथ लाएं।

3. अंगूठा, अनामिका और तर्जनी अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नासारंध्रों को अंशतः बंद कर दें। यह सुनिश्चित करें कि प्रत्येक नासारंध्र के दोनों ओर समान स्थिति है (चित्र 111)।

4. ऊपर बताई अवस्था एक के पैरा 2 से लेकर 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए भस्त्रिका के झोंकों का अभ्यास करें।

5. पांच या छह बार इसे दोहराएं। कुछ गहरी श्वास लें और उसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था तीन

इसमें वैकल्पिक नासारंध्रों की सहायता से भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है और बीच-बीच में उज्जायी श्वासों का उपयोग किया जाता है। उच्च प्रशिक्षण प्राप्त विद्यार्थियों को बिना किसी छितराव के यह आसन करना चाहिए।

तकनीक

उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण

करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो, उसे बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय बाईस के पैरा 12 से 22 तक में वर्णित ढंग से नासारंध्रों तक दाहिना हाथ लाएं।

3. आंगुलिक नियंत्रण की सहायता से बाएं नासारंध्र को बिलकुल ही बंद कर दें और दाहिने नासारंध्र को आंशिक रूप से बंद करें (चित्र 111)।

4. दाहिने नासारंध्र से पूरक क्रिया और रेचक क्रिया सशक्त ढंग से करें और एक ही दम में चार से आठ झोंकों को पूरा करें तथा यह सुनिश्चित करें कि प्रत्येक झोंके में दबाव समान रहता है। यह देखें कि कोई भी वायु बाएं नासारंध्र से निकल नहीं पाती और बाह्य श्वास के झोंके में उसका अंत होता है।

5. अब दाहिने नासारंध्र को बंद कर दें, बाएं नासारंध्र को आंशिक रूप से खोलें (चित्र 112) और उसमें से शक्ति से श्वास लें ताकि उतने ही झोंकें हों जैसा कि दाहिनी ओर हुआ है और प्रत्येक झोंके का समान दवाव रखना चाहिए। यह देखें कि दाहिने नासारंध्र से श्वास बाहर नहीं निकलती है। बाह्य श्वास के साथ झोंकें को समाप्त करें।

6. ये दोनों मिलकर अवस्था तीन के एक चक्र को पूरा करते हैं।

7. तीन से चार बार इन्हें दोहराएं, कतिपय गहरी श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

8. यदि आप एक बार में कई चक्र नहीं कर सकते तो प्रति चक्र के बाद ठीक उसी प्रकार से कुछ श्वास लें जैसे कि उज्जायी प्राणायाम में श्वास ली जाती है ताकि फुफ्फुसों को आराम मिल सके।

अवस्था चार

अवस्था तीन में बताए गए भस्त्रिका झोंकों का एक चक्र दाहिने नासारंध्र द्वारा किया जाता है। इस अवस्था में अंदर और बाहर के झोंके वैकल्पिक नासारंध्रों द्वारा किए जाते हैं; अर्थात्, यदि दाहिने नासारंध्र से श्वास अंदर ली जाती है तो बांए नासारंध्र से श्वास निकाली जाती है और इसी चक्र को पलट लिया जाता है। चार या पांच झोंके एक आधे चक्र में पूरे कर लिए जाते हैं। एक अन्य चक्र बाएं नासारंध्र से श्वास लेकर प्रारंभ किया जाता है और दाहिने नासारंध्र से श्वास निकालकर दूसरा चक्र पूरा किया जाता है तथा इसमें समान संख्या के झोंके होते हैं। इन दोनों क्रियाओं से अवस्था चार में दिए गए एक चक्र की पूर्ति होती है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी वायु हो, उसे बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय बाईस में पैरा 12 से 22 तक में वर्णित नासारंध्रों तक दाहिने हाथ को लाएं।

3. बांए नासारंध्र को बंद करें। दाहिने नासारंध्र को आधा खोलें (चित्र 111) और इसमें से तीव्र गति के साथ पूरक क्रिया करें। दाहिने नासारंध्र को शीघ्र ही बंद कर दें। बांए नासारंध्र को आधा खोलें और इसमें से शीघ्रता तथा सशक्तता से वायु को बाहर निकालें (चित्र 112)। शीघ्र आवर्तन में चार या पांच झोंकों का अभ्यास करें। इससे आधे चक्र की पूर्ति होती है।

4. अब दूसरे आधे चक्र का अभ्यास करें जैसा कि ऊपर बताया गया है और उसी प्रक्रिया को दोहराएं। बाएं नासारंध्र से अंदर श्वास लें और दाहिने नासारंध्र से श्वास बाहर निकालें। इससे दूसरा आधा चक्र पूरा होता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है बराबर संख्या के झोंकों को पूरा करें। अभ्यास करते समय लय, गति और आयतन को समान बनाए रखें।

6. इस प्रकार के चक्र तीन से चार बार तक पूरे करें। उज्जायी प्राणायाम जैसी कुछ श्वासें लें ताकि फुफ्फुसों को आराम मिले और इसके बाद शवासन में आराम करें (चित्र 182)।

कपालभाति प्राणायाम

कुछ विद्वान् कपालभाति को एक प्राणायाम मानते हैं जबकि अन्य विद्वान् इसको एक क्रिया कहते हैं (कपाल का अर्थ खोपड़ी है और भाति का अर्थ प्रकाश या चमक है)। यह प्राणायाम भस्त्रिका प्राणायाम के समान ही होता है परंतु उसकी अपेक्षा अधिक कोमल होता है। इस प्राणायाम में पूरक क्रिया धीमी गति की होती है और रेचक क्रिया सशक्त गति की होती है परंतु प्रत्येक बाह्य श्वास के बाद वायु ग्रहण में कुछ अवरोध होता है। भस्त्रिका प्राणायाम के स्थान पर कपालभाति प्राणायाम करें यदि भस्त्रिका प्राणायाम से अधिक थकान होती हो।

कपालभाति को भस्त्रिका के समान ही अलग-अलग अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है और तदनुसार उनका अभ्यास किया जा सकता है।

भस्त्रिका और कपालभाति के प्रभाव

इन दोनों प्राणायामों से यकृत, प्लीहा, पाचन ग्रंथि और उदर की मांसपेशियों की क्रिया और शक्ति बढ़ जाती है। इन दोनों से स्नायुओं का उत्सारण हो जाता है और नाक बहनी बंद हो जाती है। इनसे आनंद की भावना का भी सृजन होता है।

ध्यान देने योग्य संकेत और चेतावनियां

1. भस्त्रिका प्राणायाम से समस्त शरीर को सक्रिय बनाने के लिए ऊर्जा उत्पन्न

होती है। जिस प्रकार अधिक ईंधन देने से इंजन का वायलर जल जाता है उसी प्रकार भस्त्रिका प्राणायाम के अधिक अभ्यास से भी फुफ्फुसों के लिए खतरे पैदा हो जाते हैं और यह प्रणाली नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है क्योंकि श्वसन क्रिया अधिक सशक्त होती है।

2. जैसे ही ध्वनि लोप हो जाए वैसे ही यह प्राणायाम वंद कर दें और दोबारा प्रारंभ करें अथवा झोकों या चक्रों की संख्या को कम कर दें अथवा उस दिन यह प्राणायाम रोक दें।

3. जिस क्षण भी उलझन या थकान महसूस होने लगे, उसी समय इस प्राणायाम का अभ्यास रोक दें।

4. यदि वाह्य श्वास की ध्वनि सही न हो अथवा झोंकों के आने में असफलता हो तो अभ्यास न करें। किसी भी दवाव से चोट आ जाएगी अथवा नासिका से रक्त वह निकलेगा।

5. जिन व्यक्तियों के फुफ्फुस कमजोर होते हैं और जो शरीर से दुर्बल होते हैं उन्हें भस्त्रिका या कपालभाति प्राणायाम करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि वे ऐसा करने पर अपने रक्त की कोशिकाओं अथवा मस्तिष्क को हानि पहुंचाएंगे।

6. इन प्राणायामों को आगे दिये गये व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए :

(क) महिलाएं, क्योंकि सशक्त झोकों से उदरीय अवयवों और गर्भाशय में भ्रंश हो जाएंगे जवकि वक्ष में झोल पड़ जाएंगे।

(ख) वे व्यक्ति जो कान अथवा आंख के रोगों से पीड़ित हों (यथा कान में पीप आना, दृष्टि पटल नियोजन अथवा ग्लोकोमा)।

(ग) ऐसे व्यक्ति जो उच्च अथवा निम्न रक्त दवाव से पीड़ित हों।

(घ) ऐसे व्यक्ति जो नासिका से रक्त बहने अथवा कानों की सनसनाहट अथवा दर्द से पीड़ित हों। यदि ऐसी स्थिति आ जाए तो शीघ्र ही इन प्राणायामों को कुछ दिनों के लिए रोक कर फिर अभ्यास प्रारंभ कर देना चाहिए। फिर भी यदि इनमें से कोई भी चिन्ह उभर उठें तो समझ लें कि ये अभ्यास आपके अनुकूल नहीं हैं।

7. कई लोगों की भ्रांति है कि भस्त्रिका प्राणायाम से कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है। कई प्रामाणिक ग्रंथों में अनेक प्राणायामों और आसनों के बारे में ऐसा ही कहा गया है लेकिन यह तथ्य सत्यता से कहीं अलग है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भस्त्रिका और कपालभाति दोनों ही प्राणायामों से मस्तिष्क में ताजगी आती है और वह सक्रिय हो उठता है परंतु यदि लोग इन प्राणायामों को यह सोचकर करें कि उनका यह विश्वास है कि इनसे कुंडलिनी जागृत होती है तो ऐसा करने से शरीर, स्नायु और मतिस्ष्क को भारी आघात लगेगा।

भस्त्रिका प्राणायाम की तालिका

अवस्था एक	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू	रे	पू	रे	या	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू	अ कुं	रे
(खु ना)	भ	भ	भ	भ	उ	उ	उ	उ		भ	भ	भ	भ	उ	मू वं	उ
अवस्था दो	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू	रे	पू	रे	या	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू	अ कुं	रे
(दो ना अं बं)	भ	भ	भ	भ	उ	उ	उ	उ		भ	भ	भ	भ	भ	मू वं	उ
अवस्था तीन	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रें	पू रे	पू रे	या	पू	अ कुं	रे
(दा ना अं वं)	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	उ	उ	उ	उ		उ	मू वं	उ
(वा ना अं वं)	दा दा	दा दा	दा दा	दा दा	वा वा	वा वा	वा वा	वा वा								
अवस्था चार	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू रे	पू	रे	पू	रे		पू	अ कुं	रे
(दा ना अं वं)	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	उ	उ	उ	उ	या	उ	मू वं	उ
(वा ना अं वं)	दा वा	दा वा	दा बा	दा वा	वा दा	वा दा	वा दा	वा दा								

अं कुं — अंतर कुंभक

भ — भस्त्रिका

दो ना अं वं — दोनों नासारंध्र अंशतः वंद

बा ना अं वं — बायां नासारंध्र अंशतः बंद

मू वं — मूल बंध

खु ना — खुले नासारंध्र

पू रे — पूरक, रेचक

दा ना अं बं — दायां नासारंध्र अंशतः बंद

दा — दायां

बा — बायां

उ — उज्जायी

24

शीतली और शीतकारी प्राणायाम

इन दोनों प्राणायामों में पूरक क्रिया मुख से की जाती है और नासारंध्रों द्वारा नहीं तथा इनमें जालंधर बंध का उपयोग नहीं होता है।

शीतली प्राणायाम

इस प्राणायाम से शरीर-प्रणाली ठंडी की जाती है और इसीलिए इसे यह नाम दिया गया है।

अवस्था एक

इस अवस्था में पूरक क्रिया चक्करदार जिह्वा के माध्यम से की जाती है जबकि कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया ठीक उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार उज्जायी प्राणायाम में की जाती है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था 5 के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठ जाएं। फुप्फुसों में जो भी श्वास हो, उसे बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. सिर के स्तर को बनाए रखें। मुंह खोलें और होठों को 'O' के आकार में लाएं।

3. जिह्वा बाहर निकालें और लंबाई में जोड़ें ताकि वह एक ताज़ा मुड़ी हुई पत्ती के सदृश्य हो जो खुलना चाहती है (चित्र 143)।

4. मुड़ी हुई जिह्वा को आगे तक फैलाएं (चित्र 144) और उसमें से वायु अंदर लें जैसे कि आप किसी नली से पी रहे हों और फुप्फुसों को पूर्णतया वायु से भर लें। श्वास मुड़ी हुई आर्द्र जिह्वा में से गुजरकर गीली हो जाती है।

5. पूर्ण अंतःश्वसन के बाद जिह्वा को वापिस करें और मुख को बंद कर लें।

6. सिर को नीचा करें और जालंधर बंध करें (चित्र 57)। मूल बंध के साथ अथवा मूल बंध के बिना श्वास को पांच से दस सैकिंड तक रोके रहें (चित्र 101)।

7. जैसी उज्जायी में रेचक क्रिया की जाती है, उसी प्रकार इस प्राणायाम में रेचक क्रिया करें।

8. इससे शीतली का एक चक्र पूरा होता है। एक दौर में पांच से दस मिनट तक इसे दोहराएं। अंतिम क्रिया के अंत में दोनों नासारंध्रों में से साधारणतः श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था दो

इस अवस्था में पूरक क्रिया उसी प्रकार की जाती है जैसा कि ऊपर बताया गया है लेकिन रेचक क्रिया दोनों नासारंध्रों से की जाती है जो अंशतः बंद होते हैं।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करके किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. ऊपर दी गई अवस्था एक के पैरा 2 से 6 तक में दी गई सभी तकनीकों का अनुसरण करते हुए पूरक क्रिया करें (चित्र 144) और मूल बंध के साथ इसे समाप्त करें (चित्र 69)।

3. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में जैसी व्याख्या की गई है, उसके अनुसार नासारंध्रों तक दाहिना हाथ लाएं।

4. अंगूठे, अनामिका और तर्जनी अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नासारंध्रों को अंशतः बंद करें, दोनों नासारंध्रों पर समान दबाव रखें ताकि नासिका के मार्गों की दीवारें पट के समानांतर बनी रहें (चित्र 110)।

5. बिना किसी थकान के धीमी गति, स्थिरता और पूर्णरूपेण श्वास बाहर निकालें। नासारंध्रों पर कोमलता से अंगुलियों को इस प्रकार समायोजित करें कि आयतन पर नियंत्रण हो जाए और दोनों ओर बाह्य श्वास के प्रवाह को नियमित किया जा सके।

6. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करें तब हाथ को नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें।

7. इससे एक चक्र पूरा होता है। इसे पांच से दस मिनट तक दोहराएं। अंतिम चक्र के अंत में, दोनों नासारंध्रों में से सामान्यतया श्वास अंदर लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था तीन

यहां पूरक क्रिया अवस्था एक और दो के समान की जाती है और वैकल्पिक नासारंध्रों

में से रेचक क्रिया की जाती है। ऐसी क्रिया में एक ओर का नासारंध्र बंद कर लिया जाता है और दूसरी ओर का नासारंध्र अंशतः बंद किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आरामदायक आसन में बैठें। गहन रूप से श्वास बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. अब अवस्था एक के पैरा 2 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए पूरक क्रिया करें (चित्र 144) और इसे आंतरिक कुंभक क्रिया तथा मूल बंध के साथ समाप्त करें (चित्र 101)।

3. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 में पैरा 12 से लेकर 22 तक में जैसी व्याख्या की गई है, उसके अनुसार नासारंध्रों तक दाहिना हाथ लाएं।

4. बायां नासारंध्र पूर्णतया बंद करें और दायाँ नासारंध्र अंशतः बंद करें (चित्र 111) तथा बिना किसी थकान के धीमी गति, स्थिरता और पूर्णरूपेण रेचक क्रिया करें।

5. जब फुप्फुस महसूस करें कि वे बिल्कुल ही खाली हो गए हैं तब हाथ को नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। अवस्था एक के पैरा 2 से 6 तक में जैसा समझाया गया है, उसके अनुसार फिर श्वास लें।

6. दाहिने हाथ को नासिका तक लाएं और दाहिने नासारंध्र को पूर्णतया बंद कर लें तथा बाएं नासारंध्र को आंशिक रूप से बंद करें (चित्र 112) और बिना थकान के धीमी गति, स्थिरता और पूर्ण रूपेण श्वास निकालें। इसके बाद हाथ नीचा करें।

7. इससे एक चक्र पूरा हो जाता है। इस क्रिया को पांच से दस मिनट तक दोहराएं। अंतिम चक्र के अंत में खुले नासारंध्रों से सामान्यतया श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

शीतकारी प्राणायाम

शीतकारी उसी को कहा जाता है जो ठंड पैदा करता है। यह शीतली प्राणायाम का रूपभेद है। इसको शीतकारी प्राणायाम इसलिए भी कहते हैं कि दोनों होंठों के मध्य से वायु सिसकारी करते हुए खींची जाती है।

तकनीक

ऊपर बताई गई शीतली की सभी तकनीकों और अवस्थाओं का अनुसरण करें लेकिन जिह्वा को न मोड़ें। होंठ कुछ अलग-अलग रखें तथा जिह्वा का अग्रभाग कुछ बाहर निकला हुआ होना चाहिए लेकिन उसे सपाट रखें।

शीतली प्राणायाम के समान शीतकारी प्राणायाम तीन अवस्थाओं में संपन्न किया जाता है और उन्हीं तकनीकों का अनुसरण किया जाता है जैसा कि शीतली की

सभी अवस्थाओं में दिया गया है।

प्रभाव

प्राणायाम आनंददायक हैं। वे प्रणाली को शांत करते हैं और नेत्रों तथा कानों को सुख पहुंचाते हैं। वे कम ताप और चित्त दोष के निवारण के लिए उपयोगी हैं। वे यकृत और प्लीहा को सक्रिय बनाते हैं, पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं तथा प्यास को बुझाते हैं। वे दुर्गंध श्वास के लिए लाभदायक होते हैं। साधक इन प्राणायामों को उस समय भी कर सकता है जब नासारंध्र बंद हो जाते हैं।

शीतली और शीतकारी प्राणायामों की तालिका

शीतली

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक
	सिर	सीधी	जालंधर बंध		
	ग	मु हु जि	मू बं नहीं	मू बं	गहन
एक	√	√	अथवा मू बं 5-10 से		खु ना
दो	√	√		√	दो ना अं बं
तीन	√	√		√	वै ना अं बं

शीतकारी

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक
	सिर	सीधी	जालंधर बंध		
	ग	स जि	मू बं नहीं	मू बं	गहन
एक	√	√	अथवा मू बं 5-10 से		खु ना
द	√	√		√	दो ना अं बं
तीन	√	√		√	वै ना अं बं

ग—गहन

मु हु जि—मुड़ी हुई जिह्वा

मू बं न—मूल बंध नहीं

मू बं—मूल बंध

से—सेकंड

खु ना—खुले नासारंध्र

दो ना अं बं—दोनों नासारंध्र अंशतः बंद

वै ना अं बं—वैकल्पिक नासारंध्र अंशतः बंद

स जि—सपाट जिह्वा

25

अनुलोम प्राणायाम

'अनु' का अर्थ 'सहित' है अथवा 'एक के बाद एक' से है और 'लोम' का अर्थ 'केश' अथवा स्वाभाविक क्रम है । यहां अंगुलियां नासारंध्रों को नियंत्रित करती हैं ताकि बाहर निकलने वाली श्वास का प्रवाह कोमलता से हो सके ।

अनुलोम प्राणायाम का प्रयास करने से पूर्व उज्जायी और विलोम प्राणायाम की तकनीकों पर अधिकार प्राप्त करें ।

अनुलोम प्राणायाम में पूरक क्रिया खुले नासारंध्रों द्वारा की जाती है और इसे विरामों अथवा विरामों के बिना कर सकते हैं तथा उच्च अवस्थाओं में इसे मूलबंध के साथ किया जाता है । रेचक क्रिया दोनों नासारंध्रों से की जाती है जो अंशतः खुले रहते हैं अथवा वैकल्पिक रूप से एक नासारंध्र बिल्कुल ही बंद होता है और दूसरा नासारंध्र आंशिक रूप से बंद होता है । उच्च अवस्थाओं में उड्डीयान का भी प्रयोग किया जाता है ।

सभी अवस्थाओं में अंतः श्वास बाह्य श्वास की अपेक्षा कम अवधि की होती है । इस बात पर जोर दिया जाता है कि बाह्य श्वास को कोमलता से बढ़ाया जाए ।

यह प्राणायाम और इसके बाद दूसरे प्राणायाम उसी समय किये जाते हैं जब साधक बैठा हो और यह विशेषकर उस आसन में किया जाता है जैसी कि अध्याय ग्यारह में व्याख्या की गई है ।

अवस्था एक (क)

इस अवस्था में खुले नासारंध्रों द्वारा पूरक क्रिया की जाती है और इसके बाद दोनों अंशतः बंद नासारंध्रों से गहन रेचक क्रिया की जाती है। इससे रेचक क्रिया की अवधि बढ़ाई जाती है, दोनों नासारंध्रों को समान रूप से नियंत्रित करने के लिए अंगुलियों के अग्रभागों को प्रशिक्षित किया जाता है तथा बाह्य श्वास के प्रवाह को शुद्ध किया जाता है ।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। फुफ्फुसों में जो कुछ भी श्वास हो, उसे बाहर निकालें (चित्र 96)।

2. दोनों नासारंध्रों से गहरी श्वास लें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णरूपेण भर न जाएं (चित्र 98)

3. श्वास को एक या दो सैकिंड के लिए रोकें ताकि दायां हाथ नासारंध्रों के पास आ सके जैसी कि आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय बाईस के पैरा 12 से 22 तक में व्याख्या की गई है।

4. अब आंगुलिक नियंत्रित उच्छवसन की क्रिया प्रारंभ होती है।

5. अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभागों की सहायता से दोनों नासारंध्रों को अंशतः खोलें और नासिका द्वारों की अंदर की दीवारों को पट के समानांतर और समान दूरी पर रखें (चित्र 110)।

6. दोनों ओर समान रूप से दबाव रखें ताकि नासारंध्र समान रूप से वाह्य श्वास के सूक्ष्म प्रवाह को छोड़ने के लिए तैयार हो सके।

7. बिना किसी बल का प्रयोग करते हुए धीरे-धीरे सावधानी और गहनता से श्वास निकालें।

8. नासारंध्रों को समायोजित करने के लिए अंगुलियों को कड़ा और संवेदनशील बनाएं तथा प्रत्येक और वाह्य श्वास के आयतन को समान करने और उसे चलाने का प्रयास करें।

9. जब फुफ्फुस पूर्णतया रिक्त हो जाएं तो दाहिना हाथ नीचे करें और घुटने पर उसे आराम करने दें।

10. इससे एक चक्र पूरा होता है। इन्हें पंद्रह से बीस मिनट तक दोहराएं। खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

भाव

इस प्राणायाम से नासिका द्वारों की सफाई होती है।

अवस्था एक (ख)

इस अवस्था में खुले नासारंध्रों से गहन पूरक क्रिया की जाती है, रेचक क्रिया वैकल्पिक नासारंध्रों से की जाती है। इनमें से एक नासारंध्र पूर्णतः बंद किया जाता है और दूसरा अंशतः खुला रहता है। इस अवस्था में प्रत्येक नासारंध्र को रेचक क्रिया के दौरान अलग-अलग सतर्कता और संवेदनशीलता के विकास के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

नासिका द्वारों की दीवारों को पट के समानांतर रखने की क्रिया को याद रखें। चाहे वे दोनों ही एक ओर अंशतः बंद या अवरुद्ध हों ओर दूसरी ओर अंशतः खुले हों।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 और 3 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 98)।

3. अब दाहिने नासारंध्र से रेचक की क्रिया प्रारंभ होती है। पट की स्थिति को बदले बिना ही अनामिका और तीनों अंगुलियों के अग्रभाग की सहायता से बांया नासारंध्र पूर्णतया बंद कर लें।

4. दाहिने नासारंध्र के अंदर की दीवार को पट के समानांतर रखते हुए अंगुठे के अग्रभाग की सहायता से अंशतः खुला रखें (चित्र 111)।

5. अंशतः खुले हुए दाहिने नासारंध्र से धीरे-धीरे और सावधानी से श्वास निकालें। अंगूठे के अग्रभाग की सहायता से श्वास के सरल वायु प्रवाह पर नियंत्रण रखें और यह देखें कि कोई भी श्वास बांए नासारंध्र में से होकर बाहर नहीं जाता है।

6. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली हो जाएं तो दाहिना हाथ नीचे करें और उसे दाहिने घुटने पर आराम करने दें।

7. अब खुले नासारंध्रों द्वारा गहराई से श्वास लें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया वायु पूरित न हो जाएं। एक या दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकें (चित्र 98)।

8. अब बाएं नासारंध्र से रेचक क्रिया प्रारंभ होती है। दाहिने हाथ को नासारंध्रों के पास लाएं। अंगूठे के अग्रभाग की सहायता से दाहिने नासारंध्रों को पूर्णतया अवरुद्ध करें और पट की स्थिति को न बदलें।

9. अनामिका और तर्जनी अगुलियों की सहायता से बांया नासारंध्र अंशतः खोलें और उसकी अंदर की दीवार को पट के समानांतर रखें (चित्र 112)।

10. अंशतः खुले हुए बांए नासारंध्र में से धीरे-धीरे और पूर्णतया श्वास निकालें। दोनों अगुलियों के अग्रभागों की सहायता से सरल रूप से श्वास निकलने पर नियंत्रण करें। यह ध्यान रखें कि दाहिने नासारंध्र में से कोई भी वायु बाहर नहीं निकलती है।

11. जब फुफ्फुस रिक्त हो जाएं तब दाहिना हाथ नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें।

12. इससे एक चक्र पूरा होता है इन्हें पंद्रह या बीस मिनट तक दोहराएं। पूरक क्रिया करें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

यह प्राणायाम रक्तचाप और उच्च रक्त दवाव के नियंत्रण करने के लिए सुख-दायी और हितकर है।

अवस्था दो (क)

यह अवस्था उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक(क) की है, इसमें अंतर कुंभक प्रारंभ किया जाता है और यह माध्यमिक विद्यार्थियों के लिए है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं। फुप्फुसों में जो कुछ भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए पूरक क्रिया करें (चित्र 98)।

3. जव फुप्फुसों में श्वास पूरी भरी हो तो श्वास को दस से पंद्रह मिनट तक रोकें अथवा उतने समय तक रोकें जितना कि आप रोक सकते हैं (चित्र 101)।

4. अब अवस्था एक (क) के पैरा 5 से 8 तक की तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास निकालें (चित्र 110) और इसके बाद दाहिना हाथ नीचे करें।

5. इससे अनुलोम प्राणायाम का एक चक्र पूरा होता है। इसे दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं। पूरक क्रिया करें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे आंतरिक सतर्कता और एकाग्रता वढ़ती है।

अवस्था दो (ख)

यह अवस्था उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (ख) है लेकिन इसमें अंतर कुंभक प्रारंभ किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का

अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। गहनता से श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए पूरक क्रिया करें।

3. जब फुफ्फुस श्वास से पूरे भरे हों तो पंद्रह से बीस सैकिंड तक श्वास रोकें अथवा उतने समय तक श्वास रोकें जितना कि आप रोक सकते हैं (चित्र 101)।

4. अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 5 तक में जैसा बताया गया है उसके अनुसार अब दाहिने नासारंध्र से श्वास निकालें (चित्र 111)।

5. जब फुफ्फुस पूर्णतया रिक्त हो जाएं तो दाहिना हाथ नीचे करें और उसे घुटने पर आराम करने दें।

6. अब ऊपर बताए गए पैरा 2 के अनुसार खुले नासारंध्रों से गहनता से श्वास लें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भर न जाएं (चित्र 98)।

7. ऊपर बताए गए पैरा 3 के अनुसार समान अवधि के लिए श्वास रोकें (चित्र 101)।

8. अवस्था एक (ख) के पैरा 8 से 10 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए बांए नासारंध्र से श्वास निकालें (चित्र 112)। इसके बाद दाहिना हाथ नीचे करें।

9. इससे एक चक्र पूरा होता है। इन्हें दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं। पूरक क्रिया करें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे उच्छ्वसन का सूक्ष्म नियंत्रण और समय की अवधि बढ़ती है।

अवस्था तीन (क)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (क) है। इसमें उड्डीयान के बिना बाह्य कुंभक का प्रारंभ किया गया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 98)।

3. अवस्था एक (क) के पैरा 4 से 8 तक में जैसा दिया गया है उसके अनुसार अब अंशतः खुले हुए नासारंध्रों से रेचक क्रिया (निश्वसन) करें (चित्र 110)।

4. जब फुफ्फुसों को यह महसूस हो कि वे पूर्णतया रिक्त हैं तब दाहिने हाथ को

नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। पांच सैकिंडों के लिए पूरक क्रिया के विना निष्क्रिय वने रहें। यह कष्टप्रद वाह्य कुंभक की क्रिया है (चित्र 96)।

5. इससे एक चक्र पूरा होता है। इसे दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं। खुले नासारंध्रों में से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे नासाद्वारों की स्वच्छता होती है और साधक के मन में स्थिरता और शांति का सृजन होता है।

अवस्था तीन (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (ख) है। इसमें उड्डीयान के विना वाह्य कुंभक का प्रारंभ किया गया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में वैठें और श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 98)।

3. अव अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 5 तक के अनुसार दाहिने नासारंध्र से श्वास निकालें (चित्र 111)।

4. जव फुप्फुस पूर्णतया रिक्त महसूस करें तो दाहिने हाथ को नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। पांच सैकिंड के लिए निष्क्रिय (पूरक क्रिया के विना) रहें (चित्र 96)।

5. ऊपर वताए पैरा दो के अनुसार खुले नासारंध्रों से गहनता से श्वास लें (चित्र 98)।

6. अव वांए नासारंध्र में से रेचक क्रिया प्रारंभ होती है जैसा कि अवस्था एक (ख) के पैरा 8 से 10 तक में व्याख्या की गई है (चित्र 112)।

7. जव फुप्फुस रिक्त महसूस करें तव दाहिना हाथ नीचे करें और पांच सैकिंड के लिए निष्क्रिय वने रहें (चित्र 96)।

8. इससे एक चक्र पूरा होता है। इन्हें दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं और अंतः श्वास के साथ समाप्त करें। तत्पश्चात् शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे साधक आंतरिक चेतना की ओर उन्मुख होता है और वह उच्छ्वसन के

सूक्ष्मतर नियंत्रण की ओर आगे बढ़ता है।

अवस्था चार (क)

बंध इन दो अवस्थाओं में प्रारंभ किए जाते हैं : मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया और उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 98)।

3. जब फुफ्फुस वायुपूरित हों तब दस से बारह सैकिंड तक के लिए मूल बंध के साथ श्वास को रोकें अथवा श्वास को उतने समय तक रोकें जितना कि आप रोक सकते हैं (चित्र 101)।

4. अवस्था एक (क) के पैरा 5 से 8 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालें (चित्र 110) तथा धीरे-धीरे उदरीय पकड़ को शिथिल करें।

5. जब फुफ्फुस रिक्त महसूस करें तो दाहिना हाथ नीचे करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। इसके बाद उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया को पांच से छह सैकिंड तक करें (चित्र 104)।

6. उड्डीयान की पकड़ को शिथिल करें।

7. इससे एक चक्र पूरा होता है। ऐसे चक्रों को पंद्रह से बीस मिनट तक दोहराएं। श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे सहनशक्ति उत्पन्न होती है। मन विचारशील हो जाता है और यह साधक को ध्यान के लिए उद्यत करता है।

अवस्था चार (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (ख) है। अवस्था चार (क) के अनुसार इस अवस्था में बंधों को भी प्रारंभ किया गया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से7तक में दी गई तकनीकों का

अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक (क) से पैरा 2 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 98)।

3. जब फुफ्फुस वायुपूरित हो जाएं तो मूलबंध के साथ श्वास को रोकें (चित्र 101) जैसाकि अवस्था चार (क) के पैरा 3 में दिया गया है।

4. दाहिने नासारंध्र से श्वास निकालें, बांए नासारंध्र को बंद रखें (चित्र 111); अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 5 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें और धीरे-धीरे उदरीय पकड़ को ढीला करें।

5. जब फुफ्फुसों को यह महसूस हो कि वे पूर्णतया रिक्त हैं तो दाहिना हाथ नीचे करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। इसके बाद पांच से छह सैकिंड तक उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें (चित्र 104)।

6. उड्डीयान पकड़ को ढीला करें। इसके बाद खुले नासारंध्रों से गहनता से पूरक क्रिया करें जैसा कि ऊपर बताए गए पैरा 2 में किया गया है (चित्र 98)।

7. दस से पंद्रह सैकिंड के लिए मूल बंध के साथ श्वास को रोकें (चित्र 101) अथवा उतने समय के लिए रोकें जैसाकि ऊपर बताए गए पैरा 3 में दिया गया है।

8. अब बांए नासारंध्र से श्वास निकालें (चित्र 112), दाहिने नासारंध्र को पूर्णतया बंद रखें और अवस्था एक (ख) के पैरा 8 से 10 तक में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करें।

9. जब फुफ्फुस महसूस करें कि वे पूर्णतया रिक्त हैं तो दाहिना हाथ नीचे करें और पांच से छह सैकिंड तक के लिए उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें (चित्र 104)।

10. उड्डीयान पकड़ को शिथिल करें।

11. खुले नासारंध्रों के साथ दो पूरक क्रियाएं, मूल बंध के साथ दो आंतरिक कुंभक क्रियाएं, वैकल्पिक नासारध्रों में से दो रेचक क्रियाएं और उड्डीयान के साथ दो बाह्य कुंभक क्रियाएं मिलाकर एक चक्र बनाते हैं। इन्हें दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं और पूरक क्रिया के साथ इन्हें समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

चूंकि यह अवस्था गहन है अतः इसके प्रभाव भी गहन हैं।

अवस्थाएं पांच (क) से आठ (ख) तक

अवस्था पांच से आठ तक में पूरक क्रिया के लिए विलोम की तकनीकों और रेचक क्रिया के लिए अनुलोम की तकनीकों का उपयोग करें।

अवस्था पांच (क)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि ऊपर दी गई अवस्था एक (क) है। इनमें से उच्छ्वसन की तकनीकों का अनुकरण करना चाहिए परंतु विलोम के समान ही विरामों के साथ अवरुद्ध पूरक क्रिया में अवस्था एक अंतःश्वास के स्थान पर काम में लाई जानी जाहिए।

अवस्था पांच (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (ख) है लेकिन इसमें विरामों के साथ अवरुद्ध पूरक क्रियाओं का समावेश होता है।

अवस्थाएं छह (क) और छह (ख)

यह अवस्थाएं ठीक उसी प्रकार हैं जैसीकि क्रमशः अवस्था दो (क) और अवस्था दो (ख) होती हैं परंतु इसमें विरामों के साथ पूरक क्रियाओं में अवरोध होता है।

अवस्थाएं सात (क) और सात (ख)

यहअवस्थाएं ठीक उसी प्रकार की हैं जैसी कि क्रमशः अवस्थाएं तीन (क) और अवस्था तीन (ख) होती है परंतु इनमें विरामों के साथ पूरक क्रियाओं में अवरोध होता है।

अवस्थाएं आठ (क) और आठ (ख)

यह अवस्थाएं ठीक उसी प्रकार की हैं जैसी कि अवस्थाएं चार (क) और चार (ख) होती हैं परंतु इनमें विरामों के साथ पूरक क्रियाओं में अवरोध होता है।

अवस्थाएं पांच से आठ तक के प्रभाव

पूर्व प्राणायामों की अपेक्षा यह अवस्थाएं अपेक्षाकृत अधिक गहन होती हैं और इनके प्रभाव भी तदनुरूप गहन और अमोध होते हैं। अवस्था आठ सभी अवस्थाओं की अपेक्षा सबसे अधिक गहन होती है। इसके लिए अधिक बलप्रयोग, लगन, सहनशीलता और दृढ़ निश्चय की आवश्यकता होती है।

अनुलोम प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक		रेचक		बाह्य कुंभक	
	उ	वि	को मू बं न	मू बं	दो ना ग्रं बं	वै ना ग्रं बं	को उड् बं न	उड् बं
एक क	✓				✓			
ख	✓					✓		
दो क	✓		10-15 से		✓			
ख	✓		10-15 से			✓		
तीन: क	✓				✓		5 से	
ख	✓					✓	5 से	
चार क	✓			10 से	✓			5-8 से
ख	✓			10 से		✓		5-8 से
पांच क		...			✓			
ख		...				✓		
छः क		...	10 से		✓			
ख		...	10 से			✓		
सात क		...			✓		5 से	
ख		...				✓	5 से	
आठ क		...		10 से	✓			5-8 से
ख		...		10 से		✓		5-8 से

उ — उज्जायी
वि — विलोम
को मू बं न — कोई मूलबंध नहीं
मू बं — मूलबंध
दो ना अं बं — दोनों नासारंध्र अंशतः बंद
वै ना अं बं — वैकल्पिक नासारंध्र अंशतः बंद
को उड् बं न — कोई उड्डीयान बंध नहीं
उड् बं — उड्डीयान बंध
से — सेकंड

26

प्रतिलोम प्राणायाम

प्रति का अर्थ विपरीत अथवा विरुद्ध है और लोम का अर्थ केश है। इसलिए प्रतिलोम में प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध चलने की क्रिया निहित होती है। यह अनुलोम के विपरीत होता है। इस प्राणायाम में नासारंध्रों को पूरक क्रिया के लिए नियंत्रित किया जाता है और अंगुलियों के अग्रभागों द्वारा कम किया जाता है ताकि अंत:श्वास का प्रवाह सफलता से हो सके।

कुल मिलाकर (क) अवस्थाओं की पूरक क्रिया अंशत: खुले किंतु नियोजित नासारंध्रों के दोनों प्रकारों द्वारा की जाती है और (ख) अवस्थाओं में यह प्राणायाम वैकल्पिक नासारंध्रों द्वारा किया जाता है। सभी रेचक क्रियाएं (उच्छ्वसन) खुले नासारंध्रों द्वारा की जाती हैं जैसा कि उज्जायी में किया जाता है।

इस प्राणायाम में बाह्य श्वास की अपेक्षा अंत: श्वास अपेक्षाकृत अधिक समय तक चलता है और ज़ोर प्रति अंत: श्वास की धीमी और सरल गति से अधिक समय बढ़ाने पर दिया जाता है। अनुलोम और प्रतिलोम प्राणायाम विषम वृत्ति प्राणायाम के आधार हैं और इस कला में आगे बढ़ने के लिए सोपान है।

अवस्था एक (क)

इस अवस्था में पूरक क्रिया अधखुले किंतु नियंत्रित नासारंध्रों द्वारा की जाती है और बाद में खुले नासारंध्रों द्वारा रेचक क्रिया की जाती है। यह क्रिया पूरक क्रिया के सूक्ष्म और कोमल प्रवाह के लिए दोनों नासारंध्रों के समान नियंत्रण में अंगुलियों के अग्रभागों को प्रशिक्षित करने के लिए है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय बाईस के पैरा 12 से 22 तक में बताई गई विधि के अनुसार दाएं हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. दोनों नासारंध्रों को अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभागों की सहायता से नियंत्रित करें और जहां तक संभव हो, नासिका के मार्ग को पतला करें तथा पट के समानांतर रखें (चित्र 110)।

4. नासारंध्रों के दोनों ओर समान दबाव रखें ताकि उनकी चौड़ाई में दोनों समान मार्ग बन सकें। पट को अशांत न होने दें। अब नासारंध्र अंतः श्वास के प्रवाह को प्राप्त करने के लिए तैयार है।

5. बिना किसी बल प्रयोग के धीमी गति, सावधानी और गहनता से श्वास लें। वायु को महसूस करें जैसे ही वह नासिका मार्गों में प्रवेश करती है। अंगुलियों को दृढ़ और संवेदनशील रखें तथा नासारंध्रों के दोनों किनारों पर समान रूप से उनके अग्रभागों को समायोजित करें ताकि वायु के सरल अंतः प्रवाह और आयतन का अवलोकन, मार्गदर्शन और उसे समान किया जा सके।

6. जब फुफ्फुसों में पूर्णतया श्वास भर जाती है तब श्वास को एक या दो सैकिंड तक रोकें। इसके बाद दाएं हाथ को नीचा करें और दाहिने घुटने पर उसे आराम करने दें।

7. खुले नासारंध्रों से धीरे-धीरे स्थिरता और सरलता से श्वास निकालें जब तक कि फुफ्फुस यह महसूस न कर उठें कि वह बिल्कुल ही खाली हो गए हैं।

8. इससे एक चक्र पूरा होता है। इस चक्र को दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं अथवा उतनी देर तक दोहराएं जब तक कि आपको कोई थकान महसूस न हो। अंतिम चक्र को पूरा करने के बाद खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

यह प्राणायाम आलस्य और उदासी को दूर करने के लिए प्रभावकारी है।

अस्वथा एक (ख)

इस अवस्था में पूरक क्रिया अंगुलियों द्वारा नियंत्रित वैकल्पिक नासारंध्रों से की जाती है और इसके बाद खुले नासारंध्रों से गहन रेचक क्रिया की जाती है। इसका उद्देश्य वुद्धि उत्पन्न करना और सजगता का विकास करना है जिससे प्रत्येक नासारंध्र में अंतः श्वास के प्रवाह को सूक्ष्म किया जाए और बढ़ाया जाए। इससे साधक नाड़ी शोध प्राणायाम के लिए तैयार होता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनु-

सरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में बताई गई विधि के अनुसार दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. पट की स्थिति को बिना बदले हुए अनामिका और तर्जनी अंगुलियों के अग्रभागों की सहायता से बांए नासारंध्र को पूर्णतया बंद करें।

4. अंगूठे के अग्रभाग से दाहिना नासारंध्र नियंत्रित करें और मार्ग को यथा-संभव कम चौड़ा करें जैसा कि चित्र 111 में दिखाया गया है। इससे अंतः श्वास की गति और आयतन कम होता है तथा ध्वनि शुद्ध होती है।

5. दाहिने मार्ग की आंतरिक दीवार को पट के समानांतर रखें।

6. अब आंशिक रूप से खुले लेकिन नियंत्रित दाहिने नासारंध्र में से धीरे-धीरे, गहनता और यथासंभव कोमलता से श्वास लें जब तक फुफ्फुस पूर्णतया भर न जाएं। एक अथवा दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकें।

7. हाथ को नीचा करें और उसे घुटने पर आराम करने दें। खुले नासारंध्रों से धीरे-धीरे, सरलता, स्थिरता और कोमलता से श्वास निकालें जब तक कि आप फुफ्फुसों को खाली महसूस न कर उठें।

8. फिर हाथ को नासिका तक उठाएं और बांए नासारंध्र में से श्वास लें तथा ऊपर बताए गए पैरा दो से छह तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें लेकिन दाहिना नासारंध्र बंद कर दें और बांए नासारंध्र में से श्वास लें (चित्र 112)।

9. हाथ को नीचा करें और उसे घुटने पर टिकाएं। पैरा 7 में दी गई विधि के अनुसार श्वास निकालें।

10. इससे एक चक्र पूरा होता है। इन्हें दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं। अंतिम चक्र पूरा करने के बाद खुले नासारंध्र में से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

इससे नासिका झिल्लियों में प्रचुर संवेदनशीलता और अंगुलियों के अग्रभागों में कार्यक्षमता का विकास होता है।

अवस्था दो (क)

इस अवस्था में पूरक क्रिया नियंत्रित और कम चौड़े खुले नासारंध्रों द्वारा की जाती है। इसके बाद बंद नासारंध्रों और मूल बंध के साथ अंतर कुंभक क्रिया की जाती है, तत्पश्चात् खुले नासारंध्रों में से रेचक क्रिया की जाती है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. दाहिना हाथ नासारंध्रों तक ले जाएं और श्वास लें तथा ऊपर बताई गई अवस्था एक (क) के पैरा 1 से 5 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें (चित्र 110)।

3. जब फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भर जाएं तब अंगूठे और अंगुलियों के अग्रभागों के मध्य से दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें (चित्र 145) और कोई भी श्वास न निकलने दें। पंद्रह से बीस सैकिंड तक अथवा आप उतने समय तक जितनी देर तक कर सकें, मूल बंध के साथ श्वास को रोकें (चित्र 69)।

4. दाहिना हाथ नीचे करें और उसे दाहिने घुटने पर आराम करने दें।

5. खुले नासारंध्रों से सरलता, धीरे-धीरे, स्थिरता और आसानी से श्वास निकालें जब तक कि फुफ्फस पूर्णतया खाली न हो जाएं।

6. इससे एक चक्र पूरा होता है। इन्हें पंद्रह से बीस मिनट तक दोहराएं अथवा उतनी देर तक दोहराएं कि आप थकान न महसूस करें। अंतिम चक्र पूरा करने के बाद खुले नासारंध्रों में से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था दो (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक (ख) है। इसके साथ ही साथ मूल बंध सहित अंतर कुंभक क्रिया भी करें जैसी कि अवस्था दो (क) में दी गई है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें और श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं। अब ऊपर बताई गई अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 6 में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 111)।

3. पूर्ण पूरक क्रिया के बाद दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें (चित्र 145) और मूलबंध के साथ श्वास को 15 से 20 सैकिंड तक अथवा उतने समय तक जितना कि आप रोक सकते हैं, रोकें।

4. दाहिने हाथ को झुकाकर घुटने पर आराम करने दें। खुले नासारंध्रों के साथ सरलता, धीमी गति, स्थिरता और सुगमता से श्वास निकालें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया खाली न महसूस करें।

5. इसके बाद दाहिने हाथ को नासिका तक उठाएं और दाहिने नासारंध्र को पूर्णतया बंद करें परंतु बाएं नासारंध्र पर नियंत्रण करें और उसे आंशिक रूप से खोलें (चित्र 112)।

6. अवस्था एक (ख) के पैरा 4 से 6 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए बांए नासारंध्र में से श्वास लें। दाहिनी ओर के लिए बांया और बांई ओर के लिए दाहिना विकल्प रखें।

7. ऊपर बताए गए पैरा 3 के अनुसार पूरक क्रिया के बाद श्वास रोकें।

8. ऊपर बताए गए पैरा 4 के अनुसार दाहिने हाथ को नीचा करें और धीरे-धीरे श्वास निकालें।

9. वैकल्पिक नासारंध्रों में से की गई दो पूरक क्रियाओं, बंद नासारंध्रों और मूल बंध की सहायता से की गई दो अंतर-कुंभक क्रियाएं तथा खुले नासारंध्रों से की गई दो रेचक क्रियाओं को मिलाकर एक चक्र बनाते हैं। इन्हें 15 से 20 मिनट तक दोहराएं अथवा उतनी देर तक दोहराएं जितनी देर तक आपको थकान महसूस न हो। अंतिम चक्र पूरा करने के बाद खुले नासारंध्रों में से श्वास लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था दो (क) और अवस्था दो (ख) के प्रभाव

इन अवस्थाओं से साधक अंतर कुंभक के लिए अंगुलियों का सही रखना सीख लेता है क्योंकि नासारंध्र पूर्णतया बंद होते हैं अतः सिर और चेहरे की मांसपेशियों में किसी प्रकार का कोई तनाव नहीं रहता है।

अवस्था तीन (क)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था दो क है। इसमें उड्डीयान बंध के साथ की गई बाह्य कुंभक क्रिया प्रारंभ की जाती है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में बताई गई विधि के अनुसार हाथों को नासारंध्रों तक लाएं।

3. ऊपर बताई गई अवस्था एक (क) के पैरा 3 से 5 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास अंदर लें (चित्र 110)।

4. खुले नासारंध्रों से धीमी गति, स्थिरता और आसानी से श्वास लें जब तक फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस न करें।

5. उसके बाद दस से पंद्रह सैकिंड के लिए श्वास को रोकें अथवा श्वास को उतने समय तक के लिए रोकें जब तक आप रोक सकते हैं (चित्र 104)। अंततोगत्वा उड्डीयान पकड़ को शिथिल करें।

6. उड्डीयान बंध के साथ एक पूरक क्रिया, एक रेचक क्रिया और एक बाह्य कुंभक क्रिया मिलाकर एक चक्र पूरा करते हैं। उन्हें दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं अथवा उतने समय तक दोहराएं जब तक कि थकान महसूस न हो। अंतिम चक्र के बाद खुले नासारंध्रों द्वारा श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था तीन (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की अवस्था है जैसी कि अवस्था दो (ख) होती है, उसी के साथ अवस्था तीन (क) के अनुसार उड्डीयान बंध और बाह्य कुंभक भी करें।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आसन में बैठ जाएं। आपके फुफ्फुसों में जो भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में जो विधि बताई गई है, उसी के अनुसार दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. ऊपर बताई गई अवस्था एक (ख) के पैरा 4 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए बांया नासारंध्र पूर्णतया बंद कर लें और नियंत्रित तथा अध-खुले दाहिने नासारंध्र से श्वास लें (चित्र 111)।

4. हाथ को नीचा करें, उसे घुटने पर आराम करने दें और खुले नासारंध्रों से धीरे-धीरे स्थिरता और सुगमता से श्वास निकालें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया खाली न हो जाएं।

5. अब उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें। यह क्रिया दस से पंद्रह सैकिंड तक अथवा उतने समय तक करें जब तक आप कर सकते हैं (चित्र 104)। इसके बाद पकड़ को शिथिल करें।

6. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक उठाएं, दाहिने नासारंध्र को बंद करें और बांये नासारंध्र को आंशिक रूप से बंद करें। (चित्र 112)। अवस्था एक (ख) के पैरा 4 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए बांए नासारंध्र में से धीरे-धीरे सुगमता, कोमलता और गहनता से श्वास लें लेकिन बांए के लिए दांए और दाएं के लिए बांए पढ़ें।

7. हाथ को नीचा करें और घुटने पर आराम करने दें और ऊपर बताए गए पैरा 4 में जैसा बताया गया है, उसके अनुसार श्वास निकालें।

8. जब फुफ्फुस बिल्कुल ही खाली महसूस होने लगें तब उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें, यह क्रिया दस से पंद्रह सैकिंड के लिए अथवा उतने समय के लिए करें जितनी आप कर सकते हैं (चित्र 104)। इसके बाद पकड़ को शिथिल करें।

9. दो पूरक क्रियाएं (प्रत्येक नासारंध्र में से एक बार) खुले नासारंध्रों के साथ

दो रेचक क्रियाएं और उड्डीयान बंध के साथ दो बाह्य कुंभक क्रियाएं इस अवस्था का एक चक्र पूरा करती हैं। अपनी क्षमता के अनुसार दस से पंद्रह मिनट तक इन्हें दोहराएं। अंतिम चक्र के बाद खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्थाएं तीन (क) और तीन (ख) के प्रभाव

उदरीय मांसपेशियों और अवयवों की मजबूती के साथ अवस्था दो (क) और दो (ख) के प्रभावों के समान ही इन अवस्थाओं के प्रभाव हैं।

अवस्था चार (क)

यह अवस्था उच्च कोटि के विद्यार्थियों के लिए है। यह अवस्था दो (क) और अवस्था तीन (ख) को मिलाकर बनती है। इसमें मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया और उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया का वैकल्पिक रूप से अभ्यास किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में दी गई विधि के अनुसार दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. अवस्था एक (क) के पैरा 3 से 5 तक में दी गई विधि के अनुसार अधखुले नासारंध्रों में से श्वास लें (चित्र 110)।

4. जब फुफ्फुस श्वास से पूर्णतया भरे हों तो नासारंध्रों को बंद कर लें और मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया करें। यह क्रिया पंद्रह से बीस सैकिंड तक करें (चित्र 69) अथवा उतने समय तक करें जितना कि आप कर सकते हैं जैसा कि अवस्था दो (क) के पैरा 3 में व्याख्या की गई है (चित्र 145)।

5. दाहिना हाथ नीचे करें और उसे घुटने पर टिकाएं।

6. खुले नासारंध्रों से कोमलता, स्थिरता, धीरे-धीरे और सुगमता से श्वास बाहर निकालें जब तक फुफ्फुस पूर्णतया खाली न हो जाएं।

7. इसके बाद उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें, यह क्रिया दस से पंद्रह सेकिंड तक की जाए अथवा उतने समय तक के लिए की जाए जब तक आप इसे कर सकते हैं (चित्र 104), अंततोगत्वा पकड़ को शिथिल करें।

8. इसके बाद, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पूरक की क्रिया, मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया, उड्डीयान बंध के साथ रेचक क्रिया और बाह्य कुंभक क्रिया करें।

9. एक पूरक क्रिया, मूल बंध के साथ एक आंतरिक कुंभक क्रिया, एक रेचक क्रिया और उड्डीयान बंध के साथ एक बाह्य कुंभक क्रिया से मिलाकर एक चक्र पूरा

होता है। आप अपनी क्षमता के अनुसार इन्हें दोहराएं। अन्तिम चक्र पूरा करने के बाद, खुले नासारंध्रों में से श्वास लें और बाद में शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)। यदि कोई थकान महसूस हो तो उस दिन के लिए अभ्यास रोक दें।

अवस्था चार (ख)

यह अवस्था गत अवस्था की अपेक्षा अधिक थकान देने वाली और जटिल अवस्था है। इसमें अवस्थाएं दो (ख) और तीन (ख) का संयोजन होता है परंतु मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया और उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया क्रमश: आंतरिक और बाह्य श्वास के साथ की जाती हैं।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आसन में बैठ जाएं। श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में बताई गई विधि के अनुसार दाहिना हाथ नासारंध्रों तक लाएं।

3. ऊपर दी गई अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 111)।

4. पूर्ण रूप से पूरक क्रिया के बाद अवस्था दो (ख) के पैरा 3 के अनुसार मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक करें (चित्र 145)।

5. अवस्था दो (ख) के पैरा 4 के अनुसार दाहिना हाथ नीचे करें और श्वास निकालें।

6. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करें तब दस से पंद्रह सैकिंड तक अथवा उतने समय तक जितना आप कर सकें, उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें (चित्र 104)।

7. फिर दाहिना हाथ नासारंध्रों तक लाएं और बांए नासारंध्र से श्वास लें जैसा कि अवस्था तीन (ख) के पैरा 6 में दिया गया है (चित्र 112)।

8. जब फुफ्फुस में पूर्णतया श्वास भरी हो तब ऊपर बताए गए पैरा 4 में दी गई विधि के अनुसार समान समय के लिए मूल बंध के साथ श्वास रोकें (चित्र 145)।

9. हाथ को नीचा करें और ऊपर बताए गए पैरा 5 के अनुसार श्वास निकालें।

10. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करें तब ऊपर दिए गए पैरा 6 के अनुसार उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें (चित्र 104)। तब पकड़ को शिथिल करें और इस क्रिया को दोहराएं।

11. दो पूरक क्रियाएं (दांए नासारंध्र से एक और बांए नासारंध्र से दूसरी), मूल बंध के साथ दो आंतरिक कुंभक क्रियाएं, खुले नासारंध्रों के साथ दो रेचक क्रियाएं और उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया मिलकर एक चक्र पूरा करते हैं। आप अपनी क्षमता के अनुसार उन्हें दोहराएं। अंतिम चक्र पूरा करने के बाद खुले

नासारंध्रों में से सामान्यतया श्वास लें और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)। यदि कोई भी थकान महसूस हो तो उस दिन प्राणायाम का अभ्यास रोक दें।

अवस्थाएं चार (क) और चार (ख) के प्रभाव

इन सघन अवस्थाओं में अवस्था दो (क) और दो (ख) तथा तीन (क) और तीन (ख) के प्रभाव सम्मिलित किए जाते हैं।

ध्यान देने योग्य संकेत

यह संभव है कि विलोम प्राणायाम तकनीकों को प्रतिलोम प्राणायाम की तकनीकों के साथ सम्मिलित कर दिया जाए अर्थात् पूरक क्रिया, रेचक क्रिया अथवा दोनों ही क्रियाओं में विराम प्रारंभ किए जाते हैं। फिर भी, इस प्रकार के संयोजन की सिफारिश नहीं की जाती है क्योंकि वे अनावश्यक थकान पैदा करते हैं तथा नासिका की झिल्लियों की संवेदनशीलता और अंगुलियों के अग्रभागों की कार्यदक्षता को कम करते हैं।

प्रतिलोम प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक		अंतर कुंभक	रेचक	बाह्य कुंभक
	दो ना ग्रं बं	वै ना ग्रं बं	मू बं	खु ना	उड् बं
एक क	√				
ख		√			
दो क	√				
ख		√	15-20 से		
तीन क	√		15-20 से		10-15 से
ख		√			10-15 से
चार क	√		15-20 से		10-15 से
ख			15-20 से		10-15 से.

दो ना अं बं — दोनों नासारंध्र अंशतः बंद
वै ना अं बं — वैकल्पिक नासारंध्र अंशतः बंद
मू बं — मूल बंध
खु ना — खुले नासारंध्र
उड् बं — उड्डीयान बंध
से — सेकिंड

27

सूर्यभेदन और चंद्रभेदन प्राणायाम

सूर्यभेदन प्राणायाम

सूर्य का अर्थ रवि है, भिद् धातु से भेदन बना है। भिद् का अर्थ छेदना, तोड़ना या आरपार जाना है।

सूर्य भेदन प्राणायाम में सभी पूरक क्रियाएं दाहिने नासारंध्र और सभी रेचक क्रियाएं बाएं नासारंध्र द्वारा की जाती हैं। सभी पूरक क्रियाओं में प्राण ऊर्जा पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी तथा सभी रेचक क्रियाओं में प्राण ऊर्जा इड़ा अथवा चंद्र नाड़ी द्वारा प्रवाहित होती है।

सूर्य भेदन में श्वास का प्रवाह आंगुलिक प्राणायाम द्वारा नियंत्रित किया जाता है और फुफ्फुस अंतःश्वास से अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा शोषित करते हैं।

अवस्था एक

इस अवस्था में दाहिने नासारंध्र द्वारा गहन पूरक क्रिया और बाएं नासारंध्र द्वारा गहन रेचक क्रिया सम्मिलित की जाती है।

तकनीक

1. अवस्था पांच के उज्जायी के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं। गहराई से श्वास निकालें (चित्र 96)।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में बताई गई विधि के अनुसार दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. पट को अशांत किए बिना ही अनामिका और तर्जनी अंगुलियों के अग्रभागों से नासारंध्रों को पूर्णतया बंद कर लें। बाह्य दाहिने नासारंध्र की अंदर की दीवार पट के समानांतर रखते हुए दाहिने अंगूठे की सहायता से दाहिना नासारंध्र आंशिक रूप से बंद करें (चित्र 111)।

4. किसी बल प्रयोग के बिना आंशिक रूप से बंद दाहिने नासारंध्र द्वारा धीरे-

धीरे, सावधानी और गहराई से श्वास लें जब तक फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भर न जाएं।

5. पट को अशांत किए बिना ही दाहिने नासारंध्र को बिलकुल ही बंद करें। बांए नासारंध्र के दबाव को शिथिल करें और इसे आंशिक रूप से खोलें (चित्र 112)।

6. अधखुले बांए नासारंध्र द्वारा धीरे-धीरे स्थिरता और गहनता से श्वास निकालें जब तक फुफ्फुस खाली महसूस न करें।

7. इससे एक चक्र पूरा होता है। इसे दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं, खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

8. जैसे-जैसे अभ्यास करते-करते सुधार आ जाय, अंगुलियों के अग्रभागों से नासिका द्वारों को सावधानी से कम चौड़ा करें ताकि श्वास का प्रवाह अधिक समय तक बना रहे।

अवस्था दो

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि अवस्था एक है। दोनों नासारंध्रों को बंद करते हुए मूलबंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया को जोड़ा जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं (चित्र 96)।

2. अवस्था एक के पैरा 2, 3 और 4 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए दाहिने नासारंध्र द्वारा धीमी गति, गहनता और पूर्ण रूप से श्वास लें (चित्र 111)।

3. इसके बाद दोनों नासारंध्र बंद करें और पंद्रह से बीस सैकिंड तक के लिए मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया करें (चित्र 145) तथा कोई भी श्वास न निकलने दें। धीरे-धीरे इसकी अवधि पांच-पांच सैकिंड बढ़ाएं। जब अंत:श्वास और बाह्य श्वास के प्रवाह और सुगमता को बिना किसी अशांति के स्थिर कर लिया जाय तब कुंभक क्रिया की अवधि को बढ़ा लें। इस प्रकार साधक को अपनी अधिकतम क्षमता प्राप्त करने में प्रशिक्षण मिल जाता है।

4. अब अंशत: खुले हुए बांए नासारंध्र द्वारा धीरे-धीरे, स्थिरता और गहनता से श्वास निकालें जब तक कि फुफ्फुस पूर्णतया खाली न हो जाएं (चित्र 112)।

5. इससे एक चक्र पूरा होता है। इसे दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं, खुले नासारंध्रों की सहायता से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था तीन

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की अवस्था है जैसी कि अवस्था एक है और इस अवस्था

में उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया को जोड़ दिया गया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं। फुफ्फुसों में जो कुछ भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था एक के पैरा 2, 3 और 4 की तकनीकों का अनुसरण करते हुए दाहिने नासारंध्र द्वारा धीरे-धीरे गहनता और पूर्णता से श्वास अंदर लें (चित्र 111)।

3. दाहिना नासारंध्र पूर्णतया बंद करें, बांया नासारंध्र अंशत: मुक्त करें और उसके द्वारा धीरे-धीरे तथा गहनता से श्वास बाहर निकालें (चित्र 112)। इस क्रिया में अवस्था एक के पैरा 5 और 6 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करें।

4. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करने लगें तब दोनों नासारंध्रों को बंद कर दें और बिना किसी थकान के अपनी क्षमता के अनुसार उड्डीयान बंध के साथ बाह्य कुंभक क्रिया करें (चित्र 146)।

5. आंतरिक कुंभक क्रिया की अपेक्षा बाह्य कुंभक क्रिया के सिद्ध करने में अधिक समय लगता है। इसलिए कुंभक क्रिया की अवधि को धीरे-धीरे एक या दो सेकिंड से बढ़ाते रहना चाहिए। जब इसकी स्थिति स्थिर हो जाए तब प्रवाह को अशांत किए बिना ही कुंभक क्रिया की अवधि तथा अंत: और बाह्य श्वासों की मधुरता को बढ़ाना चाहिए।

6. इससे एक चक्रपूरा होता है। इस क्रिया को दस से पंद्रह मिनट तक दोहराएं। खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (182)।

अवस्था चार

इस अवस्था में अवस्थाएं दो और तीन को सम्मिलित किया जाता है। यह उच्च स्तरीय विद्यार्थियों के लिए है और इसका अभ्यास अवस्थाएं दो और तीन पर अधिकार पाने के बाद करना चाहिए।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं। फुफ्फुसों में जो कोई भी श्वास हो, उसे निकालें (चित्र 96)।

2. अवस्था दो के पैरा 2 और 3 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 111) और इसे मूलबंध के साथ समाप्त करें (चित्र 145)।

3. अवस्था तीन के पैरा 3 और 4 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास निकालें (चित्र 112) और उड्डीयान बंध के साथ इसे समाप्त करें (चित्र 146)।

4. प्रत्येक पूरक क्रिया और प्रत्येक रेचक क्रिया के अंत में कुंभक क्रिया करें, कम

समय की कुंभक क्रियाओं से प्रारंभ करें और धीरे-धीरे उनकी अवधि को बढ़ाएं जैसे ही फुफ्फुस की क्षमता बढ़ती हो। उड्डीयान बंध में आठ से दस सेकिंड तक समय न बढ़ाएं।

5. इससे एक चक्र पूरा होता है। आप बिना किसी थकावट के आराम से जितने भी चक्र कर सकते हैं, करें। खुले नासारंध्रों से श्वास लें और इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

सूर्यभेदन प्राणायाम के प्रभाव

इससे शरीर में ताप और पाचन शक्ति बढ़ती है। इससे नाड़ियों को आराम मिलता है और उन्हें शक्ति मिलती है तथा इससे साइनस स्वच्छ होते है। यह उन व्यक्तियों के लिए लाभकारी है जो रक्त के कम दवाव से पीड़ित रहते हैं।

चंद्रभेदन प्राणायाम

इस प्राणायाम का उल्लेख **योगचूड़ामणि उपनिषद्** (95-97) में किया गया है और इसमें चंद्रभेदन के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है परंतु उसमें इस प्राणायाम की विधि दी गई है।

चंद्र शशि है। चंद्रभेदन प्राणायाम में सभी पूरक क्रियाएं बांए नासारंध्र द्वारा की जाती हैं (चित्र 112) और सभी रेचक क्रियाएं दाहिने नासारंध्र द्वारा की जाती हैं (चित्र 111)। सभी पूरक क्रियाओं में प्राण ऊर्जा इड़ा अथवा चंद्र नाड़ी द्वारा प्रवाहित है। सभी रेचक क्रियाएं पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी द्वारा प्रवाहित होती हैं।

चंद्रभेदन चार अवस्थाओं में किया जाता है और ये अवस्थाएं ठीक वैसी ही अवस्थाएं हैं जैसी कि सूर्यभेदन की अवस्थाएं होती हैं।

तकनीक

सूर्यभेदन की सभी अवस्थाओं में जो तकनीकें दी गई हैं, उनका अनुसरण करें, शब्द 'दाहिने' को 'बांए' और इसके विपरीत पढ़ें। शवासन के सहित यह अभ्यास पूरा करें (चित्र 182)।

प्रभाव

इसके प्रभाव ठीक वैसे ही हैं जैसे कि सूर्यभेदन के प्रभाव होते हैं किंतु इस प्राणायाम से प्रणाली शीतल हो जाती है।

सूर्य और चंद्रभेदन प्राणायामों के लिए ध्यान देने योग्य संकेत

1. कभी-कभी दोनों नासारंध्रों के द्वारों की एक जैसी चौड़ाई नहीं होती है। ऐसे मामले में आंगुलिक दवाव को समायोजित करना चाहिए। अन्य मामलों में एक नासा-

रंध्र ही सब कुछ होता है लेकिन वह पूर्णतया बंद होता है (उदाहरणार्थ, यदि इसमें पालिप हो अथवा नासिका की हड्डी टूट गई हो) जबकि दूसरा स्वच्छ होता है। यदि ऐसा हो तो स्वच्छ ओर से श्वास लें और बंद ओर से श्वास उतनी निकालें जितनी आप निकाल सकते हैं। समय के अंतराल में आंगुलिक क्रिया के कारण बंद नासारंध्र स्वच्छ हो जाते हैं और तब पूरक क्रिया संभव हो जाती है।

2. यदि नासिका की हड्डी सीधी नहीं हो तो पट की हड्डी को नासिका की हड्डी के ऊपर और नीचे ले जाना सीखें। इसके बाद बंद द्वार खुल जाता है तथा आंगुलिक प्राणायाम संभव हो जाता है (चित्र 140 और 141)।

3. एक ही दिन सूर्यभेदन और चंद्रभेदन प्राणायाम न करें।

4. दोनों ही प्राणायामों में अवरुद्ध (विलोम) श्वास सम्मिलित हो सकती है और संभवतः अवस्थाओं की संख्या सोलह हो सकती है। फिर भी क्रम परिवर्तन और संयोजनों की यथासंभव संख्या काफी हो सकती है :

" अवस्था पांच : अवरुद्ध पूरक क्रिया, दीर्घ रेचक क्रिया
" छह : दीर्घ पूरक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया
" सात : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया
" आठ : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, दीर्घ रेचक क्रिया
" नौ : दीर्घ पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया
" दस : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया
" ग्यारह : अवरुद्ध पूरक क्रिया, दीर्घ रेचक क्रिया, बाह्य कुंभक क्रिया
" बारह : दीर्घ पूरक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया, बाह्य अंतर कुंभक क्रिया।
" तेरह : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया, बाह्य कुंभक क्रिया, रेचक क्रिया
" चोदह : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, दीर्घ रेचक क्रिया, बाह्य कुंभक क्रिया।
" पंद्रह : दीर्घ पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, बाह्य कुंभक क्रिया
" सोलह : अवरुद्ध पूरक क्रिया, अंतर कुंभक क्रिया, अवरुद्ध रेचक क्रिया, बाह्य कुंभक क्रिया।

सूर्यभेदन प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक दा ना	अंतर कुंभक मू बं	रेचक वा ना	बाह्य कुंभक उड् बं
एक	√		√	
दो	√	15-20 से	√	
तीन	√		√	य दे त
चार	√	15-20 से	√	8-10 से

चंद्रभेदन प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक	अंतर कुंभक मू बं	रेचक वा ना	बाह्य कुंभक उड् बं
एक	√		√	
दो	√	15-20 से	√	
तीन	√		√	य दे त
चार	√	15-20 से	√	8-10 से

दा ना —दांया नासारंध्र
मू बं — मूल बंध
बा ना — बांया नासारंध्र
उड् बं — उड्डीयान बंध
से — सेकिंड
य दे त — यथासंभव देर तक

28

नाड़ी शोधन प्राणायाम

नाड़ी प्राण अथवा उर्जा के मार्ग के लिए नलिका रूप अवयव है जो ब्रह्मांडीय, जैव शुक्रीय और अन्य उर्जाओं को प्रवाहित करती है। इसके साथ ही साथ कारणात्मक सूक्ष्म और भौतिक शरीरों में संवेदना, बुद्धि और चेतना को भी प्रवाहित करती है। (अधिक विवरण के लिए अध्याय पांच देखें)। शोधन का अर्थ शुद्धि करना अथवा स्वच्छ करना है। नाड़ीशोधन पद का अर्थ नाड़ियों का शुद्धीकरण है। तंत्रिका-प्रणाली में तनिक भी अवरोध हो जाने पर अधिक बैचेनी उत्पन्न होती है और यहां तक कि कोई अंग या अवयव पक्षाघात से पीड़ित हो जाता है।

हठयोग प्रदीपिका (दो, 6-9, 19-20), **शिवसंहिता** (तीन, 24, 25), **घेरंड-संहिता** (पांच, 49-52) और **योगचूड़ामणि उपनिषद्** (पांच, 98-100) में एक ऐसे प्राणायाम का वर्णन किया गया है जो नाड़ियों को स्वच्छ करता है। इन पाठ्य सामग्रियों में तकनीक का उल्लेख है और उन लाभकारी प्रभावों का वर्णन है जो नाड़ियों को शुद्ध करने के कारण होते हैं।

यद्यपि योग के सभी ग्रंथों में विशेष नामों के साथ प्राणायामों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है फिर भी किसी भी ग्रंथ में चंद्रभेदन अथवा नाड़ीशोधन प्राणायाम के नाम का उल्लेख नहीं है।

इस प्राणायाम को सविस्तार रूप से आगे बताया गया है। इस प्राणायाम में अनु-लोम के समान रेचक क्रिया और प्रतिलोम प्राणायाम की पूरक क्रिया की तकनीकों को सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्राणायाम का अपने जैसा एक अन्य लक्षण है। सूर्यभेदन प्राणायाम के चक्र में दाहिने नासारंध्र द्वारा पूरक क्रियाएं और वांए नासारंध्र द्वारा रेचक क्रियाएं शामिल की जाती हैं जबकि चंद्रभेदन प्राणायाम में वांए नासारंध्र द्वारा पूरक क्रिया और दाहिने नासारंध्र द्वारा रेचक क्रिया की जाती है। नाड़ी शोधन प्राणायाम में इन दोनों की क्रियाओं को एक चक्र में किया जाता है। ऊपर बताई गई पाठ्य सामग्री में इस क्रिया का वर्णन किया गया है।

मस्तिष्क को दो गोलार्धों में विभाजित किया जाता है, वांया गोलार्द्ध शरीर के दाहिने भाग पर नियंत्रण करता है और दायां गोलार्द्ध शरीर के दाएं भाग पर नियंत्रण करता है। फिर भी यह कहा गया है कि मस्तिष्क के दो भाग होते हैं, कपाल के आधार पर अपेक्षाकृत अधिक आदिरूप अथवा पश्चमस्तिष्क होता है जिसके संबंध में यह बताया जाता है कि वह विचारशील मस्तिष्क है और वह बुद्धिमत्ता का स्थान है जबकि मस्तिष्क का अग्रभाग सक्रिय मस्तिष्क और गणक मस्तिष्क कहलाता है जो बाह्य संसार के साथ व्यवहार करता है।

योगियों ने मस्तिष्क, फुफ्फुसों और शरीर के अन्य भागों की संरचना में विभिन्न प्रकार की विभिन्नताएं महसूस की हैं। उन्होंने आसन स्वीकार किए ताकि शरीर के दोनों और समरूप विकास हो, उनका समान प्रसार हो और ध्यान बढ़े। उन्होंने नाड़ी शोधन प्राणायाम की खोज की और उसे प्रारंभ कराया ताकि प्रत्येक नासारंध्र में से अंतःश्वास और बाह्य श्वास गुजरकर परम शक्ति प्रवाहित हो और इस प्रकार मस्तिष्क के दोनों गोलार्ध अर्थात् अग्रभाग और पश्चभाग को सशक्त किया जा सके।

इस प्राणायाम से पूरक क्रिया और रेचक क्रिया के लिए किनारों में परिवर्तन होता है और ऊर्जा चक्रों को पार करने वाली नाड़ियों द्वारा शरीर और मस्तिष्क के सुदूर भागों में पहुंचती है। साधक मस्तिष्क के सभी भागों के समरूप और संतुलित कार्य के रहस्य को समझता है और इस प्रकार वह शांति, संतुलन और सामंजस्य का अनुभव करता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम के लिए लगातार सावधानीपूर्ण ध्यान और दृढ़निश्चय की आवश्यकता होती है। इसकी उर्जाओं को सूक्ष्मता और अति संवेदनशीलता के साथ श्वास को अनुशासित करने के लिए प्रवाहित करना होता है ताकि श्वास, शरीर और मस्तिष्क को आध्यात्मिक बनाया जा सके।

नाड़ीशोधन प्राणायाम अतिकोमल समायोजन है। मस्तिष्क और अंगुलियों को मिलाकर अंतः श्वास और बाह्य श्वास के प्रवाह के लिए कार्य करना चाहिए। जबकि उन्हें लगातार एक दूसरे के साथ तालमेल रखना चाहिए। मस्तिष्क को सुस्त, कठोर और असंवेदनशील नहीं होना चाहिए अन्यथा अंगुलियां, कड़ी, चौड़ी और असंवेदनशील होंगी और इस प्रकार श्वास का प्रवाह सूक्ष्मगति का न होगा। मस्तिष्क और अंगुलियों को श्वास के प्रवाह में लय अथवा अशांति के किसी परिवर्तन को देखने के लिए सचेत होना चाहिए। इस अध्ययन से बाह्य नासारंध्रों पर अंगुलियों के समायोजन में सहायता मिलती है और यह अध्ययन उन्हें निष्क्रिय बना देता है। इस प्रकार श्वास की सही मात्रा अंदर और बाहर आती जाती है। यदि अंगुलियां अपनी संवेदनशीलता खो बैठें तो मस्तिष्क उन्हें सचेत होने के लिए संदेश देता है। यदि मस्तिष्क असावधान है तो अंगुलियां अपनी चेतनता खो बैठती हैं और नासारंध्रों से श्वास का अपेक्षाकृत अधिक भाग निकाल देती हैं। इस प्राणायाम से मस्तिष्क एक बार फिर सचेत हो जाता है।

पूरक क्रिया और रेचक क्रिया के दौरान श्वास की ध्वनि, प्रतिध्वनि और प्रवाह का लगातार मापन करना चाहिए और सूक्ष्म ध्यान से उनका समायोजन करना चाहिए तथा नासाद्वारों के सिरे और नीचे के किनारों से कोमल गतिसंचलन किया जाना चाहिए। इससे साधक को नासारंध्र द्वारा वायु के प्रवाह का सही मार्ग खोजने में और संगत स्थितियों में सही तरीके से अंगुलियों के अग्रभागों को संतुलित करने के लिए ध्यान केंद्रित करने में सहायता मिलती है। यदि ध्वनि में रूखापन है तो मस्तिष्क किसी अन्यत्र विषय पर सक्रिय है और तब अंगुलियों के अग्रभाग संवेदनशील नहीं रहते। यदि श्वास सरस है तो मस्तिष्क शांत और सावधान रहता है तथा अंगुलियों के अग्रभाग संवेदनशील रहते हैं। पूरक क्रिया की शीत और नमीपूर्ण सुगंधि को और रेचक क्रिया की गर्मी को महसूस करें जिसमें सुगंध नहीं होती। इस संवेदनशीलता का विकास करना चाहिए क्योंकि इसके बिना प्राणायाम का अभ्यास यांत्रिक और प्रभावकारी नहीं है।

इसलिए नाड़ीशोधन प्राणायाम सभी प्राणायामों में सबसे अधिक कठिन, जटिल और सूक्ष्म है। यह स्वतः परीक्षण और नियंत्रण में अंतिम रूप से संवेदनशील है जब यह सूक्ष्मतम स्तर पर शुद्ध किया जाता है तो यह सबसे आंतरिक आत्मा की ओर ले जाता है इसलिए यह प्राणायाम अपने सूक्ष्म केंद्रीय और सूक्ष्म ध्यान से सर्वप्रथम धारणा की ओर उन्मुख होता है और इसके बाद ध्यान की ओर उन्मुख होता है।

नाड़ीशोधन का प्रयत्न तब तक न करें जब तक कि आपकी नासिका झिल्लियों में संवेदनशीलता का विकास न हो जाए और जैसा कि पहले ही बताया गया है उन प्राणायामों के अभ्यास से आपकी अंगुलियों की दक्षता न बढ़ जाए।

अंगुलियों के अग्रभागों के आंतरिक किनारे पूरक क्रियाओं के दौरान अंतःश्वास के प्रवाह के लिए और बाह्य किनारे रेचक क्रियाओं के दौरान बाह्य श्वास के प्रवाह के लिए उपयोग किए जाते हैं। फिर भी पूरक क्रिया के दौरान बाह्य किनारों पर और रेचक क्रिया के दौरान आंतरिक किनारों पर दबाव को शिथिल न करें। आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 28 से 30 तक को देखें (चित्र 139)।

अंगुलियां नासारंध्रों पर बराबर रखी जाती हैं।

नाड़ीशोधन प्राणायाम की उच्च अवस्थाओं में कुंभक क्रिया आंतरिक और बाह्य कुंभक क्रिया और बंध प्रारंभ किए जाते हैं।

नाड़ीशोधन अत्यधिक वैचारिक प्राणायाम है अतः नासिका को नीचे झुकाकर सिर नीचा करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। नासारंध्रों पर अंगुलियों को अशांत न करें और नासिका अस्थि के साथ संपर्क शिथिल न करें। जब सिर नीचा किया जाता है तो सीना अचेतन रूप से ही अंदर धंस जाता है। इस बात पर ध्यान रक्खें कि ऐसा न हो। जब सिर नीचे आए तो सीने को ऊपर उठाएं और सावधान रहें।

सिर के और अधिक नीचे करने से साधक को यह महसूस होगा कि फुफ्फुस पूर्णतया वायुपूरित हैं अथवा नहीं। यदि दोनों के उच्च भाग खाली हों तो उन्हें पूर्णतया भरने के लिए अपेक्षाकृत अधिक श्वास अंदर लें। सीने को ऊपर उठाए और सावधान

रहें।

जब सिर सरलता से नीचे झुकाया जाता है और सीने को ऊपर उठाया जाता है तब गणक अग्र मस्तिष्क मौन हो जाता है और वैचारिक पश्चमस्तिष्क सक्रिय हो जाता है।

आंतरिक कुंभक क्रिया के दौरान यदि साधक मौन अवस्था में शांति महसूस करें तो इसका अर्थ यह है कि उसकी कुंभक क्रिया की क्षमता पूरी हो चुकी है अथवा चिबुक आगे बढ़ गई है अथवा बंद नासारंध्रों में से अनजाने कुछ श्वास बाहर निकल गई है। यदि इनमें से कुछ भी महसूस हो तो फिर श्वास लें, सिर को और नीचा झुकाएं और तब श्वास को रोकें। इससे साधक का शरीर गतिमान हो जाएगा और उसका मस्तिष्क विचारशील होगा। उसका अहं झुक जाएगा और उसकी बुद्धि आत्मा के प्रति समर्पित होगी। दूसरी ओर उड्डीयान की सहायता से की गई कुंभक क्रिया साधक के शरीर और मन को गतिशील, कंपायमान और सचेत बनाती है जबकि उड्डीयान के बिना बाह्य कुंभक क्रिया दोनों को शांत और वैचारिक बनाती है।

अवस्था एक (क)

यहां दोनों ही नासारंध्र पूरक क्रिया और रेचक क्रिया में अधखुले रखे जाते हैं।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें।

2. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं जैसा कि आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में व्याख्या की गई है और अंगूठे, अनामिका और तर्जनी अंगुलियों से दोनों नासिकद्वारों को कम चौड़ा करें (चित्र 110)। कुछ ही खुले किंतु नियंत्रित नासारंध्रों में से पूर्णतया श्वास निकालें।

3. अब श्वास लें लेकिन नासिका मार्गों की चौड़ाई को अशांत न करें। नासापुट और अंगुलियों को स्थिर रखें ताकि सिर झुकने से बच सके।

4. दोनों नासारंध्रों में श्वास के प्रवाह को समान रखें और उसे सीने की गतिशीलता के साथ समकालिक रखें। श्वास कोमल, धीमी गति वाली और सरल होनी चाहिए। फुफ्फुसों को लबालब भर लें।

5. इसके बाद श्वास को एक या दो सैकिंड के लिए रोकें ताकि रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) के लिए अंगुलियों का समायोजन हो सके।

6. कोमलता, धीमी गति और सरलता से श्वास निकालें तथा समान लय बनाए रखें। आंतों के पिंजर के विस्तार और प्रसार की शिथिलता के साथ रेचक क्रिया के प्रवाह को समकालिक करें। अन्य शब्दों में, सीने को यकायक न धंसने दें।

7. जैसे-जैसे अभ्यास में सुधार होता जाए तैसे-तैसे मार्गों को अधिकाधिक कम चौड़ा करते रहें ताकि श्वास अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता से प्रवाहित हो सके। मार्ग

जितने ही कम चौड़े होंगे, अपेक्षाकृत उतना ही अधिक श्वास पर नियंत्रण होगा।

8. एक पूरक क्रिया और एक रेचक क्रिया मिलकर एक चक्र पूरा करते हैं। 10 से 15 मिनट तक इन्हें दोहराएं और अंत: श्वास के साथ इन्हें समाप्त करें। हाथ को नीचा करें, सिर को ऊंचा उठाएं और फिर शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

यह आनंदकारी प्राणायाम अंगुलियों और नासिका झिल्लियों को प्रशिक्षित करता है ताकि वे अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म समायोजन के लिए अधिकाधिक संवेदनशील हो सकें। मन अंगुलियों, नासिका मार्ग और श्वास पर केंद्रित होने के लिए लगाया जाती है और इस प्रकार वह एक बिंदु वाला हो जाता है।

अवस्था एक (ख)

यह अवस्था सूर्यभेदन और चंद्रभेदन प्राणायाम का समायोजन है जिसमें कुंभक क्रियाएं नहीं की जातीं। यहां अंत: और बाह्य श्वास वैकल्पिक नासारंध्रों द्वारा आती और जाती है। इन्हें आंगुलिक प्राणायाम से नियंत्रित किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें।

2. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं जैसा कि आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में व्याख्या की गई है।

3. बांए नासारंध्र को पूर्णतया बंद कर लें और इसमें नासापट या दाहिनी ओर के मार्ग को अशांत न होने दें। दाहिना नासारंध्र कम चौड़ा करें। इसके बाह्य भाग को पट के पास लाएं और इसमें नासिका की स्थिति को अशांत न होने दें (चित्र 111)

4. दाहिने नासारंध्र में से श्वास निकालें।

5. इनमें से धीमी गति और स्थिरता से श्वास लें और इसके मार्ग की चौड़ाई को अशांत न होने दें। पट और अंगुलियों को स्थिर रखें। बाएं नासारंध्र में से कोई भी श्वास न लें।

6. दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास का प्रभाव बनाए रखें और उसे सीने की गति संचलनों के साथ समकालिक करें।

7. जब फुफ्फुस वायु पूरित हो जाएं तब नासापट अथवा बाएं नासारंध्र को चलाए बिना दाहिने नासारंध्र को पूर्णतया बंद कर लें।

8. एक या दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकें तथा रेचक क्रिया (नि:श्वसन) के लिए अंगुलियों को समायोजित करें।

9. बांए नासारंध्र द्वारा मद्धिम गति और स्थिरता से श्वास निकालें तथा पसली पिंजर के धीमे एवं शिथिल विस्तार और प्रसार के साथ बाह्य श्वास के प्रवाह को

समकालिक करें (चित्र 112)।

10. जब फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से खाली हो जाएं, तब श्वास को एक सैकिंड तक रोकें ताकि बाएं नासारंध्र द्वारा अंतःश्वसन के लिए अंगुलियां तैयार हो सकें और उनका समायोजन हो सके।

11. पट अथवा बांए नासारंध्र के मार्ग को अशांत किये बिना ही दाहिने नासामार्ग को बंद कर लें और बांए मार्ग को कम चौड़ा करें (चित्र 112)।

12. अब बांए नासारंध्र द्वारा श्वास लें जैसा कि ऊपर पैरा 4 और 6 में बताया गया है परंतु शब्द 'दाहिने' को 'बांए' और इसके विपरीत पढ़ें।

13. जब फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भर जाएं तब बांए नासारंध्र को पूर्णतया बंद कर लें और नासापट अथवा दाहिनी और मार्ग को अशांत न करें।

14. एक या दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकें जैसा कि ऊपर पैरा 8 में बताया गया है।

15. दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास बाहर निकालें (चित्र 111) जैसा कि ऊपर पैरा 9 में दिया गया है। यह देखें कि कोई भी श्वास बांए नासारंध्र द्वारा बाहर नहीं निकलती है।

16. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस हों, तब श्वास को एक या दो सैकिंड के लिए रोकें ताकि अंतः श्वसन के लिए अंगुलियों को तैयार कर सकें। उन्हें फिर समायोजित करें और इसके बाद ऊपर बताए गये पैरा 3 के अनुसार दोहराएं।

17. श्वास का क्रम इस प्रकार रहता है : (क) दाहिने नासारंध्र द्वारा फुफ़्फ़ुसों में जो भी श्वास हों, उसे निकालें; (ख) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (ग) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें। (घ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास लें। (ङ) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (च) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (छ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें और इसी प्रकार यह क्रम बनाए रखें।

18. यह चक्र (ख) पर प्रारंभ होता है और इसका अंत (ङ) पर होता है। इसे दस-पंद्रह मिनट तक दोहराएं तथा दाहिने नासारंध्र द्वारा पूरक क्रिया करके इसको समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

कोमल रूप से अंगुलियों का चलाना और मार्गों के कम चौड़े करने के कार्य के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। अतः इस अवस्था के व्यवहार के लिए साधक को धारण की आवश्यकता होती है।

अवस्था दो (क)

अवस्था एक (क) के सामन ही यह अवस्था होती है और इसमें मूलबंध सहित अंतर कुंभक को प्रारंभ किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें।

2. अवस्था एक (क) के पैरा 2 से 4 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें (चित्र 110)।

3. दोनों नासारंध्रों को बंद करें ताकि श्वास बाहर न निकल पाए और मूल बंध के साथ 20 सैकिंडों के लिए श्वास रोकें (चित्र 145)।

4. अवस्था एक (क) के पैरा 6 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए पूरक क्रिया (बाह्य श्वसन) के लिए अंगुलियों को फिर से समायोजित करें ताकि फुफ्फुस खाली हो जाएं।

5. यदि श्वास के अन्दर लेने और बाहर निकलने के लिए प्रवाह, लय और समय अस्त व्यस्त हो जाते हैं तो इसका अर्थ यह है कि आपने अपनी क्षमता से अधिक अभ्यास किया है अथवा आपने कुंभक के दौरान श्वास को बाहर निकल जाने दिया है यदि प्रथम कुंभक समय को कम करता है और यदि दूसरा यह सुनिश्चित करता हें कि दोनों नासारंध्र कुंभक के दौरान उचित रूप से अवरुद्ध हो गए हैं।

6. एक पूरक क्रिया एक अन्तः कुंभक क्रिया और एक रेचक क्रिया मिलकर एक चक्र पूरा करते हैं। इन्हें 10 से 15 मिनट तक दोहराएं और पूरक क्रिया के साथ इसको समाप्त करें। हाथं को नीचा करें, सिर को ऊंचा उठाएं और शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था दो (ख)

यह अवस्था ठीक वैसी ही है जैसी कि अवस्था एक (ख) है किंतु इसमें आंतरिक कुंभक क्रिया और मूलवंध को शामिल किया जाता है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें।

2. आंगुलिक प्राणायाम के अध्याय 22 के पैरा 12 से 22 तक में दी गई विधि के अनुसार दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं।

3. वांया नासारंध्र वंद करें. दाहिना नासारंध्र अंशतः खोलें और उसे उतना कम चौड़ा करें जितना आप कर सकते हैं (चित्र 111) तथा उसमें से श्वास लें। यह क्रिया अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 6 तक में दिये गये सभी अनुदेशों के पालन करने के बाद की जानी चाहिए।

4. जब फुफ्फुस श्वास से भरे हुए हों तब दोनों नासारंध्र बंद कर लें और 20 सैकिंड के लिए मूल बंध के साथ श्वास रोकें (चित्र 145)।

5. बांए नासारंध्र में से रेचक क्रिया (नि:श्वसन) के लिए अंगुलियों को समायोजित करें। दाहिने नासारंध्र को बंद करें। बाएं नासारंध्र को अधखुला रखें और मार्ग को कम से कम चौड़ा करें जितना आप कर सकते हैं (चित्र 112)।

6. बाएं नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें और अवस्था एक (ख) के पैरा 9 में बताई विधि के अनुसार फुफ्फुसों में खाली करें। दाहिने नासारंध्र द्वारा कोई भी श्वास नहीं निकलना चाहिए।

7. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करें तो अवस्था एक (ख) के पैरा 10 से 11 तक में दी गई विधि के अनुसार श्वास रोकें और प्राणायाम करें ताकि बांए नासारंध्र द्वारा अंतःश्वसन के लिए तैयार हो सकें।

8. अब बांए नासारंध्र द्वारा श्वास अन्दर लें जैसा कि ऊपर बताये गये पैरा 3 से 5 तक में निदेश दिये गये हैं लेकिन शब्द 'बांए' के लिए 'दाहिना' और दाहिने के बांया शब्द पढ़ें।

9. जब फुफ्फुस श्वास से भर जाएं तो दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें और ऊपर के पैरा 4 के अनुसार श्वास को रोकें (चित्र 145)।

10. ऊपर के पैरा 5 में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए दाहिने नासारंध्र में से बाह्य श्वसन के लिए अंगुलियों को समायोजित करें परन्तु शब्द 'बांए' के लिए दाहिने और इसके विपरीत शब्द पढ़ें।

11. अवस्था एक (ख) के पैरा 9 में दो गई विधि के अनुसार दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें। कोई भी श्वास बांए नासारंध्र द्वारा नहीं निकलनी चाहिए।

12. जब फुफ्फुस पूर्णतया खाली महसूस करें तो कुछ सैकिंडों के लिए श्वास को रोकें, अंगुलियों को फिर से समायोजित करें फिर इसके बाद ऊपर के पैरा तीन में बताई गई विधि के अनुसार इसे दोहराएं।

13. श्वास-क्रम इस प्रकार है : (क) दाहिने नासारंध्र द्वारा फुफ्फुसों में से वह सब श्वास निकालें जो उनके अंदर है; (ख) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (ग) मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक करें; (घ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (ङ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (च) मूल बंध के साथ अन्तर कुंभक करें; (छ) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (ज) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें और इसी प्रकार यह क्रम बनाएं रखें।

14. यह चक्र (ख) से प्रारंभ होता है और (छ) पर समाप्त होता है। इसे 10 से 15 मिनट तक दोहराएं तथा दाहिने नासारंध्र द्वारा अंतःश्वसन के साथ इसको समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

यह अवस्था साधक को ध्यान के लिए तैयार करती है।

अवस्था तीन (क)

यह अवस्था अवस्था एक (क) के समान है किंतु इसमें उड्डीयान के साथ वाह्य कुंभक क्रिया को शामिल किया गया है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के परा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठ जाएं।

2. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं और अंगूठे, अनामिका तथा तर्जनी अंगुलियों की सहायता से दोनों नासिका-मार्गों को कम चौड़ा करें तथा दोनों कुछ बंद नासारंध्रों द्वारा श्वास निकालें (चित्र 110)।

3. ऊपर बताई गई अवस्था एक (क) पैरा 3 और 4 की तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें।

4. इसके बाद अवस्था एक (क) के पैरा 5 और 6 में बताई गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास बाहर निकालें।

5. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें और 15 सेकिंडों के लिए उड्डीयान सहित बाह्य कुंभक क्रिया करें अथवा यह क्रिया उतने समय तक करें जितना आप कर सकते हैं (चित्र 146)।

6. उड्डीयान पकड़ को शिथिल करें, अंगुलियों को फिर से समायोजित करें और ऊपर दिए गए पैरा 3 और 4 में उल्लिखित विधि के अनुसार पूरक क्रिया (अंत: श्वसन) और रेचक क्रिया (बाह्य श्वसन) की प्रक्रियाओं का अनुसरण करें। इसके बाद उड्डीयान की सहायता से बाह्य कुंभक की क्रिया को दोहराएं।

7. इसमें श्वास का क्रम इस प्रकार है: (क) दोनों नासारंध्रों द्वारा गहराई से श्वास निकालें; (ख) दोनों मार्गों द्वारा श्वास लें; (ग) दोनों नासारंध्रों द्वारा श्वास निकालें; (घ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें; (ङ) दोनों नासामार्गों द्वारा श्वास लें; (च) दोनों नासामार्गों द्वारा श्वास निकालें; (छ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें और इसी प्रकार यह क्रम बनाए रखें।

8. एक पूरक क्रिया, एक रेचक क्रिया, और उड्डीयान के साथ एक बाह्य कुंभक क्रिया मिलकर इस अवस्था का एक चक्र पूरा करते हैं। 10 से 15 मिनट तक इस क्रिया को दोहराएं और पूरक क्रिया के साथ इसे समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था तीन (ख)

यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की अवस्था है जैसी कि अवस्था एक (ख) है किन्तु इसमें उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक क्रिया शामिल की गई है।

तकनीक

1. उज्जायी की अवस्था पांच के पैरा 1 से 7 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आसन में बैठें।

2. दाहिने हाथ को नासारंध्रों तक लाएं जैसी कि पहले व्याख्या की गई है और अवस्था एक (ख) के पैरा 3 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए श्वास लें। (चित्र 111)

3. जब फुफ्फुसों में पूर्णतया श्वास भर जाए तब दाहिने नासारंध्र को बंद कर दें और अवस्था एक (ख) के पैरा 7 और 8 में बताई गई विधि के अनुसार एक सेकिंड के लिए श्वास को रोकें।

4. अवस्था एक (ख) के पैरा 9 में दी गई विधि के अनुसार बांए नासारंध्र द्वार श्वास निकालें (चित्र 112)। दाहिने नासारंध्र द्वारा कोई भी श्वास बाहर न निकलने दें।

5. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें और पंद्रह सेकिंड के लिए उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें अथवा उतनी देर तक यह क्रिया करें जितनी देर आप कर सकते हैं। (चित्र 146)

6. इसके बाद उड्डीयान की पकड़ शिथिल करें, दाहिने नासारंध्र को बंद करें और बांए नासारंध्र द्वारा पूरक क्रिया (अंतः श्वसन) के लिए अंगुलियों को फिर से समायोजित करें। (चित्र 112)

7. बांए नासारंध्र के मार्ग को कम चौड़ा करें और धीरे-धीरे आसानी तथा सुगमता से श्वास लें।

8. जब फुफ्फुसों में पूर्णतया वायु भर जाए तब अंगुलियों को फिर से समायोजित करें। बांए नासारंध्र को बंद करें और दाहिने नासारंध्र के द्वारा श्वास निकालें (चित्र 111)।

9. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब दोनों नासारंध्रों को बंद कर लें और पंद्रह सेकिंड के लिए उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें अथवा यह क्रिया उतने समय तक के लिए करें जैसा कि पहले बताया गया है (चित्र 146)। इसके बाद उड्डीयान की पकड़ को शिथिल करें।

10. दाहिने नासारंध्र द्वारा पूरक क्रिया (अंतः श्वसन) के लिए उंगलियों को फिर से समायोजित करें। बाएं नासारंध्र को पूर्णतया बंद करें और इसी क्रम को बराबर दोहराएं।

11. श्वास क्रम इस प्रकार है: (क) दाहिने नासारंध्र से गहराई से श्वास निकाल; (ख) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (ग) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (घ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें; (ङ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (च) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (छ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें; (ज) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें और इसी प्रकार यह क्रम बनाए रखें।

12. यह चक्र (ख) पर प्रारंभ होता है और (छ) पर समाप्त होता है। दस से

पंद्रह मिनट तक यह क्रिया दोहराएं, रेचक क्रिया के साथ इस क्रिया को प्रारंभ करें और दाहिने नासारंध्र द्वारा अंतःश्वसन के साथ समाप्त करें। इसके वाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

उड्डीयान पकड़ के कारण उदरीय अवयव फिर से सशक्त हो जाते हैं तथा अपान वायु, प्राण वायु के साथ मिल जाती है ताकि भोजन की पाचन शक्ति और शरीर भर में ऊर्जा के वितरण का विकास हो सके।

अवस्था चार (क)

यह उच्च प्राणायाम है। इसमें अवस्था दो (क) और तीन (क) का सम्मिलन होता है।

तकनीक

1. ऊपर की अवस्था एक (क) के पैरा 1 से 4 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी आसन में वैठ जाएं।

2. जव फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भरे हों तव दोनों नासारंध्रों को पूर्णतया वंद कर लें और वीस सेकिंड के लिए मूल वंध के साथ आंतरिक कुंभक करें (चित्र 145)।

3. उच्छ्वसन के लिए अंगुलियों को फिर से नियोजित करें और अवस्था एक (क) के पैरा 6 में दी गई तकनीक का अनुसरण करते हुए श्वास निकालें।

4. जव फुपफुस खाली महसूस करें तव दोनों नासारंध्रों को वंद कर लें। पंद्रह सेकिंड के लिए उड्डीयान के साथ वाह्य कुंभक करें (चित्र 146)।

5. इसके वाद उड्डीयान पकड़ को शिथिल करें और पैरा 1 में दी गई विधि के अनुसार श्वास लें।

6. श्वास का क्रम इस प्रकार है : (क) दोनों नासारंध्रों द्वारा श्वास निकालें; (ख) दोनों नासारंध्रों द्वारा श्वास लें; (ग) मूल वंध के साथ आंतरिक कुंभक करें; (घ) दोनों नासारंध्रों द्वारा श्वास निकालें; (ङ) उड्डीयान के साथ वाह्य कुंभक क्रिया करें; (च) दोनों नासारंध्रों द्वारा श्वास लें और इस प्रकार यह क्रम वनाए रखें।

7. इसमें चक्र (ख) पर प्रारंभ होता है और (ङ) पर समाप्त होता है। दस से पंद्रह मिनट तक इसे दोहराएं और पूरक क्रिया (अंतःश्वसन) के साथ समाप्त करें। इसके वाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

अवस्था चार (ख)

इस माला में यह प्राणायाम सर्वोच्च प्रकार का है। इस प्राणायाम में अवस्थाएं दो (ख) और तीन (ख) का संयोजन है और इसके साथ ही प्रत्येक अंतःश्वास और वाह्य-श्वास के वाद कुंभक क्रिया भी सम्मिलित है।

तकनीक

1. अवस्था एक (ख) के पैरा 1 से 6 तक में दी गई तकनीकों का अनुसरण करते हुए किसी भी आसन में बैठें और बांए नासारंध्र को बंद रखें (चित्र 111)।

2. जब फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भरे हुए हों तब दोनों नासारंध्रों को बंद करें और 20-25 या 30 सेकिंड के लिए मूल बंध के साथ आंतरिक कुंभक क्रिया करें। (चित्र 145)

3. रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) के लिए अंगुलियों को फिर से समायोजित करें। दाहिने नासारंध्र को बंद करें और बांए नासारंध्र को कम चौड़ा करें (चित्र 112)। बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें। श्वास-मार्ग को कम चौड़ा करें जितना कि आप कर सकते हैं और इस क्रिया के लिए अवस्था एक (ख) के पैरा 9 में दी गई तकनीक का अनुसरण करें।

4. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब दोनों नासारंध्रों को बंद करें और 15 सेकिंड के लिए उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें (चित्र 146)। इसके बाद उड्डीयान की पकड़ को शिथिल करें और अंतःश्वसन के लिए अंगुलियों को फिर से समायोजित करें।

5. अब दाहिने नासारंध्र को बंद करें और बांए नासारंध्र को कम चौड़ा करें (चित्र 112)। बाएं नासारंध्र द्वारा धीरे-धीरे सरलता और सुगमता से श्वास लें।

6. जब फुफ्फुस पूर्णतया श्वास से भर जाएं तब दोनों नासारंध्रों को बंद करें और 20 से 30 सेकिंड के लिए मूलबंध के साथ आंतरिक कुंभक करें (चित्र 145)।

7. रेचक क्रिया (उच्छ्वसन) के लिए तैयारी करें और अंगुलियों को फिर से समायोजित करें। बांए नासारंध्र को बंद करें। अंगूठे के अग्रभाग की पकड़ को शिथिल करें और दांए नासारंध्र को कम चौड़ा करें (चित्र 111)। उस समय तक श्वास बाहर निकालें जब तक कि फुफ्फुस खाली न हो जाएं।

8. जब फुफ्फुस खाली महसूस करें तब दोनों नासारंध्रों को बंद करें और 15 सेकिंड के लिए बाह्य कुंभक और उड्डीयान करें (चित्र 146)। इसके बाद उड्डीयान की पकड़ शिथिल करें और पूरक क्रिया के लिए अंगुलियों को फिर से समायोजित करें।

9. बांया नासारंध्र बंद करें और दांए नासारंध्र से श्वास लें जैसाकि ऊपर दिए गए पैरा 1 में बताया गया है और यह क्रिया इसी प्रकार करते रहें।

10. श्वास का क्रम इस प्रकार है : (क) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (ख) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (ग) मूलबंध के साथ आंतरिक कुंभक करें; (घ) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (ङ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें; (च) बांए नासारंध्र द्वारा श्वास लें; (छ) मूलबंध के साथ आंतरिक कुंभक करें; (ज) दांए नासारंध्र द्वारा श्वास निकालें; (झ) उड्डीयान के साथ बाह्य कुंभक करें; (ण) दाहिने नासारंध्र द्वारा श्वास लें और इसी प्रकार यह क्रम बनाए रखें।

11. इस अवस्था में यह चक्र (ख) से प्रारंभ होता है और (झ) पर समाप्त

होता है। 10 से 15 मिनट के लिए इसे दोहराएं और दाहिने नासारंध्र द्वारा पूरक क्रिया (अंत:श्वसन) से समाप्त करें। इसके बाद शवासन में लेट जाएं (चित्र 182)।

प्रभाव

कुंभक क्रिया के दौरान मूल और उड्डीयान बंधों के अभ्यास से साधक की नाड़ियां स्वच्छ और मजबूत होती हैं ताकि वह जीवन के सुख-दुःख सह सकें और ध्यान के लिए तैयार हो सकें।

नाड़ीशोधन प्राणायाम में प्राण के गहन भेदन के कारण अन्य प्रकार के प्राणायाम की अपेक्षा रक्त को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की सप्लाई मिलती है। नाड़ियां शांत और शुद्ध हो जाती हैं तथा मन स्थिर और प्रांजल हो जाता है।

इसके अभ्यास से शरीर गर्म रहता है, रोम मिट जाते हैं, शक्ति प्रदान की जाती है और शांति आ जाती है।

पूरक क्रिया द्वारा ब्रह्मांडीय ऊर्जा से सशक्त ऊर्जा ग्रहण की जाती है और यह सशक्त चक्रों में प्रवेश करती है तथा ग्रंथियों को पोषक तत्व देती है। मस्तिष्क के श्वास-प्रश्वास नियंत्रण केंद्र को उत्तेजना प्राप्त होती है और वह ताजा, स्वच्छ और शांत हो जाता है। बुद्धिमत्ता का प्रकाश मस्तिष्क और मन को साथ ही साथ आलोकित करता है। यह सही रहन-सहन, सही विचार, तीव्र कार्य और ठोस न्याय की ओर उन्मुख करता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम की तालिका

अवस्था	पूरक	अंतर कुंभक	रेचक	बाह्य कुंभक
	दो ना ग्रं बं	मू बं	दो ना ग्रं बं	उड् बं
एक क	√		√	
दो क	√	20 से	√	
तीन क	√		√	15 से
चार क	√	20 से	√	15 से

अवस्था	पूरक दा ना	अं कुं	रेचक बा ना	बा कुं	पूरक बा ना	अं कुं	रेचक दा ना	बा कुं
एक ख	√		√		√		√	
दो ख	√	20 से	√		√	20 से	√	
तीन ख	√		√	15 से	√		√	15 से
चार ख	√	20 से	√	15 से	√	20 से	√	15 से

दो ना ग्रं बं—दोनों नासारंध्र ग्रंशतः बंद

मू बं—मूल बंब

उड् बं—उड्डीयान बंध

से—सेकिंड

दा ना—दांया नासारंध्र

बा ना—बांया नासारंध्र

बा कुं—बाह्य कुंभक

भाग दो

स्वतंत्रता और परमानंद

29

ध्यान

1. ध्यान का अर्थ तल्लीनता है। यह आत्म-अध्ययन, मनन, सचेत अवलोकन अथवा अंतरात्मा की खोज है। यह शरीर की भौतिक प्रक्रियाओं का अवलोकन, मानसिक दशाओं का अध्ययन और उनका गूढ़ चिंतन है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति अपने अंतरतम में भी झांके। ध्यान आत्मा की खोज है।

2. ध्यान वह है जब बुद्धि और हृदय की शक्तियां सुसंगत रूप से सम्मिश्रित कर ली जाती हैं। संपूर्ण सृजन इसी से आगे बढ़ता है और इसके अच्छे तथा सुंदर परिणाम मानव जाति को लाभ पहुंचाते हैं।

3. ध्यान गहन निद्रा के समान है परंतु इसमें कुछ अंतर है। गहन निद्रा की शांति अचेतन आत्म अभिज्ञान तथा व्यक्तित्व की विस्मृति का परिणाम है जबकि ध्यान से उसी समय शांति आती है जब साधक बराबर सावधान और सचेत होता है। साधक सभी क्रियाकलापों के लिए साक्षी बना रहता है। गहन निद्रा अथवा पूर्ण तल्लीनता में कालक्रम और मनोवैज्ञानिक काल का कोई अस्तित्व नहीं होता। निद्रा में शरीर और मन छिन्न-भिन्न अवस्था से स्वस्थ होते हैं तथा जागने पर फुर्ती महसूस करते हैं। ध्यान में साधक प्रबुद्धता का अनुभव करता है।

4. ध्यान विचारक के पूर्ण एकात्म की स्थिति है जिसमें मनन की क्रिया और उसकी विषयवस्तु में पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। इस स्थिति में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद मिट जाता है। साधक अनुनादी, सचेत और संतुलित हो जाता है। वह भूख, प्यास, निद्रा और काम वासना तथा इच्छा, क्रोध, लाभ, आसक्ति, गर्व और द्वेष से मुक्त हो जाता है। शरीर और मन या मन और आत्मा के द्वैत भाव से वह मुक्त रहता है। उसकी दृष्टि उसकी वास्तविक आत्मा को प्रतिबिंबित करती है जैसाकि भलीभांति पालिश किया हुआ दर्पण होता है। यह आत्मदर्शन है और यही आत्मा का प्रतिबिंब है।

5. प्रभु ईसा ने कहा था कि मनुष्य केवल रोटी से ही जीवित नहीं रहता बल्कि उस प्रत्येक शब्द के सहारे जीता है जो परमात्मा के मुख से उच्चरित होता है। जीवन

के अर्थ पर मनन करने के बाद मनुष्य इस बात से आश्वस्त हो जाता है कि उसकी आत्मा में एक ऐसी शक्ति या प्रकाश निवास करता है जो उससे कहीं अधिक महान् है। फिर भी वह अपने जीवन में अनेक चिंताओं और संदेहों से आक्रांत रहता है। वह कृत्रिम सभ्यता के वातावरण में फंसकर जीवन-मूल्यों का व्यर्थ अर्थ लगाता रहता है। उसके शब्द और कार्य उसके विचारों के प्रतिकूल होते हैं। वह इन द्वैतभावों से घबराया रहता है। वह यह महसूस करता है कि जीवन विरोधाभासों—दुःख-सुख, अप्रसन्नता-प्रसन्नता, संघर्ष-शांति—से भरपूर है। इन परस्पर विरोधाभासों को देखते हुए वह उनमें संतुलन लाने और स्थिरता की अवस्था प्राप्त करने का प्रयास करता है जिससे वह दर्द, उदासी और संघर्ष से मुक्ति प्राप्त कर सके। वह अपनी खोज में ज्ञान और भक्ति के तीन नेक उपायों की खोज करता है जो उसे यह शिक्षा देते हैं कि केवल उसका आंतरिक प्रकाश ही उसका पथ-प्रदर्शक है जिसके द्वारा वह अपने जीवन पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। इसी आंतरिक प्रकाश तक पहुंचने के लिए वह चिंतन अथवा ध्यान की ओर प्रवृत्त होता जाता है।

6. मानव, विश्व और परमात्मा की वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट जानने के लिए साधक को शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इसके बाद वह अकृत्रिम और कृत्रिम में भेद कर सकता है। उस साधक के लिए जो मुक्ति चाहता है, तीन सत्यों (तत्वत्रय)—आत्मा (चित्), जगत् (अचित्) और परमात्मा (ईश्वर) का ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार का ज्ञान साधक को जीवन की समस्याओं और उनके समाधान के लिए अंतर्दृष्टि देता है और उसकी आत्मिक साधना को सशक्त करता है। केवल अध्ययन से अर्जित ज्ञान ही उसे मुक्ति की ओर उन्मुख नहीं करेगा। शास्त्रों में वर्णित उपदेशों में साहस और अविचलित विश्वास रखने तथा इन्हीं को व्यवहार में लाने की क्रिया बताई गई है, जब तक वे उसके दनिक जीवन के अंग न बन जाएं और साधक अपनी इंद्रियों के प्रभाव से मुक्ति न प्राप्त कर ले। शास्त्रों का ज्ञान और साधना ऐसे दो पंख हैं जिनके सहारे साधक मुक्ति की ओर उड़ान भरता है।

7. मानव दो मार्गों की ओर झुकता है : एक मार्ग ऐसा है जो उसे विलासपूर्ण इच्छाओं और इंद्रिय संतोष की पूर्ति के लिए पतन की ओर ले जाता है जिससे वह बंधन और विनाश की ओर उन्मुख हो जाता है और दूसरा मार्ग ऐसा है जो उसे पवित्रता तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए ऊंचा उठाता है और उसका मार्गदर्शन करता है। इच्छाएं उसके मन को आच्छादित कर लेती हैं और उसकी सत्य आत्मा को छिपा लेती हैं। यह केवल मन ही है जो पराधीनता अथवा मुक्ति की ओर उन्मुख होता है। यह उसका तर्क या बुद्धि है जो या तो उसके मन को नियंत्रित करती है अथवा उसे अपने अधिकार में रखती है।

8. अप्रशिक्षित मन निरुद्देश्य होकर सभी दिशाओं में भटकता है। मनन का अभ्यास उसे स्थिरता की दशा में लाता है और इसके बाद उसे अपूर्ण ज्ञान से पूर्ण ज्ञान की ओर उन्मुख करता है। साधक का मन और बुद्धि उसकी इच्छा शक्ति द्वारा एक सम्मिलित टीम के रूप में कार्य करते है। वह अपने विचारों, वाणी और कार्यों के मध्य

सामंजस्य प्राप्त करता है। उसका शांत मन और बुद्धि एकाकी स्थान में दीप के समान आलोकित होती है तथा उसमें सादगी, भोलापन और प्रबुद्धता झलकती है।

9. मानव में महान् क्षमताएं होती हैं जो उसके अंदर सुषुप्त रहती हैं। उसका शरीर और मन उस खाली भूमि के समान होता है जो अभी तक न जोती गई है और जिसमें न बीज बोया गया है। एक बुद्धिमान किसान अपना क्षेत्र (भूमि) जोतता है, उसमें जल और उर्वरक की व्यवस्था करता है, उसमें सर्वोत्तम बीज बोता है, अधिक ध्यान से खेत की देखभाल करता है और अंततोगत्वा अच्छी फसल काटता है। साधक के लिए उसका अपना शरीर, मन और बुद्धि खेत के समान है जिसे वह उर्जा और सत्कर्म से जोतता है। वह ज्ञान रूपी सर्वोत्तम बीज बोता है, भक्ति जल से सिंचन करता है और अथक आध्यात्मिक अनुशासन से देखभाल करता है ताकि वह सामंजस्य और शांति की फसल काट सके। इसके बाद वह अपने खेत का बुद्धिमान क्षेत्रज्ञ (स्वामी) बन जाता है और उसका शरीर एक पवित्र स्थान बन जाता है। सवितर्क द्वारा रोपित सद्विचार के बीजों का अंकुरण उसके मन में स्पष्टता लाता है तथा बुद्धि (सस्मिता) को ज्ञान उपलब्ध कराता है। वह आनंद का घर बन जाता है, जैसे उसकी आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थापित हो गया हो।

10. जिस प्रकार चंद्रमा और बाह्य अंतरिक्ष की यात्रा के लिए वर्षों के कठोर प्रशिक्षण और अनुशासन, गहन अध्ययन, खोज और तैयारी की आवश्यकता रही है इसी प्रकार मानव को अपनी अंतरात्मा तक पहुंचने की आंतरिक यात्रा के लिए अथक परिश्रम की आवश्यकता होती है। अनुशासन और यम तथा नियम के आचार संबंधी और नैतिक नियमों के दीर्घकालिक अबाधित अभ्यास; आसन और प्राणायाम द्वारा शरीर का प्रशिक्षण एवं प्रत्याहार तथा धारणा द्वारा इंद्रियों का दमन—ये सब मन और आंतरिक चेतना अर्थात् ध्यान और समाधि की वृद्धि को सुनिश्चित करते हैं।

11. धारणा शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ पकड़ना या एकाग्रता है। यह एक ऐसा दीप है जो ढका हुआ है और अपने बाहर के क्षेत्र को आलोकित नहीं करता। जब यह आच्छादन हटा लिया जाता है तब दीप सारे क्षेत्र को प्रकाशित कर देता है। यही ध्यान है जो चेतना का प्रसार है। इसी की उपलब्धि के बाद साधक एकीकृत मन प्राप्त कर लेता है और उसकी पूर्ण शुद्धता में गतिशील अबाध चेतना को बनाए रखता है। जिस प्रकार बीजों में तेल और फूलों में सुगंधि होती है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा उसके पूर्ण शरीर में व्याप्त है।

12. ध्यान का प्रतीक कमल है। यह पवित्रता का प्रतीक है। इसके मौन सौंदर्य, ने भारतीय धार्मिक विचार में अपना प्रमुख स्थान बना लिया है। यह अधिकांश हिंदू देवताओं से संबंधित है और उनका स्थान चक्रों में है। ध्यान की अवस्था ठीक उसी प्रकार की होती है जैसे कमल की कली होती है जो अपने आंतरिक सौंदर्य को उस समय तक छिपाए रखती है जब तक उसे पूर्ण खिले हुए कमल में परिवर्तित होने की प्रतीक्षा होती है। जैसे कली अपने देदीप्यमान सौंदर्य को उद्घाटित करने के लिए खिलती है, इसी प्रकार साधक का आंतरिक प्रकाश भी ध्यान द्वारा परिवर्तित होकर

कायापलट कर देता है। वह सिद्धात्मा और एक अंतःप्रेरित ऋषि बन जाता है। वह चिरंतन काल अर्थात् वर्तमान में जीवित रहता है जिसमें भूत और भविष्य की कोई बात ही नहीं उठती।

13. साधक की यह अवस्था निष्क्रियता है जो मनोलय (मनस का अर्थ मस्तिष्क है और लय का अर्थ तल्लीनता अथवा निमज्जन है) के नाम से जानी जाती है। साधक ने पूर्णतया अपनी प्रज्ञा और प्राण को सुव्यवस्थित कर लिया है ताकि वाह्य विचारों के प्रवेश को रोका जा सके। उसकी यह अवस्था गतिशील चेतना से भरपूर होती है। जब दोनों ही आंतरिक और वाह्य विचार स्थिर और मौन हो जाते हैं तब कोई भी भौतिक, मानसिक अथवा वौद्धिक उर्जा व्यर्थ नहीं जाती।

14. ध्यान किसी भी उद्देश्यपरक अवस्था का वैयक्तिक अनुभव है। इस अनुभव को शब्दों में वर्णित करना कठिन है क्योंकि शब्द इस अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त हैं। किसी भी स्वादिष्ट आम का प्रथम ग्रास लेते ही आनंद का अनुभव होता है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यही स्थिति ध्यान की अवस्था की होती है। ध्यान में न तो कुछ देखा जाता है और न किसी की खोज की जाती है क्योंकि आत्मा और उद्देश्य एक हो जाते हैं। अनंत के अमृत का स्वाद लेना चाहिए, परमात्मा की प्रचुर मनोहरता को अपने अंदर ही अनुभव करना चाहिए। तभी जीवात्मा (वैयक्तिक आत्मा) का तादात्म्य परमात्मा (सार्वभौमिक आत्मा) के साथ स्थापित हो जाता है। साधक उपनिषदों द्वारा बताई हुई पूर्णता का अनुभव करता है : वह भी पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। पूर्णता में से पूर्णता का जन्म होता है। यदि पूर्णता में से पूर्णता को निकाल लिया जाए तो इसके वाद पूर्णता ही शेष रह जाती है।

सबीज अथवा सगर्भ ध्यान

नौसिखिया साधक को कभी-कभी ध्यान लगाने की अवस्था में मंत्र जपने का काम दिया जाता है ताकि वह अपने चंचल मन को स्थिर कर सके और अपने मन को सांसारिक इच्छाओं से हटा सके। सर्वप्रथम मंत्रों को ऊंचे स्वर से वोला जाता है और इसके वाद मन ही मन मंत्र का जाप किया जाता है और अंत में मौनता आ जाती है। इसे सबीज-अथवा सगर्भ ध्यान कहा जाता है (बीज का अर्थ वीज है और गर्भ का अर्थ भ्रूण होता है)। मंत्रों का उच्चारण किये विना ही ध्यान में बैठना निर्बीज अथवा अगर्भ ध्यान कहलाता है (उपसर्ग निर् और 'अ' किसी भी वस्तु के अभाव का द्योतक होता है और इसका अर्थ अभाव है, देखें अध्याय 17)।

16. ध्यान की तकनीकों की ओर बढ़ने से पूर्व, साधक को एक ओर इंद्रियों की रिक्तता और शांति के मध्य अंतर करने के लिए सचेत होना चाहिए और दूसरी ओर उसे आत्मा की प्रवुद्धता और शांति की ओर ध्यान देना चाहिए। ध्यान मनन को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है : सात्विक, राजसिक ओर तामसिक। महाकाव्य रामायण के उत्तरकांड में कहा गया है कि राजा रावण और उनके दो भाइयों, कुंभकरण और विभीषण, ने इस पवित्र ज्ञान के अर्जन के लिए अनेक वर्ष लगाए। कुंभकरण के प्रयास

ने उसे मौत के ऐसे गर्त्त में धकेल दिया जो निर्जीवता कहा जा सकता है क्योंकि उसका ध्यान तामसिक था। रावण कामुक प्रयत्नों और आकांक्षाओं से घिर गया क्योंकि उसका ध्यान राजसिक था। केवल विभीषण ही सच्चा और धर्मपरायण बना रहा तथा पाप से दूर रहा क्योंकि उसका ध्यान सात्विक था।

तकनीक

1. ध्यान साधक के पांच कोषों (आवरणों) के अंतरभेदन की ऐसी तकनीक है जो सुव्यवस्थित पूर्णता में उन्हें सम्मिलित करती है।

2. शरीर ब्रह्मपुरी के रूप में माना जाता है जिसके नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं—नेत्र, कान, नासारंध्र, मुख, गुदा और प्रजनन अवयव। कुछ विद्वान इन द्वारों में नाभि और सिर के शीर्ष स्थान को भी जोड़ते हैं और इस प्रकार यह बताते हैं कि शरीर के ग्यारह द्वार होते हैं। ध्यान करते समय इन सभी द्वारों को बंद किया जाता है। इस शरीर रूपी नगर को दस वायु, पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों और सात चक्र अथवा आंतरिक प्रकोष्ठों से नियंत्रित किया जाता है। जैसे किसी भी हार को बनाने के लिए एक ही धागे में मोती पिरोये जाते हैं, इसी प्रकार चक्रों को भी आत्मा के साथ जोड़ा जाता है ताकि एक संपूर्ण व्यक्ति बन सके।

3. ध्यान में, मस्तिष्क को रीढ़ की तुलना में अधिक संतुलित होना चाहिए। इसकी किसी भी स्थिति की असमानता ध्यान की शांति को भंग कर देती है। मस्तिष्क के बांए और दाएं गोलार्ध की उर्जाओं को केंद्र में लाना चाहिए। मस्तिष्क की विचार करने वाली क्रिया रुक जाती है। जैसे कोई शरीर के किसी विशेष अवयव या भाग से उर्जा हटा लेता है ताकि उसे निष्क्रिय बनाया जा सके, इसी प्रकार मस्तिष्क में प्रवाहित होने वाली उर्जा भी कम की जानी चाहिए और इसे हृदय की ओर बढ़ाना चाहिए क्योंकि हृदय आत्मा का स्थान है। ध्यान की तकनीक की कुंजी मस्तिष्क को निष्क्रिय पर्यवेक्षक के रूप में रखने में निहित है।

4. यम, नियम, आसन और प्राणायाम की विभिन्न प्रारंभिक तकनीकें शरीर और मस्तिष्क को ढालती तथा उन्हें शांत और संतुलित करती हैं। शारीरिक और मानसिक अशांति से मुक्त, स्थिर और अस्थायी आसन में शिराओं और धमनियों द्वारा रक्त का संचलन, लसीका तथा प्रमस्तिष्क-रीढ़ संबंधी द्रव्य को मस्तिष्क और सुषुम्ना में बनाए रखना चाहिए। उद्दीपन को कम से कम और यथासंभव समरूप रखना चाहिए। यह संचलन और उद्दीपन की समरूपता मस्तिष्क और मन को ज्ञान तथा अनुभव के एकीकरण को प्राप्त करने के लिए होती है।

5. मस्तिष्क को तीन प्रमुख भागों में बांटा जाता है। प्रमस्तिष्कीय प्रांतस्था, अधश्चेतक और अनुमस्तिष्क। प्रमस्तिष्कीय प्रांतस्था का कार्य विचार, वाणी, स्मृति और कल्पना की क्रिया में निहित होता है। अधश्चेतक आंतरिक अवयवों के क्रियाकलापों को नियमित करता है और सुख तथा दुःख, हर्ष और विषाद, संतोष तथा निराशा की संवेगीय प्रतिक्रियाओं को नियमित करता है। अनुमस्तिष्क

मांसपेशियों के एकीकरण का केंद्र होता है। पश्च मस्तिष्क को ऐसा समझा जाता है कि वह ध्यान में कार्य करता है, वह बुद्धि और स्पष्टता का स्थान होता है।

6. जब ध्यान का अभ्यास किया जाये तब सही और खामोशी से बैठने की कला भौतिक और मानसिक सामंजस्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक होती है।

7. बैठने के लिए कोई भी आरामदायक आसन किया जा सकता है यद्यपि पद्मासन (चित्र 13) आदर्श है।

शरीर का समरेखन

8. जालंधर बंध को किए बिना ही, अध्याय 11 में बैठने की क्रिया के संबंध में दिये गये अनुदेशों का सही तरीके से अनुसरण करें।

9. बिना झटका दिये हुए शरीर का अगला और पिछला भाग समानता, ध्यान से और लयात्मक रूप से उठाएं।

10. रीढ़ को सीधा रखें और सीने को ऊपर उठाएं। इससे श्वास का प्रवाह कम हो जाता है, इससे मस्तिष्क की क्रिया कम हो जाती है और यह स्थिति साधक को सभी प्रकार के विचारों को रोकने के लिए उन्मुख करती है।

11. शरीर को उसी प्रकार सचेत रखें जैसे रेज़र की तीव्र धार पैनी होती है। ऐसी किसी पत्ती के नुकीले किनारे के समान मस्तिष्क को निष्क्रिय, संवेगात्मक और मौन रखें जो हलकी वायु चलने पर भी थिरक उठती है।

12. शरीर के निढाल हो जाने से बौद्धिक सुस्ती आ जाती है और मन उलझा हुआ हो जाता है जिससे शरीर की स्थिरता अशांत हो जाती है। इन दोनों स्थितियों को ही बचाएं।

सिर

13. सिर को दाहिने या बांए, आगे या पीछे, ऊपर या नीचे झुकाये बिना उसके शीर्ष स्थान को छत के समानांतर रखें।

14. यदि सिर झुका हुआ है तो साधक अपने अतीत के बारे में सोच रहा है, इस प्रकार मस्तिष्क सुस्त और तामसिक हो जाता है। यदि सिर ऊपर की ओर उठा हुआ है तो वह भविष्य के बारे में सोच रहा है, इस प्रकार मस्तिष्क राजसिक हो जाता है। यदि सिर को एक ही स्तर के समरूप रखा जाए तो यह वर्तमान के बारे में सोच रहा है और इस प्रकार मस्तिष्क की यह सात्विक (शुद्ध) अवस्था होती है।

नेत्र और कान

15. नेत्र बंद करें और अंतर्दृष्टि रखें, कान बंद करें ताकि वाह्य ध्वनियां सुनाई न दें। तब आंतरिक ध्वनियों को सुनें और उनका अनुसरण करें जब तक कि वे अपने स्रोत में विलीन न हो जाएं। नेत्रों और कानों की अन्यमनस्कता अथवा चेतना

के अभाव से मन में चंचलता आ जाती है। नेत्रों और कानों के बंद करने से साधक परमात्मा में ध्यान करने के लिए तैयार हो जाता है। परमात्मा वास्तव में नेत्र का नेत्र, कान का कान, वाणी की वाणी, मन का मन और ज़ीवन का जीवन है।

16. भुजाओं को कोहनियों पर झुकाएं, हाथों को ऊंचा उठाएं और सीने के सामने हथेलियो को मोड़ तथा अंगूठों को उरोस्थि की ओर रखें। यह आत्मांजलि अथवा हृदयांजलि मुद्रा (चित्र 147) सामने का दृश्य और चित्र 148 पार्श्व दृश्य) कहलाता है।

17. सिर और हृदय के मध्य चक्कर काटती हुई बुद्धि अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न करती है। जब मन चक्कर काटता हो तो हथेलियों को दबाएं ताकि मन आत्मा की ओर केंद्रित हो सके। यदि हथेलियों का दबाव शिथिल हो जाता है तो यह स्थिति इस बात का संकेत है कि मन दोलायमान है। फिर से उन्हें कड़ाई से मिला लें ताकि आत्मा का स्मरण किया जा सके।

18. ध्यान में शरीर, मन, बुद्धि, इच्छाशक्ति, चेतना, अहं और आत्मा का एकीकरण होता है। मन के लिए शरीर, बुद्धि के लिए मन, इच्छा शक्ति के लिए बुद्धि, चेतना के लिए इच्छा शक्ति, मैं अथवा अहं के लिए चेतना और आत्मा (शुद्ध आत्मा) के लिए अहं बाह्य परत मानी जाती है। ध्यान इन सभी कोषों में से अंदर घुसने की प्रक्रिया है। ध्यान में सभी कुछ विलीन हो जाता है, यथा, ज्ञात अज्ञात में अथवा सीमित असीमित में विलीन हो जाते हैं।

19. मन कर्त्ता के रूप में और आत्मा कर्म के रूप में कार्य करती है, फिर भी वास्तविकता यह है कि आत्मा ही कर्त्ता है। ध्यान का उद्देश्य मन को आत्मा में विलीन करना है ताकि सभी अन्वेषण और अनुसंधान समाप्त हो जाएं। इसके बाद साधक अपनी सार्वभौमिकता, शाश्वतता और पूर्णता का अनुभव कर उठता है।

20. ध्यान में आप उतने ही समय तक बैठें जितना आप बैठ सकते हैं और शरीर को निढाल न होने दें। इसके बाद शवासन करें (चित्र 182)।

ध्यान देने योग्य संकेत

1. आसन और प्राणायाम करने के तुरंत बाद ही ध्यान के लिए न बैठें। केवल वही साधक जो अधिक समय तक स्थिरता से बैठ सकते हैं, प्राणायाम और ध्यान दोनों ही एक साथ कर सकते हैं। अन्यथा अगों में दर्द होने लगेगा और मानसिक संतुलन बिगड़ जाएगा।

2. ध्यान करने का सबसे उत्तम समय वही है जब साधक अपने शरीर और मस्तिष्क से ताजा हो अथवा जब सोने के लिए जा रहा हो क्योंकि उस समय साधक शांति महसूस करता है।

3. नेत्रों को ऊपर की ओर न देखने दें क्योंकि इससे श्वास रुक जाती है और नाड़ियों, मांसपेशियों, रक्त कोशिकाओं, सिर और मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न हो

जाता है ।

4. केवल वही व्यक्ति जो सरलता से निराश अथवा दुःखी हो जाते हैं और जिनके मस्तिष्क सुस्त अथवा कमजोर होते हैं, उन्हें भौंहों के मध्य में घूरने की सलाह दी जाती है (चित्र 149-150) और उनसे कहा जाता है कि वे अल्प समय के लिए अपने नेत्र बंद रखें । यह क्रिया ध्यान की अवस्था में चार या पांच बार करनी चाहिए और प्रत्येक प्रयत्न के मध्य में कुछ समय का अंतराल होना चाहिए । इस अभ्यास से मानसिक स्थिरता और बौद्धिक तीव्रता उत्पन्न होती है । फिर भी, रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को इस प्रक्रिया का अनुसरण नहीं करना चाहिए ।

5. उसी क्षण ध्यान को बंद कर देना चाहिए जब शरीर आगे-पीछे और दांए-बांए झुकने लगे अथवा बेहोशी महसूस होने लगे । ध्यान को लगातार नहीं करना चाहिए । यदि ऐसी स्थिति पैदा हो जाए तो इसका अर्थ यह है कि ध्यान का समय उस दिन के लिए समाप्त हो गया है । यदि आप बराबर ध्यान करते रहेंगे तो इससे मानसिक असंतुलन हो जाएगा ।

ध्यान के प्रभाव

1. ध्यान में मन अपने स्रोत की खोज करता है और ठीक उसी प्रकार विश्राम करता है जैसे बच्चा अपनी मां की गोद में विश्राम करता है । ऐसा योगी जो अपने चारों ओर और अपने अंदर में प्रच्छन्न वास्तविकता की खोज करता है, अपने विश्राम स्थल और आध्यात्मिक स्वर्ग की खोज कर लेता है ।

2. ध्यान अग्रमस्तिष्क की विश्लेषणात्मक प्रभावकारी चेतना और पश्च मस्तिष्क की ह्रासोन्मुख उपचेतना अथवा अचेतनता के मध्य की ध्रुवता को मिटाता है । यह कतिपय स्वतः भौतिक कार्यों पर नियंत्रण करता है और उनकी गति धीमी कर देता है जो साधारणतया मस्तिष्क को उभारते हैं, यथा, आंतों के संकुचन, श्वास, प्रश्वास और हृदय की धड़कन । सभी बाह्य उद्दीपन जो साधारणतया विभिन्न इंद्रियों के द्वारा मानवीय चेतना को अशांत करते हैं, कट जाते हैं क्योंकि शरीर के नौ द्वार ध्यान में बंद हो जाते हैं ।

3. ध्यान में मन और पदार्थ दोनों एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं । यह मिश्रण सभी विघ्नकारी विचारों को भस्म कर देता है । साधक गतिशील, सर्जनकर्त्ता और उच्च ध्यानी बन जाता है । उसमें ऊर्जा के न समाप्त होने वाले आरक्षण होते हैं और वह मानवता को अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ बनाने में स्वयं को लगा लेता है।

4. वह नए आयाम का अनुभव करता है जिसमें उसकी ज्ञानेंद्रियां और चित्त नितांत स्पष्ट हो जाता है । वह वस्तुओं को ठीक उसी प्रकार देखता है जैसी कि वे हैं । वह पक्षपात तथा भ्रांतियों से मुक्त हो जाता है । यह जागृतावस्था है । इस अवस्था को सावधानीपूर्वक सजगता कहा जाता है। उसकी आत्मा जागृत हो जाती है किंतु उसकी इंद्रियां नियंत्रण में होती हैं । उसमें प्रज्ञा (ज्ञान), समझ, सूक्ष्मता, स्वतंत्रता और सत्यता कूट-कूट कर भर जाती है । वह अपनी आंतरिक दैवी अग्नि से देदीप्यमान

होता है और अपनी प्रसन्नता, एकता और शांति का प्रसार करता है।

5. साधक उत्तरोत्तर उच्च चेतना की सात अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है। ये अवस्थाएं इस प्रकार हैं: शुभेच्छा (उचित इच्छा), विचारना (सही विचार), तनुमांसा (मन का विलोपन), सत्त्वापत्ति (आत्मज्ञान), असंसक्त (अनासक्त), पदार्थाभाव वस्तु-ओं का न देखना) और ऐसी अवस्था का अनुभव करना जिसकी शब्दों में अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। यह सभी ज्ञान का मूल सार है; शरीर (तन), प्राण (श्वास), मनस् (मन) और विज्ञान (बुद्धिमत्ता) का ज्ञान है, आनुभाविक (अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान), रसात्मकता (विभिन्न संवेगों और विशिष्टताओं को आत्मसात् करते हुए जीवन का समर्पण) और आत्मज्ञान (आत्मा का ज्ञान)।

6. उसकी ज्ञानेंद्रियां अंतर्मुखी हो जाती हैं। उसके विचार शुद्ध हो जाते हैं। वह आसक्ति और भ्रांतियों से स्वतंत्र होकर स्थिर और जीवन्मुक्त (जीवन के बंधनों से मुक्त) हो जाता है।

भगवद्गीता (अध्याय 18, 53-56) में जीवन्मुक्त की अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है: 'उसने अपने पीछे अहं, हिंसा और अभिमान को छोड़ दिया है। वह वासना, क्रोध और लोभ से परे चला गया है। वह निस्वार्थ और शांत बन गया है। वह अनंत के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए सक्षम है। वह जो अनंत में वास करता है और अपनी आत्मा में शांत रहता है, न तो दुःखी होता है और न इच्छाएं रखता है। उसका प्रेम सभी प्राणियों के लिए समान है; वह परमात्मा से सबसे अधिक प्रेम करता है।

7. इस प्रकार, साधक बंधन से आत्ममुक्ति की ओर अपनी यात्रा प्रारंभ करता है। वह अपने शरीर पर विजय पाने के बाद श्वास-ऊर्जा पर अधिकार पाने के लिए अग्रसर होता है। वह जब श्वास-उर्जा (श्वास) पर अधिकार पा लेता है तो अपने मन के गति संचलनों पर नियंत्रण करता है। जब उसका मन स्थिर हो जाता है तब वह ठोस निर्णय लेता है और जब वह ठोस निर्णय लेने लगता है तब सही कार्य करता है, पूर्ण चेतना प्राप्त करता है और प्रबुद्ध हो जाता है। यह प्रज्ञा परा ज्ञान की ओर उन्मुख होती है। इस ज्ञान से वह अपनी आत्मा को परमात्मा के प्रति समर्पित करता है। यह शरणागति योग है जिसे समर्पण का योग भी कहते हैं।

30

शवासन (विश्राम)

1. संस्कृत शब्द 'शव' का अर्थ लाश होता है और आसन को बैठने की क्रिया कहा जाता है। इस प्रकार शवासन एक ऐसा आसन है जो मृत शरीर को उदीप्त करता है और ऐसी अवस्था में पहुंच जाने का अनुभव जागृत कराता है जैसी कि मृत्यु में होती है और यह अनुभव हृदय के उन दर्द तथा संदर्भों को समाप्त करने की स्थिति में भी होता है जिनकी उत्तराधिकारी मांस-मज्जा होती है। इसका अर्थ विश्राम है और इसलिए इससे स्वास्थ्य लाभ होता है। यह रिक्त मन और ध्यानावस्था के सहित पीठ के बल केवल लेटा रहना ही नहीं है और यह खुर्राटे लेने तक ही सीमित नहीं है। यह यौगिक आसनों में सबसे अधिक कठिन आसन है जिस पर अधिकार पाना सबसे कठिन है परंतु यह आसन सबसे अधिक स्फूर्तिदायक और फलदायक होता है।

2. पूर्ण शवासन के लिए पूर्ण अनुशासन की आवश्यकता होती है। कुछ मिनटों के लिए विश्राम करना आसान है परंतु शारीरिक संचलन अथवा बुद्धि का उपयोग किए बिना ऐसा करना कठिन है क्योंकि इसके लिए दीर्घकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रारंभ में, शवासन में अधिक समय तक बने रहने से मस्तिष्क में केवल अधिक बैचेनी ही नहीं होती अपितु शरीर अपने को एक सूखी और मृत लकड़ी के समान महसूस करने लगता है। अंगों की त्वचा पर चुभने वाले संवेग महसूस किए जाते हैं और वे उस स्थिति में अधिक तीक्ष्ण हो जाते हैं, जब यह आसन काफी समय तक किया जाए।

लय

3. यदि शवासन ठीक ढंग से किया जाए तो श्वास का संचलन उसी प्रकार होता है जैसे किसी हार में कोई धागा मोतियों को बांधे रहता है। वे आंते मोतियों के समान हैं जो धीमी गति, अधिक स्थिरता और श्रद्धा से संचलित होती हैं। श्रद्धा का अभिप्राय इसलिए है कि जब साधक इस अवस्था का अभ्यास करता है तब उसका शरीर, श्वास, मन और मस्तिष्क वास्तविक आत्मा की ओर संचलित होते हैं। यह स्थिति उस

मकड़ी के समान है जो जाला बुनकर उसी केंद्र में लौट आती है। इसी समय समाहित चित्त की अवस्था (मन, बुद्धि और आत्मा की धृति) महसूस की जाती है।

4. प्रारंभ में, पसलियां विश्राम नहीं करतीं, श्वास विषम और असमान होती है जबकि मन और बुद्धि चंचल होते हैं। शरीर, श्वास, मन और बुद्धि, आत्मा के साथ नहीं मिल पाते। सही शवासन के लिए शरीर, श्वास, मन और बुद्धि की एकता होनी चाहिए और इस स्थिति में आत्मा का अधिकार होता है। ये चारों आदरपूर्वक आत्मा के समक्ष झुक जाते हैं। इसके बाद चित्त (अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकार या अहं ऐसी अवस्था है जो यह पता लगा लेती है कि 'मैं जानता हूं') समाहित चित्त हो जाता है जिसमें मन, बुद्धि और अहं संतुलित हो जाते हैं। यह स्थिरता की अवस्था है।

5. यह अवस्था शरीर, ज्ञानेंद्रियों और मन के नियंत्रित अनुशासन द्वारा प्राप्त की जाती है। फिर भी इसे मौनता नहीं समझना चाहिए। स्थिरता में दृढ़ता होती है जिसका कारण इच्छा-शक्ति की प्रबलता है। यहां चित्त (चेतना) की धारणा (स्थिरता) बनाए रखने के लिए ध्यान केंद्रित करना चाहिए जबकि मौनता में ध्यान का प्रसार किया जाता है और उसे ध्यानगत (विश्राम की स्थिति) किया जाता है तथा इच्छाशक्ति आत्मा में विलीन हो जाती है। स्थिरता और मौनता के मध्य सूक्ष्म भेद केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। शवासन में इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि सभी पांच कोषों में मौनता प्राप्त की जाए : अन्नमय (शरीर संरचना संबंधी), प्राणमय (शरीर संबंधी), मनोमय (मानसिक अथवा संवेगात्मक); विज्ञानमय (बौद्धिक) और आनंदमय (वरदान का शरीर)। ये कोष व्यक्ति की त्वचा से आत्मा को आच्छादित कर लेते हैं।

6. एक तारा ऊर्जा से स्पंदित होता है और ऊर्जा प्रकाश किरणों में परिवर्तित हो जाती है और इन प्रकाश किरणों को पृथ्वी पर मानव के नेत्रों तक पहुंचने में कई प्रकाश-वर्ष लग जाते है। आत्मा ऐसे ही तारे के समान है और यह मन की रुचियों और इच्छाओं को संप्रेपित करती है और उन्हें अंकित करती है। ये प्रच्छन्न इच्छाएं प्रकाश में परिवर्तित करने वाली तारा-ऊर्जा के समान मन के स्तर को पुन: आच्छादित कर देती हैं जिससे शांति भंग हो सकती है।

7. सर्वप्रथम, शरीर की शांति प्राप्त करना सीखें। इसके बाद श्वास के प्रच्छन्न गति संचलनों पर नियंत्रण प्राप्त करें। दूसरी बार मन की शांति तथा संवेगों के बारे में और इसके बाद बुद्धि के बारे में सीखें। तत्पश्चात् आत्मा के मौन के बारे में समझें और अध्ययन करें। यह तब तक करें जब तक साधक का अहंकार (अहं अथवा लघु आत्मा) उसकी आत्मा के साथ विलीन न हो जाए। मन और बुद्धि के उतार-चढ़ाव बंद हो सकते हैं, इसके बाद 'अहं' अथवा अहंकार विलुप्त हो जाता है तथा शवासन से विशुद्ध वरदान का अनुभव होता है।

चेतना की अवस्थाएं

8. योग चेतना की चार मुख्य अवस्थाओं की शिक्षा देता है। तीन साधारण अवस्थाएं इस प्रकार हैं: सुषुप्ति (गहन निद्रा अथवा आध्यात्मिक अज्ञान), स्वप्न (स्वप्नमय अथवा अकर्मण्य अवस्था), और जागृत (अंतिम अवस्था निगरानी अथवा सतर्कता) इनके मध्य विभिन्न प्रकार की अवस्थाएं हैं। चौथी तूरीय अवस्था का अलग आयाम है जिसमें साधक आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध हो जाता है। कुछ इसे अनंत मानते हैं जो स्थान और समय से परे हैं। अन्य व्यक्ति इसे ऐसी आत्मा मानते हैं जो साधक और सृजक में तादात्म्य स्थापित कर देती है। इसका अनुभव पूर्ण शवासन में किया जा सकता है जब गहन निद्रा में शरीर को विश्राम मिलता है तथा स्वप्न में ज्ञानेंद्रियों को आराम मिलता है परंतु बुद्धि सचेत और सजग होती है। फिर भी, इस प्रकार की पूर्णता शायद ही कभी प्राप्त की जाती है। तब साधक का पुनर्जन्म होता है अथवा वह सिद्ध (नवजात अथवा मुक्त) माना जाता है। उसकी आत्मा शंकराचार्य के शब्दों को स्वर देती है:

मैं था, मैं हूं और मैं रहूंगा अतः जन्म और मृत्यु से क्यों डरूं?
प्यास और भूख की हूक उठती है कहां से? न मेरा कोई जीवन है और न कोई श्वास? न मैं मन हूं और न अहं, धोखा या दुःख पीस सकते हैं मुझे क्या?
केवल माध्यम हूं मैं, मुझे कार्य मुक्त कर सकते हैं क्या या बांध सकते हैं क्या?

तकनीकें

1. यह .श्यक है कि शवासन के अभ्यास की तकनीक को अधिक विवरण के साथ वर्णि किया जाए। फिर भी नौसिखिया साधक के लिए इस आसन के विवरण पर अधिक.र पाने के लिए निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जब कोई व्यक्ति पहली बार कार चलाना सीखता है तब वह उलझन में पड़ जाता है। फिर भी एक प्रशिक्षक की सहायता से वह धीरे-धीरे सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर अधिकार पाना सीख लेता है, यहां तक कि वे सभी क्रियाएं अपने आप ही होने लगती हैं। यही स्थिति शवासन के लिए भी है परंतु अपवाद यह है कि कार के कल-पुर्जों की अपेक्षा मानव शरीर क्रियाएं अधिक जटिल होती हैं।

2. शवासन करना कठिन कार्य है क्योंकि इसमें शरीर, ज्ञानेंद्रियों और मन को स्थिर करना होता है जबकि बुद्धि को सचेत रखना पड़ता है। साधक शवासन को तभी कर पाता है जब वह अपने अस्तित्व के विभिन्न पक्षों, यथा शरीर, ज्ञानेंद्रियां, मन, बुद्धि और आत्मा का भली भांति अध्ययन कर ले। विद्वत्तापूर्ण ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। सही अभ्यास शवासन पर अधिकार पाने के लिए आवश्यक होता है।

3. अभ्यास प्रारंभ करने से पूर्व कसे हुए कपड़े, पेटियां, चश्मा, कान्टेक्ट लैंस,

सुनने वाले यंत्र और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं को हटा देना चाहिए।

समय और स्थान

4. यद्यपि शवासन किसी भी समय किया जा सकता है, यह बात परामर्श योग्य है कि यह आसन शांत समय में ही किया जाए। बड़े-बड़े नगरों और औद्योगिक क्षेत्रों में धुएं, कोहरे अथवा रासायनिक प्रदूषण से मुक्त वातावरण पाना कठिन है। स्वच्छ, समस्तरीय, कीड़ों से मुक्त, शोर और दुर्गंध रहित स्थान का चयन करें। कठोर फर्श पर अभ्यास न करें अथवा ऐसी सतह पर अभ्यास न करें जिसमें लोच न हो और मुलायम गद्दे पर भी शवासन न लगाएं क्योंकि शरीर असमान रूप से उसमें धंसने लगता है।

संरेखण

5. शवासन किसी फर्श पर कंबल विछाकर पीठ के सहारे पूरी लंबाई में लेटकर किया जाता है। एक सीधी रेखा खींच लें ताकि शरीर को सही स्थिति में रख सकें (चित्र 151)। खींची हुई रेखा पर घुटने ऊपर उठाकर और पैर मिलाकर बैठ जाएं (चित्र 152)। धीरे-धीरे फर्श पर खींची हुई रेखा अथवा कंबल पर पीठ की एक कशेरुकी के बाद दूसरी कशेरुकी को नीचा करें। शरीर को सही ढंग से रखें ताकि मेरुदंड के मध्य का भाग फर्श या कंबल पर खींची हुई सीधी रेखा पर आ जाए (चित्र 153 से 155 तक)।

6. पैरों को फर्श पर दवाएं। नितंब और त्रिकास्थि क्षेत्र को ऊपर उठांए। अपने हाथों से कमर के पिछले भाग से नितंब के नीचे तक चमड़ी और मांस का संचलन करें (चित्र 156)।

7. सर्वप्रथम शरीर की पीठ को समायोजित करें। इसके वाद आगे से सिर को समायोजित करें। सामने से सिर को समायोजित करने का कारण यह है कि जन्म से ही सिर के पीछे का भाग असमान हो जाता है क्योंकि शिशु एक ओर झुक जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि सिर का एक भाग दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक दब जाता है इसलिए आगे से सिर को समायोजित करना महत्त्वपूर्ण है और इसे पीछे से महसूस करें (चित्र 157-158)। इसके वाद एक पैर फैलाएं और उसके वाद दूसरा पैर फैलाएं (देखें चित्र 47 से 49 तक)। दोनों एड़ियों और घुटनों को मिला लें। मिली हुई एड़ियां, घुटने, उरुसंधि, अनुत्रिक, मेरुदंड और खोपड़ी के आधार को सीधी रेखा में विश्राम करना चाहिए (चित्र 159)। इसके वाद शरीर के अगले भाग को समायोजित करें। भौंहों के मध्य भाग, नासिका के सेतु, चिबुक, नासापट, नाभि, जघनास्थि के केंद्र को एक रेखा में रखें।

संतुलन

8. शरीर के किसी भाग को झुकने से बचाने के लिए उसे सीधा और एक स्तर पर रखना चाहिये।

पहली स्थिति को चैक करने के लिये माथे के मध्य भाग, भौंहें, नासिका के मूल, होठों के मध्य, चिवुक, गला, नासापट, डायाफ्राम के बीच, नाभि, जघनास्थि के सहारे काल्पनिक रूप से एक सीधी रेखा खींचें और इसके बाद जंघाओं, घुटनों, पिंडलियों, टखनों और एड़ियों के मध्य खाली स्थान में से काल्पनिक सीधी रेखा खींचें और इसके बाद इस बात की जाँच करें कि शरीर समतल है। यह क्रिया सिर से प्रारंभ करें। दोनों कानों को, नेत्रों के बाह्य किनारों, होठों, जबड़े की हड्डी के तल को फर्श के समानांतर रखें (चित्र 160-161)। अंत में गर्दन के पिछले भाग को फैलाएं और समायोजित करें ताकि माध्यमिक रूप से यह फर्श पर रखी जाए (चित्र 162)।

धड़

9. प्रत्येक कंधे के निकले हुए भाग (आंतरिक बिंदु) को फर्श पर चिपका लें (चित्र 163-164)। हंसली से उच्च सीने की त्वचा को कंधों की अस्थियों तक लपेटें और पीठ को ऐसा समायोजित करें कि वह कंबल पर पूर्णतया आराम करे (चित्र 165)। मेरुदंड का पृष्ठीय भाग और कटि समान रूप से प्रत्येक दिशा में विश्राम करें और आंतें समान रूप से दोनों ओर फैली रहें। लगभग निन्नानवे प्रतिशत लोग दोनों नितंबों पर समान रूप से विश्राम नहीं करते अपितु उनमें से एक ही नितंब पर विश्राम करते हैं। जंघास्थि के मध्य भाग को फर्श पर विश्राम करने दें ताकि नितंब समान रूप से आराम कर सकें। चंचुकियों, प्लावी पसलियों (चित्र 160-161) और श्रोणीय अस्थियों के मध्य एक सीधी रेखा खींचें जो उन्हें फर्श के समानांतर रखे।

पैर

10. दोनों पैर मिला लें और एड़ियों के बाह्य सिरों को खींचें (चित्र 162); इसके बाद समान रूप से पैरों को बाहर की ओर गिरने दें (चित्र 166)। पैर के अंगूठे, भार रहित और प्रतिरोध रहित होने चाहिएं (चित्र 167)। यह गलत है कि पैर की अंगुलियों को फर्श छूने के लिए बल लगाया जाए। सख्त टांगों वाले व्यक्तियों को अपने पैर लगभग एक गज दूर रखने चाहिएं। इससे उन्हें अपनी पीठ फर्श पर आराम करने के लिए मिलेगी (चित्र 168)। घुटनों के बाहरी किनारों के पिछले भाग को फर्श छूने दें। यदि वे आराम न कर सकें तो तह किया गया कंबल या तकिया उनके पीछे लगा दें (चित्र 85); यदि टांगें आराम न करें तो ऊपरी जांघों पर भार (25 से 50 पौंड तक) रखें (चित्र 169)। इससे मांसपेशियों का तनाव और कठोरता

दूर हो जाती है तथा टांगों को शांति मिल जाती है।

हाथ

11. शरीर से हाथों को अलग रखें और बगलों के साथ 15 से 20 डिग्री का कोण बनाएं। हाथों को कोहनियों पर मोड़ लें और अंगुलियों से कंधें के अग्र भाग को छुएं (चित्र 170)। ऊपरी हाथों के पिछली ओर के त्रिशिरस्क को फैलाएं और कोहनियों को पैरों की ओर उतना ले जाएं जितना आप ले जा सकते हैं। कंधों के बाहरी सिरों के साथ पूरी अग्रभुजाओं और कोहनियों को फर्श पर रखें (चित्र 171)। कोहनियों के सिरों को न हिलाएं। अग्रभुजाओं को झुकाएं। कलाइयों से पोरों तक हाथों को फैलाएं और हथेलियां ऊपर की ओर रहें (चित्र 171-173)। अंगुलियों को निष्क्रिय रहने और विश्राम करने दें। मध्य अंगुलियों के पश्च भाग प्रथम पोरों तक फर्श को छूते रहें (चित्र 174)। यह देखें कि भुजाओं का मध्य भाग, कोहनियां और हथेलियां फर्श छूती रहती हैं। यदि हाथ शरीर के समीप आते हैं और शरीर उचित रूप से आराम नहीं कर पाता तथा हाथों में अथवा पीठ की मांसपेशियों में कठोरता महसूस होती है तो भुजाओं को कंधों की सतह तक फैलाएं (चित्र 175)। फर्श पर लेटे रहने की भावना ऐसी होनी चाहिए जैसे कि शरीर पृथ्वी माता में निमग्न हो रहा है।

अचेत तनाव

12. कोई साधक हथेलियों, अंगुलियों, पैरों के तलवों अथवा एड़ियों के तनाव के बारे में अचेत हो सकता है। (चित्र 176 एवं 177)। इस तनाव को देखें और आराम करने दें। जब और जहां भी यह हो, उनके भागों को उनके सही स्थानों पर ढीला छोड़ दें।

तनाव का हटाना

13. सर्वप्रथम, शरीर की पीठ को धड़ से गर्दन, भुजाओं और टांगों तक आराम कराना सीखें। इसके बाद शरीर के अग्र भाग को जघनास्थि से गले तक विश्राभ करने दें, जहां संवेगात्मक उतार-चढ़ाव उत्पन्न होते हैं और इसके बाद गर्दन से सिर के शीर्ष स्थान तक विश्राम करें। इस प्रकार सारे शरीर को विश्राम देना सीखें।

14. बांहों की बगलों, ऊरु-मूल के आंतरिक गर्तों, डायाफ्राम, फुफ्फुसों, मेरुदंड, मांसपेशियों और उदर को खाली अथवा अविद्यमान महसूस करें। इसके बाद शरीर व्यर्थ लकड़ी के समान महसूस होता है। सही शवासन में सिर यह महसूस करता है मानो वह निमग्न हो गया है।

15. मन से व्यवहार करने से पूर्व भौतिक शरीर के ऊतकों को शांत करना सीखें। यदि कोई साधक मनोमय (सूक्ष्म मानसिक) और विज्ञानमय कोष (बौद्धिक

अंगों) को शांत करने में अग्रसर हो तो इससे पूर्व अन्नमय कोष (कुल भौतिक शरीर) को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

16. शरीर की पूर्ण शांति बनाए रखना पहली आवश्यकता है और यह आध्यात्मिक शांति के प्राप्त करने का प्रथम चिह्न है। मन से मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती, जब तक शरीर के सभी भागों में शांति की भावना नहीं हो जाती। यदि शरीर शांत है तो मन की शांति उत्पन्न होगी।

ज्ञानेंद्रियां

17. **नेत्र**—शवासन में साधक की दृष्टि अंतर्मुखी हो जाती है और वह अपने भीतर देखता है। यह अंतः परीक्षण साधक को प्रत्याहार के लिए तैयार करता है। प्रत्याहार योग के आठ चरणों में से पांचवा चरण है जहां ज्ञानेंद्रियों को अंदर की ओर उन्मुख कर लिया जाता है और साधक अपने अस्तित्व के स्रोत तथा आत्मा को पहचानने के लिए यात्रा करना प्रारंभ कर देता है।

18. नेत्र मस्तिष्क की खिड़कियां हैं। प्रत्येक नेत्र में पुतलियां होती हैं जो कपाट (शटर) का काम करती हैं। पुतली के चारों ओर परितारिका होती है जो दृष्टिपटल तक प्रकाश पहुंचाने के लिए स्वतचालित रेगुलेटर का काम करती है। किसी भी व्यक्ति के बौद्धिक और संवेगात्मक अवस्थाओं के प्रति परितारिका स्वतः प्रतिक्रिया करती है। यदि पुतलियों को बंद कर लिया जाए तो साधक उस सबसे अलग हो जाता है जो बाहर का है और वह उस सबके प्रति सजग हो जाता है जो उसके अंदर का है। यदि वह पुतलियों को कसकर बंद कर लेता है तो नेत्र दब जाते हैं जिनके कारण कई प्रकार के रंग, प्रकाश, छायाऐं उत्पन्न होती हैं और वे साधक की साधना में विघ्न डालती हैं। ऊपरी पुतलियों को नेत्र के अंदर के सिरों की ओर धीमे संचलित करें। इससे उनके ऊपर की त्वचा को आराम मिलता है और भौंहों के बीच में स्थान बन जाता है। आंखों को फूल के दलों के समान समझते हुए व्यवहार करें। भौंहों को ऊपर उठाएं ताकि माथे की त्वचा की कठोरता को काफी आराम दिया जा सके (चित्र 178)।

19. **कान**—कानों की शवासन और प्राणायाम दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि नेत्र निष्क्रिय रखे जाएं तो कानों को मौन और ग्राह्य रखना चाहिए। इनमें से किसी में भी तनाव या विश्राम मन को उसी प्रकार अथवा विपरीत रूप से प्रभावित करता है। बुद्धि का स्थान सिर होता है जबकि मन हृदय में वास करता है। जब कभी विचार की लहरें उठती हैं तो अंदर के कान अपनी ग्राह्यता छोड़ बैठते हैं। सावधानी से प्रशिक्षण द्वारा यह प्रक्रिया विपरीत की जा सकती है और कान उतार-चढ़ाव को बंद करने के लिए संदेशों को फिर वापिस करने लगते हैं ताकि मन शांत हो जाए। यदि नेत्रों को तनाव में रखा जाता है तो कान बंद हो जाते हैं और यदि नेत्रों को विश्राम दिया जाए तो कान भी उसी प्रकार के हो जाते हैं।

20. **जिह्वा**—जिह्वा के मूल को निष्क्रिय रखें जैसा कि सोते समय किया जाता

है और उसे निचले तालू पर आराम करने दें। दांतों या ऊपरी तालू पर जिह्वा की कोई भी गति या दबाव चंचल मन का द्योतक होता है। यदि यह एक ओर संचलित होती है तो सिर उसी दिशा में संचलित होता है और कुल विश्रांति कठिन हो जाती है। होठों को किनारों पर फैलाकर विश्राम करें।

21. **त्वचा**—त्वचा शरीर को आच्छादित करती है और एक ऐसी संरचना उपलब्ध कराती है जो शायद ज्ञानेंद्रियों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान के पांच अवयव हैं: नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा। प्रकाश, रंग, ध्वनि, सुगंध, स्वाद और स्पर्श (तन्मात्र) के सूक्ष्म प्रमुख तत्त्व ज्ञानेंद्रियों पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ज्ञानेंद्रियां मस्तिष्क को संदेश भेजती हैं और प्रतिक्रिया तथा चुनौती के लिए संदेश ग्रहण करती हैं। जो नाड़ियां मस्तिष्क पर नियंत्रण करती हैं वे चेहरे की मांसपेशियों के तनाव के शिथिल होते ही आराम करने लगती हैं जबकि मस्तिष्क ज्ञान के अवयवों के साथ संपर्क से मुक्त हो जाता है। कनपटियों के क्षेत्र, चिबुक की अस्थियों और निचले जबड़े पर विशेष ध्यान दें। इससे ऊपरी तालू और जिह्वा के मूल के मध्य मौनता की भावना महसूस होगी। शवासन में मांसपेशियां विश्राम करती हैं और त्वचा के छिद्र धंस जाते हैं तथा संगत नाड़ियां आराम पाने लगती हैं।

श्वसन

22. यह देखें कि नासारंध्रों के प्रत्येक ओर श्वास का प्रवाह समान गति से होता है। साधारण रूप से श्वास लेना प्रारंभ करें। परंतु सरलता, गहनता और दीर्घकाल तक श्वास छोड़ें। पूरक क्रिया से कुछ साधकों के सिर और धड़ में अशांति पैदा हो जाती है और उनकी टांगों तथा बाहों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे साधकों के लिए गहन और कोमल रेचक क्रिया के साथ साधारण पूरक क्रिया की सिफारिश की जाती है। इससे नाड़ियां और मस्तिष्क शांत हो जाते हैं। ऐसे साधकों के लिए जो उस समय बेचैन होते हैं जब शवासन किया जाता है, यह उचित है कि वे गहन, धीमी गति और अधिक समय तक श्वास को अंदर लें और बाहर निकालें जब तक कि वे शांति प्राप्त न कर लें। जिस क्षण उन्हें शांति महसूस होने लगे, गहन श्वसन बंद कर देना चाहिए और श्वास-प्रश्वास की क्रिया स्वतः ही होनी चाहिए। जब साधक रेचक क्रिया की कला में पारंगत हो जाता है तो उसे यह महसूस होता है कि श्वास सीने की त्वचा के छिद्रों में से निकल रही है जो पूर्ण विश्राम का संकेत है। प्रत्येक बाह्य श्वास साधक के मस्तिष्क को अपनी आत्मा की ओर ले जाती है और मस्तिष्क के सभी तनावों को मिटाती है और क्रियाकलापों को सुगम करती है। रेचक क्रिया साधक के लिए अपनी श्वास, जीवन और आत्मा को परमात्मा के प्रति समर्पण करने का सर्वोत्तम रूप है।

सिर

23. यह सुनिश्चित करें कि सिर सीधा और छत के समानांतर है। यदि सिर

ऊपर उठा हुआ है (चित्र 179) तो मन भविष्य के बारे में सोचता है। यदि सिर नीचे की ओर है (चित्र 180) तो वह अतीत के बारे में मनन करता है। यदि सिर एक ओर झुका हुआ है (चित्र 181) तो अंदर का कान (प्रकोष्ठीय यंत्र, दृष्टि लघु कौशक और अर्धचक्रवाली नालियां) क्रियाशील हो जाता है। यह मध्य मस्तिष्क को प्रभावित करता है और साधक सोने लगता है तथा अपनी चेतना को खो देता है। सिर को फर्श की सतह पर रखना सीखें ताकि मन सदैव वर्तमान में बना रहे (चित्र 182)। किसी भी झुकाव को सही करने से उस संतुलन के लाने में सहायता मिलेगी जो मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों और उस शरीर के मध्य होना चाहिए जो देवत्व पाने का एक द्वार है।

24. प्रारंभ में चिबुक श्वास-प्रश्वास की क्रिया के समय अचेत रूप से ऊपर और नीचे गतिमान होती है। इस स्थिति को चेतना से रोकें और सिर के पिछले भाग को फर्श के समानांतर रखें तथा उसे गर्दन से सिर के पीछे की ओर खींचें (चित्र 182)।

मस्तिष्क

25. यदि मस्तिष्क या मन तनाव में है तो त्वचा भी वैसी ही हो जाती है अथवा यदि मस्तिष्क या मन में तनाव नहीं है तो त्वचा भी उसी प्रकार की हो जाती है। त्वचा के रंध्रों से आत्मा तक पहुंचने अथवा अन्य रूप में भी अपने को अनुशासित करना सीखें। शरीर, मन और बुद्धि की पूर्ण ऊर्जा को आत्मा में विलीन कर देना चाहिए। इच्छा शक्ति का मन और बुद्धि को शांत करने में उपयोग करना चाहिए। अंततोगत्वा इच्छा-शक्ति का परिष्कार करना चाहिए।

26. जब तक ज्ञानेंद्रियां सक्रिय होती हैं तब तक आत्मा प्रसुप्त होता है। जब वे स्थिर और मौन हो जाती हैं, उस समय आत्मा ठीक उसी प्रकार चमक उठता है मानों इच्छा रूपी बादल तितर-बितर हो गए हों। जिस प्रकार पोखर के जल में मछली द्रुतगति से संचलन करती है, ठीक उसी प्रकार मन और बुद्धि के संचलन शरीर के अंदर और बाहर दोनों ही स्थानों में होते हैं। जब जल स्थिर हो जाता है तो उसमें संपूर्ण और स्थिर छवि प्रतिबिंबित होती है। जब मन और बुद्धि की चंचलता स्थिर हो जाती है तो आत्मा की छवि सतह तक अशांति के बिना उभर आती है और आत्मा इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। इस सरलता और शुद्धता की इच्छा रहित अवस्था को कैवल्यावस्था कहा जाता है।

27. शवासन का उद्देश्य शरीर को विश्राम की स्थिति में रखना है जिसमें श्वसन-क्रिया निष्क्रिय होती है जबकि मन और बुद्धि धीरे-धीरे परिष्कृत होते हैं। जब आंतरिक और बाह्य रूप से उतार-चढ़ाव होते हैं तब मानसिक और बौद्धिक ऊर्जा व्यर्थ हो जाती हैं। शवासन में मन के आंतरिक अथवा संवेगात्मक उतार-चढ़ाव स्थिर हो जाते हैं और मनोलय (मन का अर्थ मन और लय का अर्थ निमज्जन है) की अवस्था आ जाती है। इसके पश्चात् मन सभी उतार-चढ़ावों से मुक्त हो जाता है और आत्मा में घुलमिल या विलीन हो जाता है जैसे कि कोई नदी सागर में मिल जाती है। यह

उदासीनता की निषेधात्मक अवस्था है जिसे योग के ग्रंथों में शून्यावस्था (खाली स्थिति) कहा गया है। यह संवेगात्मक स्तर पर व्यक्ति के साथ तदाकार होने वाली स्थिति है। इसके बाद साधक आने वाले उन विचारों को रोकता है जो उसकी बौद्धिक ऊर्जा को छिन्न-भिन्न करते अथवा मिटाते हैं। इस स्तर पर वह एक स्पष्टता की अवस्था का अनुभव करता है जहां बुद्धि का अप्रतिहत नियंत्रण होता है और वह उन अग्रगामी विचारों को नहीं आने देती जो उसको अशांत किए रहते हैं। इस अवस्था को अशून्यावस्था (अ का अर्थ नहीं और शून्य का अर्थ रिक्त है) कहा जाता है। जब वह मन और मस्तिष्क पर अपना अधिकार कर लेता है तब वह मनोलय और अमनस्कत्व दोनों ही अवस्थाओं के परे एक नई ठोस अवस्था में पहुंच जाता है जो शुद्ध मानव की स्थिति है।

28. मनोलय अथवा शून्यावस्था की तुलना उस नवीन चंद्रमा से की जा सकती है जो उस चंद्रमा के समान है जो धरती के चारों ओर चक्कर काटता है किंतु दिखाई नहीं देता। अमनस्कत्व अथवा अशून्यावस्था की तुलना पूर्ण चंद्रमा से की जा सकती है जो सूर्य के प्रकाश को प्रतिबिंबित करता है जबकि आत्मा की तुलना सूर्य से की जा सकती है। शून्यावस्था अथवा अशून्यावस्था दोनों में ही साधक का शरीर, मन और बुद्धि भली-भांति संतुलित होते हैं और वे ऊर्जा का विकिरण करते हैं। वह संवेग की रिक्तता और बुद्धि की पूर्णता दोनों के उतार-चढ़ाव के मध्य समानता प्राप्त करता है।

29. इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक को विवेक का विकास करना चाहिए। इससे साधक स्पष्टता की ओर उन्मुख होगा और वह अपेक्षाकृत अधिक विश्राम कर सकेगा। जब स्पष्टता प्राप्त कर ली जाती है तब संदेह दूर हो जाते हैं और प्रकाश आ जाता है। उसका अस्तित्व परमात्मा (अनंत) में विलीन हो जाता है। साधक को यह अनुभव होता है और यह अनुभव शवासन का अमृत है।

30. शवासन का अभ्यास 10 से 15 मिनट तक करें ताकि समय की रिक्तता को अनुभव कर सकें। थोड़ा-सा भी विचार अथवा गति संचलन इस दौर का खंडन कर देगा और एक बार फिर आप समय के संसार में प्रारंभ और अंत के साथ आ जाएंगे।

31. सफल शवासन से साधारण स्थिति में आने के लिए समय की आवश्यकता होती है। दो श्वासों और दो विचारों के मध्य में समय का अलग-अलग अंतर होता है जैसाकि एक सक्रिय और निष्क्रिय अवस्था में अंतर होता है।

शवासन एक निष्क्रिय अवस्था है। साधक को उस समय तक मौन पर्यवेक्षक रहना चाहिए जब तक कि साधारण क्रियाकलाप उसके मस्तिष्क और शरीर में प्रवेश न करें। सफल शवासन के बाद नाड़ियां साधारण स्थिति की ओर लौटने पर धंसी हुई होती हैं जबकि मस्तिष्क का पिछला भाग शुष्क और भारी होता है तथा अगला भाग खाली होता है। इसलिए अपना सिर शीघ्र ही ऊंचा न उठाएं क्योंकि आप विचार-शून्यता अथवा सिर का भारीपन महसूस करेंगे। धीरे-धीरे और सुगमता से अपने नेत्र

खोलें जो पहले केंद्रित नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ समय तक रहें। इसके बाद घुटने मोड़ें, सिर और शरीर को एक ओर झुकाएं (चित्र 183) और इस स्थिति में एक अथवा दो मिनट तक रुके रहें। इस स्थिति को दूसरी ओर भी दोहराएं। इसके फलस्वरूप आपको कोई थकान महसूस न होगी जब आप उठ रहे होंगे।

विशेष सावधानियां

जो व्यक्ति रक्तचाप, उच्च रक्त दवाव, हृदय रोग, वातस्फीति अथवा वेचैनी से पीड़ित हों, उन्हें लकड़ी के तख्ते पर लेटना चाहिए और सिर के नीचे तकियों को रखना चाहिए (चित्र 80-82)। तनाव और वेचैनी से आक्रांत व्यक्तियों को अपनी ऊपर की जंघाओं पर भार (लगभग 50 पौंड) और हथेलियों पर 5 पौंड का भार रखना चाहिए (चित्र 184)। उन्हें षण्मुखी मुद्रा (चित्र 185) करनी चाहिए अथवा उन्हें अपने सिर के चारों ओर नेत्रों और कनपटियों के ऊपर लगभग 3 इंच मोटी परतदार और मुलायम महीन कपड़े की लंबी पट्टी लपेटनी चाहिए। भौहों से प्रारंभ करें; नासिका को अवरुद्ध न करें; कनपटियों के ऊपर या नासिका के नीचे दोनों ओर सिरों को लपेटें। यह कपड़े की पट्टी न तो सख्त होनी चाहिए और न ही ढीली होनी चाहिए। (चित्र 186)। जब मस्तिष्क सक्रिय होगा तब कनपटियों के गतिसंचलन तथा पुतलियों के तनाव कपड़े को बाहर धकेल देंगे।

जब वहां त्वचा शिथिल होती है तब आप कपड़े के संपर्क को महसूस नहीं करते। यह एक ऐसा संकेत है जब मस्तिष्क विश्राम करना प्रारंभ करता है।

जिन साधकों के ग्रीवा-कशेरुकी में संधि शोध अथवा मोच से गर्दन में दर्द होता है, उन्हें गर्दन को पीछे फैलाने और उसको आराम देने में कठिनाई महसूस होगी। उन्हें अपनी गर्दन के मूल और खोपड़ी के मध्य तौलिया या परतदार कपड़ा रख लेना चाहिए जैसा कि (चित्र 187-188) में दिखाया गया है।

अधिक व्यग्र व्यक्तियों अथवा विश्वासहीनता से ग्रसित व्यक्तियों को शवासन में लेटना चाहिए और उन्हें त्राटक (भौंहों) के मध्य में ध्यान देना चाहिए (चित्र 149)। नेत्र बंद करें और दृष्टि अंतर्मुखी करें (चित्र 150)। उन्हें गहन श्वास लेना चाहिए और प्रत्येक पूरक क्रिया के बाद एक या दो सैकिंड के लिए श्वास को रोकना चाहिए। उन्हें सर्वांगासन करने के बाद शवासन का अभ्यास करना चाहिए जिसका वर्णन **योगदीपिका** में किया गया है। गहन पूरक क्रिया और रेचक क्रिया ऐसे व्यक्तियों को आराम देती है। इसके बाद उन्हें दोनों भौंहों के मध्य ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता नहीं होती और न वे गहन श्वसन पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

यदि फर्श और कमर के बीच अधिक खाली स्थान हो तो एक मुलायम तकिया अथवा परतदार कंबल का उपयोग करें ताकि वह रिक्त स्थान भरा जा सके। इससे कटि के स्थल को विश्राम मिल सकता है (चित्र 189)। जो साधक पीठ के दर्द से पीड़ित हों उन्हें अपने उदर पर भार (25-50 पौंड तक) रखना चाहिए। इससे दर्द

कम हो जाता है (चित्र 190)।

प्रभाव

सही शवासन के करने से ऊर्जा बहुत कम व्यर्थ होती है और अधिकतम स्वास्थ्य-वर्धक होता है। इससे मानव स्फूर्तिमय हो जाता है। वह गतिशील और सर्जनशील हो जाता है। इस आसन से मृत्यु का भय दूर हो जाता है और अभय की स्थिति उत्पन्न होती है। साधक को शांति की स्थिति और आंतरिक एकता का अनुभव होता है।

परिशिष्ट

प्राणायाम कार्यविधि

प्राणायाम को पांच वर्गों में विभाजित किया जाता है : प्रारंभिक, प्राथमिक, माध्यमिक उच्च और उच्चगहन कार्यविधि। प्राणायाम की माला दैनिक अभ्यास के लिए दी गई है और इसके साथ समय का संकेत भी दिया गया है ताकि सभी क्रियाविधियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जाए। प्रत्येक अवस्था पर अधिकार पाना साधक पर निर्भर करता है कि प्राणायाम कला के प्रति कितना समर्पित है और अभ्यास के प्रति उसकी कैसी निष्ठा है।

सर्वप्रथम सप्ताह-प्रति-सप्ताह अभ्यासों के बारे में बताने से पूर्व साधारण संदर्भ के लिए कार्यविधियों को विभाजित किया जाता है।

1. प्रारंभिक कार्यविधि	**अवस्थाएं**
(क) उज्जायी प्राणायाम	एक से सात
(ख) विलोम प्राणायाम	एक और दो
2. प्राथमिक कार्यविधि	
(क) उज्जायी प्राणायाम	आठ से दस
(ख) विलोम प्राणायाम	तीन से पांच
(ग) अनुलोम प्राणायाम	एक 'क' और एक 'ख' पांच 'क' और पांच 'ख'
(घ) प्रतिलोम प्राणायाम	एक 'क' और एक 'ख'
(ङ) सूर्यभेदन प्राणायाम	एक
(च) चंद्रभेदन प्राणायाम	एक

3. माध्यमिक कार्यविधि

(क)	उज्जायी प्राणायाम	ग्यारह
(ख)	विलोम प्राणायाम	तीन, छह और सात
(ग)	अनुलोम प्राणायाम	दो 'क' और दो 'ख' छह 'क' और छह 'ख'
(घ)	प्रतिलोम प्राणायाम	दो 'क' और दो 'ख'
(ञ)	सूर्यभेदन प्राणायाम	दो
(च)	चंद्रभेदन प्राणायाम	दो
(छ)	नाड़ीशोधन प्राणायाम	एक 'क' और एक 'ख'

4. उच्च कार्यविधि

(क)	उज्जायी प्राणायाम	बारह
(ख)	विलोम प्राणायाम	आठ
(ग)	अनुलोम प्राणायाम	तीन 'क', तीन 'ख' सात 'क', सात 'ख'
(घ)	प्रतिलोम प्राणायाम	तीन 'क', तीन 'ख'
(ङ)	सूर्यभेदन प्राणायाम	तीन
(च)	चंद्रभेदन प्राणायाम	तीन
(छ)	नाड़ीशोधन प्राणायाम	दो 'क', दो 'ख'

5. उच्च गहन कार्यविधि

(क)	उज्जायी प्राणायाम	तेरह
(ख)	विलोम प्राणायाम	नौ
(ग)	अनुलोम प्राणायाम	आठ
(घ)	प्रतिलोम प्राणायाम	चार
(ङ)	सूर्यभेदन प्राणायाम	चार
(च)	चंद्रभेदन प्राणायाम	चार
(छ)	नाड़ीशोधन प्राणायाम	तीन 'क', तीन 'ख' चार 'क', चार 'ख'

शीतली और शीतकारी प्राणायाम कभी कुछ मिनटों के लिए आंगुलिक नियंत्रण सहित अथवा उनके बिना और आंतरिक तथा बाह्य कुंभक सहित और उसके बिना किए जा सकते हैं। यह परामर्श दिया जाता है कि इन प्राणायामों को ग्रीष्म ऋतु में सूर्योदय से पूर्व अथवा सूर्यास्त के बाद करना चाहिए या उस समय करना चाहिए जब साधक को अधिक गर्मी लगती हो।

भ्रामरी और मूर्च्छा प्राणायाम केवल विधि सीखने के लिए किए जा सकते हैं क्योंकि इनके प्रभाव तालिका में दिए गए अन्य मुख्य प्राणायामों द्वारा पूरे किए जाते हैं।

कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायामों का उल्लेख पाठ्य सामग्री में कर दिया गया है। इनमेंसे किसी भी प्राणायाम को कुछ मिनटों के लिए दैनिक अभ्यासों में सम्मिलित किया जा सकता है ताकि नासारंध्रों को स्वच्छ किया जा सके और मस्तिष्क को स्फूर्तिदायक बनाया जा सके तथा शरीर और नासारंध्रों की सुगमता के लिए अवस्थाओं को समायोजित किया जा सके।

कुंभकों के लिए सीमित समय दिया गया है परंतु अंतः और बाह्य श्वासों के लिए समय नहीं दिया गया है, इसका कारण यह है कि किसी एक दिन साधक अंतः और बाह्य श्वासों के लिए समय को बढ़ाने के लिए एकाग्रचित हो सकता है जबकि दूसरे दिन अंतः और बाह्य कुंभकों के लिए समय बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित कर सकता है।

जब पर्याप्त नियंत्रण प्राप्त कर लिया जाता है तब वृत्ति प्राणायामों के अनुपातों का प्रयास करना चाहिए लेकिन यह केवल साधक की अपनी जोखिम पर ही निर्भर होता है।

कार्यविधि एक (प्रारंभिक)

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
1 और 2	उज्जायी	एक और दो	7-8 प्रत्येक
3 और 4	उज्जायी	दो और तीन	8 ,,
5 और 6	उज्जायी	दो और तीन	5 ,,
	विलोम	एक और दो	5 ,,
7 और 8	उज्जायी	एक, दो और तीन	5 ,,
	विलोम	एक और दो	5 ,,
9 और 10	उज्जायी	चार और पाँच	5 ,,
	विलोम	चार	5 ,,
	विलोम	एक	5 ,,
11 और 12	उज्जायी	पाँच और छह	5 ,,
	विलोम	चार	10 ,,
13 से 15 तक	उज्जायी	पांच, छह और सात	5 ,,
	विलोम	दो	10 ,,
16 से 18 तक	उज्जायी	छह और सात	5 ,,
	विलोम	एक और दो	5 ,,
19 से 22 तक	इस श्रृंखला को दोहराएं और एकीकृत करें तथा इसका अभ्यास करें।		

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
23 से 25 तक	उज्जायी	छह और सात	8 मिनट
	विलोम	चार और पाँच	8 मिन

कार्यविधि एक में महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं :

उज्जायी दो, तीन, चार, छह और सात
विलोम एक और दो

कार्यविधि दो (प्राथमिक)

26 से 28 तक	उज्जायी	आठ	10 मिनट
	विलोम	तीन	10 ,,
29 से 31 तक	उज्जायी	नौ	10 ,,
	अनुलोम	एक क	10 ,,
	विलोम	दो	5 ,,
32 से 34 तक	विलोम	तीन	5-8 ,,
	अनुलोम	एक ख	5-8 ,,
	उज्जायी	नौ	5 ,,
35 से 38 तक	अनुलोम	एक क	10 ,,
	प्रतिलोम	एक क	10 ,,
	उज्जायी	चार	उतने समय तक जितना आप कर सकें
39 से 42 तक	उज्जायी	दस	8-10 मिनट
	अनुलोम	एक ख	6-8 ,,
	प्रतिलोम	एक ख	6-8 मिनट
	विलोम	तीन	उतने समय तक जितना आप कर सकें
43 से 46 तक	ऊपर बताई गई अवस्थाओं को दोहराएं और उन्हें एकीकृत करें।		
47 से 50 तक	कार्यविधि एक से लेकर महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं को दोहराएं और कार्यविधि दो से अभ्यास करें जितना आप कर सकें और यह अभ्यास उतना करें जितना समय आपके हाथ में हो।		
51 से 54 तक	अनुलोम	पाँच क	5 मिनट
	प्रतिलोम	एक क	5 ,,

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
	सूर्यभेदन	एक	10 ,,
55 से 58 तक	अनुलोम	पांच ख	5 ,,
	प्रतिलोम	एक ख	10 ,,
	चंद्रभेदन	एक	5 ,,
59 से 62 तक	कार्यविधि दो को दोहराएं और उसे एकीकृत करें। आपके पास जितना समय हो, उसके अनुसार इस अभ्यास को समायोजित करें।		

कार्यविधि दो की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं :

उज्जायी दस, विलोम तीन, अनुलोम एक ख,
प्रतिलोम एक ख, सूर्यभेदन एक और चंद्रभेदन एक

कार्यविधि तीन (माध्यमिक)

63 से 67 तक	विलोम	तीन	5 मिनट
	उज्जायी	ग्यारह	5-8 ,,
	विलोम	छह	5 ,,
	अनुलोम	दो क	5 ,,
	प्रतिलोम	दो क	5 ,,
	अनुलोम	छह क	5 ,,
	सूर्यभेदन	दो	5 ,,
	चंद्रभेदन	दो	5 ,,

यहां साधक को एक दिन उज्जायी ग्यारह, अनुलोम दो क, प्रतिलोम दो क और एक दिन सूर्यभेदन दो तथा अन्य वैकल्पिक दिनों में अन्य प्राणायाम करना चाहिए।

68 से 72 तक	विलोम	सात	5 ,,
	अनुलोम	दो ख	6-8 ,,
	प्रतिलोम	दो ख	6-8 ,,
	नाड़ीशोधन	एक क	10 ,,
73 से 75 तक	उज्जायी	आठ	5 ,,
	अनुलोम	छह ख	6 ,,
	प्रतिलोम	दो	6 ,,
	नाड़ीशोधन	एक ख	10 ,,

यदि अनुलोम एक दिन किया जाए तो प्रतिलोम दूसरे दिन किया जा सकता है।

76 से 80	अनुलोम	दो ख	10 ,,
	प्रतिलोम	दो ख	10 ,,

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
	सूर्यभेदन	दो	10 "
	चंद्रभेदन	दो	10 "
	नाड़ीशोधन	दो	10 "

यदि अनुलोम, सूर्यभेदन और नाड़ीशोधन पहले दिन किए जाते हैं तो शेष प्राणायाम दूसरे दिन करें और इसी प्रकार प्राणायाम करते रहें।

81 से 85 तक अभ्यास को एकीकृत करें।

कार्यविधि तीन की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं :

उज्जायी ग्यारह, विलोम सात, अनुलोम दो ख, प्रतिलोम दो ख, सूर्यभेदन दो, चंद्रभेदन दो और नाड़ीशोधन दो।

86 से 90 तक कार्यविधि एक, दो और तीन से महत्त्वपूर्ण प्राणायाम करें।

अब प्रत्येक दिन एक ही बार एक अवस्था का अभ्यास करें ताकि अग्रिम कार्यविधि में आगे बढ़ने से पूर्व कार्यविधि एक, दो और तीन के प्रत्येक प्रभाग को अच्छी तरह सीख लिया जाए। उदाहरण के लिए :

91 से 120 तक

प्रथम सप्ताह

सोमवार	उज्जायी	आठ	20-25
मंगलवार	सूर्यभेदन	एक	20-25
बुधवार	अनुलोम	एक ख	20-25
बृहस्पतिवार	विलोम	एक और दो	20-25
शुक्रवार	प्रतिलोम	एक ख	20-25
शनिवार	नाड़ीशोधन	एक ख	20-25
रविवार	विलोम	दो	20-25

द्वितीय सप्ताह

सोमवार	चंद्रभेदन	एक	20-25
मंगलवार	अनुलोम	दो क	20-25
बुधवार	प्रतिलोम	दो ख	20-25
बृहस्पतिवार	उज्जायी	दस	20-25
शुक्रवार	नाड़ीशोधन	एक ख	20-25
शनिवार	विलोम	पांच ख	20-25
रविवार	विलोम	तीन	20-25

तृतीय सप्ताह

सोमवार	सूर्यभेदन	दो	20-25
मंगलवार	चंद्रभेदन	दो	20-25
बुधवार	विलोम	सात	20-25
बृहस्पतिवार	अनुलोम	पांच ख	20-25
शुक्रवार	प्रतिलोम	एक क	20-25
शनिवार	नाड़ी शोधन	एक क	20-25
रविवार	उज्जायी	दस	20-25

अब प्रत्येक साधक को आगामी दिवसों के लिए अपना कार्यक्रम बनाना चाहिए जब तक कि तीनों कार्यविधियों में दिए गए सभी प्राणायाम पूरे न हो जाएं और इसके बाद ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार प्रथम सप्ताह के कार्यक्रम प्रारंभ करने चाहिए। यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रत्येक सप्ताह में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्राणायाम किया जाए और किन्हीं तीन लगातार सप्ताहों में किन्हीं अवस्थाओं को नहीं दोहराना चाहिए। रविवार को विश्राम करें अथवा सरल और आरामदायक प्राणायाम करें।

अगर आपको यह लगे कि किसी विशेष दिन कार्य सूची के अनुसार कोई प्राणायाम ठीक नहीं लगता तो उसी सप्ताह से किसी अन्य प्राणायाम को चुन लें।

यदि आप शारीरिक कारणों से तीनों कार्यविधियों में से कोई प्राणायाम करने में असमर्थ हों तो आपको चाहिए कि आप इन तीनों कार्यविधियों में से कोई भी प्राणायाम चुन लें जो आप कर सकते हैं।

कुछ लघु प्राणायामों के संबंध में कहा जाता है कि उन्हें कुछ मिनटों के लिए ही करना चाहिए और इन्हें बीस से पच्चीस मिनटों तक करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। फिर भी उन्हें प्रयोग की दृष्टि से करना चाहिए और उन्हें प्रत्येक मास के अंतिम शनिवार को पांच मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए।

कार्यविधि चार : उच्च

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
121 से 125 तक	सूर्यभेदन	एक	5
	उज्जायी	बारह	10
	विलोम	आठ	10
126 से 130 तक	चंद्रभेदन	एक	5
	अनुलोम	तीन क	10

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
	प्रतिलोम	तीन क	10
	विलोम	आठ	5
131 से 136 तक	अनुलोम	सात क	10
	नाड़ी शोधन	दो क	10
	विलोम	आठ	5
137 से 142 तक	सूर्यभेदन	दो	10
	नाड़ीशोधन	दो ख	15
143 से 148 तक	चंद्रभेदन	दो	10
	नाड़ीशोधन	एक ख	15
149 से 155 तक	सूर्यभेदन	तीन	10
	अनुलोम	तीन ख	8
	प्रतिलोम	तीन ख	8
156 से 160 तक	चंद्रभेदन	तीन	10
	अनुलोम	सात ख	8
	प्रतिलोम	तीन क	8
	नाड़ी शोधन	दो ख	8-10

कार्यविधि चार की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं

अनुलोम तीन ख, प्रतिलोम तीन ख, सूर्यभेदन तीन, चंद्रभेदन तीन और नाड़ी शोधन दो ख।

161 से 170 तक — ऊपर बताई गई कार्यविधियों के सभी प्राणायामों को दोहराएं।

कार्यविधि पांच : उच्च गहन

171 से 175 तक	नाड़ी शोधन	एक ख	8-10
	उज्जायी	तेरह	10
	अनुलोम	आठ क	10
176 से 180 तक	विलोम	नौ	10
	प्रतिलोम	चार क	10
181 से 185 तक	नाड़ी शोधन	तीन क	10
	अनुलोम	आठ ख	10
	उज्जायी	बारह (लेटे हुए)	8
186 से 190 तक	सूर्यभेदन	चार	10
	नाड़ी शोधन	तीन 'ख'	15

सप्ताह	प्राणायाम	अवस्थाएं	मिनटों में समय
	उज्जायी	दो (लेटे हुए)	10
191 से 195 तक	चंद्रभेदन	चार	10
	प्रतिलोम	चार ख	10
	विलोम	दो (लेटे हुए)	8-10
196 से 200 तक	नाड़ी शोधन	चार क	10
	नाड़ी शोधन	चार ख	10
	उज्जायी	दो (लेटे हुए)	10

कार्यविधि पांच की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं

सूर्यभेदन चार, चंद्रभेदन चार और नाड़ी शोधन चार ख।

साप्ताहिक अभ्यास

चक्रों अथवा क्रमों के प्रति सावधान रहें जैसाकि वांछनीय हो।

सोमवार	नाड़ी शोधन	एक ख	15-20
	उज्जायी	ग्यारह	15-20
	शवासन		10
मंगलवार	विलोम	पांच और छह	15-20
	सूर्यभेदन	दो और तीन	15-20
	शवासन		10
बुधवार	नाड़ीशोधन	दो ख	15-20
	अनुलोम	सात ख	15-20
	शवासन		10
बृहस्पतिवार	चंद्रभेदन	दो और तीन	15-20
	प्रतिलोम	तीन ख	15-20
	शवासन		10
शुक्रवार	उज्जायी	आठ	20
	नाड़ी शोधन	चार ख	20
	शवासन		10
शनिवार	विलोम	सात	10
	नाड़ी शोधन	एक ख	20
	शवासन		10

मुख्य प्राणायाम समाप्त करने के बाद नासामार्गों को बंद करके अथवा खुला रखकर दो या तीन मिनट के लिए शवासन से पूर्व भस्त्रिका प्राणायाम किया जा सकता है।

शब्दावली

अ	नकारात्मक अंश जिसका अर्थ अन् होता है, जैसे अहिंसा।
अंतर	आंतरिक, अंदर का, भीतरी।
अंतर कुंभक	पूर्ण पूरक क्रिया के बाद श्वास का रोकना।
अंतरात्मा	सबसे अंदर की चेतना अथवा आत्मा; आंतरिक सर्वोच्च चेतना अथवा आत्मा जो मानव के अंदर वास करती है।
अंतःकरण	हृदय, आत्मा, विचार और भावना का स्थान, विचार शक्ति, मन, अंतःकरण (अंत—अंतिम अथवा छोर का बिंदु, अंतिम सीमा; करण—ज्ञानेंद्रिय, साधन अथवा कर्म का साधन)।
अगर्भ ध्यान	गर्भ का अर्थ है भ्रूण। ध्यान का अर्थ है मनन। पतंजलि ने बताया है कि ध्यान योग की सातवीं अवस्था है। नौसिखिया साधक को ध्यान के लिए मंत्र (शुद्ध विचार अथवा प्रार्थना) दिया जाता है ताकि उसका चंचल मन स्थिरता की अवस्था में आ जाए और वह सांसारिक वासनाओं से अलग हो सके। इसी को सबीज अथवा सगर्भ (स=सहित; बीज=बीज; गर्भ=भ्रूण) ध्यान कहते हैं। मंत्रों के उच्चारण के बिना ध्यान में बैठने की स्थिति को निर्बीज अथवा अगर्भ ध्यान कहते हैं। 'निर्' और 'अ' उपसर्ग का अर्थ किसी की अनुपस्थिति का द्योतक है और 'अ' का अर्थ 'बिना' है।
अग्नि	आग अथवा पाचन शक्ति।
अचल	स्थावर।
अचलता	स्थावरता।
अचित	ऐसी स्थिति जो 'चित' नहीं कही जा सकती। (चित= जीवन को प्राणवान बनाने वाला सिद्धांत)
अधम	सबसे नीच, सबसे तुच्छ।
अधममध्यम	नीचों में मध्यम नीच।
अधमाधम	नीचों में सबसे नीच।

अधमोत्तम	नीचों में सवसे अच्छा।
अनावस्थितत्व	अभ्यासों को लगातार करते रहने की असमर्थता, जव साधक यह महसूस कर ले कि अव अभ्यास करना आवश्यक नहीं है क्योंकि साधक का विश्वास है कि वह समाधि की उच्चावस्था तक पहुंच गया है।
अनाहत चक्र	हृदय के क्षेत्र में स्थित स्नायविक जालरचना।
अनुभाविक ज्ञान	अनुभव से प्राप्त ज्ञान।
अनुलोम	अनु का अर्थ साथ, 'सहारे' अथवा 'संवद्ध' है। अनुलोम का अर्थ 'वाल के साथ' 'कण के सहारे' अथवा 'धारा के साथ' है। स्वाभाविक व्यवस्था में।
अनुलोम प्राणायाम	अनुलोम प्राणायाम में पूरक क्रिया दोनों नासारंध्रों से की जाती है और रेचक क्रिया वैकल्पिक रूप से किसी भी नासारंध्र से की जाती है।
अनुष्ठान	नियमित आध्यात्मिक अभ्यास।
अनुसंधान	गहन जांच, परीक्षा, उपयुक्त संयोजन।
अन्न	(सामान्य रूप से) भोजन। साथ ही, ऐसा भोजन जो उस निम्नतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें सर्वोच्च आत्मा का उद्‌घाटन होता है।
अन्नमय कोष	पूर्ण पार्थिव शरीर, स्थूल (पूर्ण) शरीर (ढांचा)—जो भोजन से पोषित होता है और जो आत्मा का वाह्य आच्छादन, चादर अथवा परदा है। यह भौतिक जगत भी है—यह सवसे मोटा अथवा निम्नतम स्वरूप है जिसमें व्रह्म के वारे में यह समझा जाता है कि वह सांसारिक अस्तित्व में व्यक्त होता है।
अप	जल, सृजन के पांच तत्वों में से एक तत्व।
अपरिग्रह	संचय अथवा एकत्र करने की भावना से मुक्त होना।
अपान वायु	सशक्त वायु में से एक वायु जो निचले उदर के क्षेत्र में संचलित होती है और मूत्र तथा विष्ठा निष्कासन की क्रिया पर नियंत्रण करती है।
अभय	भय से मुक्ति।
अभिनिवेश	जीवन के प्रति स्वाभाविक रूप से आसक्ति और यह भय कि मृत्यु होते ही व्यक्ति सभी से विछुड़ जाएगा।
अभ्यास	सतत अध्ययन और अनुशासित रियाज़।
अमनस्कत्व	योग का उद्देश्य मन और वुद्धि को धीरे-धीरे शांत करना है। जव भीतर और वाहर उथल-पुथल होती है तव मानसिक और वौद्धिक ऊर्जाएं नष्ट हो जाती हैं। जव मन

की आंतरिक अथवा संवेगात्मक उथल-पुथल शांत हो जाती है तब जिस अवस्था का अनुभव किया जाता है, वह मनोलय (मनस् = मन; लय = तल्लीनता) कहलाती है, जब मन चंचलताओं से मुक्त होता है तब वह आत्मा में विलीन हो जाता है और उसमें मिल जाता है, जैसे कोई नदी सागर में मिलती है। यह स्थिति किसी साधक के लिए अपने अस्तित्व को संवेगात्मक स्तर पर विलीन कर देना है। जब बुद्धि का स्वयं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है और वह अशांतिकारी विचारों का स्वागत नहीं करता तब जिस अवस्था का अनुभव होता है, उसे अमनस्कत्व कहते हैं। इस अवस्था में वासनाओं अथवा विचारों का कोई अंश नहीं होता। यह स्थिति बौद्धिक स्पष्टता की अवस्था है। अमनस्कत्व = ऐसी अवस्था (त्व) है जो अमनस्क (वासनाओं अथवा विचारों के अवयव) से रहित होती है।

अर्जुन — पांडव राजकुमार, शक्तिवान् धनुर्धारी और महाभारत महाकाव्य का नायक।

अर्थ — अर्थ, चेतना, विशिष्टता, अभिप्राय। मानवीय प्रयत्न के फलस्वरूप प्राप्त वस्तुओं में धन को भी अर्थ कहा जाता है।

अर्थभावनम् — समर्पण अथवा विश्वास (भावना) की अनुभूति जो किसी मंत्र के अर्थ अथवा परमात्मा के नाम पर चिंतन के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

अलब्ध भूमिकत्व — दृढ़ आधार अथवा अभ्यास की सततता प्राप्त करने की असफलता, भावना जो यह प्रकट करे कि वास्तविकता को जानना संभव नहीं है।

अवस्था — मन की स्थिति अथवा दशा।

अविद्या — अज्ञानता, विशेषकर आध्यात्मिक अर्थ में।

अविरति — विषयासक्ति।

अशंस्कत्व — प्रशंसा अथवा निंदा (= शंस) के लिए विरक्ति (= असंकत्व)।

अशून्य — जो शून्य न हो; पूर्णरूपेण भरा हुआ।

अशून्यावस्था — स्पष्टता की ऐसी अवस्था जहां बुद्धि का स्वयं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है और वह दोलायमान विचारों को उथल-पुथल करने से रोकती है।

अशोक वन — लंका में अशोक वृक्षों का उपवन जहां राक्षस राजा रावण ने सीता को बंदी बनाकर रखा था जो अपने पति राम के प्रति स्वामिभक्त बनी रही।

अश्व	घोड़ा।
अश्विनी मुद्रा	गुदा संवरणी मांसपेशियों का संकुचन।
असत्	अविद्यमान, अवास्तविक।
अस्तेय	चोरी न करना।
अस्थि	हड्डी।
अस्मिता	अहंभाव।
अहंकार	अहं अथवा अहंवाद; शब्दार्थ के अनुसार इसे 'मैं' का निर्माता, कह सकते हैं, यह ऐसी स्थिति है जो 'मैं जानता हूँ' की द्योतक है।
अहिंसा	अहिंसा। इस शब्द का नकारात्मक और सीमित अर्थ 'न मारना' अथवा 'अहिंसा' ही नहीं है अपितु 'सभी प्राणियों के लिए प्रेम' का सकारात्मक और व्यापक अर्थ भी है।
आकाश	आसमान, ईथर (जिसे पांचवा तत्व माना जाता है), मुक्त अंतरिक्ष।
आज्ञाचक्र	भौंहों के मध्य में स्थित तंत्रिका जालिका, आदेश करने का स्थान (आज्ञा—आदेश)
आत्मजय	आत्मा की विजय।
आत्मदर्शन	सर्वोच्च आत्मा के अंश के रूप में आत्मा के दर्शन। आत्मा का दर्शन।
आत्म ज्ञान	अपने आप का ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, आत्मा अथवा सर्वोच्च आत्मा का ज्ञान, सत्य बुद्धि।
आत्मसाधना	आत्म-परिष्करण।
आत्मांजलि मुद्रा	आंतरिक आत्मा को प्रणाम करने हेतु सीने के सामने दोनों हथेलियों को जोड़ना।
आत्मा	सर्वोच्च आत्मा अथवा ब्रह्म।
आत्मानुसंधान	आत्मा की खोज।
आत्माहुति	व्यक्ति का समर्पण। आत्म-त्याग।
आदिशेष	आदियुगीन सर्प जिसके लिए कहा जाता है कि वह सहस्र मुख वाला है तथा वह विष्णु की शय्या है अथवा उसी के फन पर सारा जगत् टिका है।
आधार	अवलंब।
आनंद	प्रसन्नता, हर्ष, सुख।
आनंदमय कोष	आत्मा को आच्छादित करने वाले आनंद कोष।
आयाम	लंबाई, प्रसार, विस्तार। यह अवरोध, नियंत्रण और रुकावट के विचार का द्योतक है।
आयुर्वेद	स्वास्थ्य या औषधि का विज्ञान।

आरंभावस्था — आरंभ (प्रारंभ) की अवस्था (स्थिति)। यह **शिवसंहिता** में बताए गए प्राणायाम की प्रथम अवस्था है।

आरोह — चढ़ना, उठना, ऊंचा होना।

आलंबुसा नाड़ी — नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम। नाड़ियां सूक्ष्म शरीर के नलिकानुमा अवयव होते हैं जिनमें से ऊर्जा प्रवाहित होती है। आलंबुसा के लिए बताया जाता है कि यह नाड़ी मुख और गुदा को मिलाती है।

आलस्य — अकर्मण्य, सुस्ती, उदासीनता।

आसन — विशिष्ट मुद्रा में स्थित होना, योग की तीसरी अवस्था।

आहुति — किसी दैवी शक्ति के लिए बलि या नैवेद्य, किसी विधिवत् धार्मिक कृत्य अथवा अनुष्ठान के समय नैवेद्य आदि।

इंद्रियाँ — प्रत्यक्ष ज्ञान और कर्म की इंद्रियां।

इच्छा — अभिलाषा, कामना, इच्छा-शक्ति।

इड़ा नाड़ी — एक नाड़ी अथवा ऊर्जा की नलिका जो बाएं नासारंध्र से प्रारंभ होती है और इसके बाद सिर के शिखर तक जाती है तथा वहां से मेरुदंड के आधार तक नीचे उतरती है। वह अपने प्रवाह के साथ चंद्र ऊर्जा ले जाती है और इसलिए इसे चंद्रनाड़ी (चंद्र ऊर्जा की नलिका) कहा जाता है।

इष्ट देवता — मनपसंद देवता।

ईश्वर — सर्वोच्च आत्मा, परमात्मा।

ईश्वर प्रणिधान — साधक के अपने कर्मों और इच्छाशक्ति का परमात्मा के प्रति समर्पण।

उज्जायी — प्राणायाम का एक प्रकार जिसमें फुफ्फुस पूर्णतया फैलाए जाते हैं और सीने को अभिमानी विजेता के समान फुला लिया जाता है।

उड — ऊपर की ओर, प्रसार।

उड्डालक — ऋषि का नाम जिसने अपने पुत्र श्वेतकेतु को समस्त ज्ञान की कुंजी से संबंधित निर्देश दिए। यह निर्देश **छांदोग्योपनिषद्** का एक भाग है।

उड्डीयान — बंधों (ताले अथवा सील) में से एक बंध। इसमें डायाफ्राम वक्ष से ऊंचा उठाया जाता है और उदरीय अवयव मेरुदंड की ओर पीछे खींचे जाते हैं। उड्डीयान बंध के द्वारा प्राण (जीवन) रूपी महान् पक्षी सुषुम्ना नाड़ी में से होकर उड़ने के लिए बाध्य होता है।

उत्तम — सबसे अच्छा, उत्कृष्ट, प्रथम, सबसे ऊंचा।

उत्तमोत्तम — सर्वाधिक उत्कृष्ट, सर्वोत्तमों में प्रथम, उच्च में सर्वोच्च।

उत्तरकांड, रामायण का	रामायण की उत्तर कथा। रामायण राम के जीवन से संबंधित सुप्रसिद्ध महाकाव्य है।
उत्तर मीमांसा	भारतीय दर्शन की पद्धतियों में से एक पद्धति जो वेदों के आधार पर ईश्वर को स्वीकार करती है लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान पर विशेष बल देती है।
उदान वायु	सशक्त वायु में से एक वायु जो मानव शरीर में व्याप्त है और जो इसमें सशक्त ऊर्जा भरती है। यह वक्षीय रिक्त स्थान में स्थित होती है और वायु तथा भोजन के अंत: ग्रहण पर नियंत्रण करती है।
उपनिषद्	इसकी व्युत्पत्ति सद् (बैठना) धातु में 'उप' (समीप) और 'नि' (नीचे) उपसर्ग जोड़ने से हुई है। इसका अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के चरणों में अथवा उसके समीप बैठना। उपनिषद् वेदों के दार्शनिक अंश हैं। वेद हिन्दुओं के सबसे प्राचीन पवित्र ग्रंथ हैं जिनमें मानव की प्रकृति और ब्रह्मांड तथा वैयक्तिक आत्मा के सार्वभौमिक आत्मा के साथ एकाकार होने के बारे में चर्चा की गई है।
उपप्राण वायु	पांच उप (सहायक) प्राणवायु (सशक्त वायु) होती हैं। ये हैं : नाग, जो डकार द्वारा उदरीय दबाव को राहत देता है; कूर्म, जो पुतलियों की गतियों पर नियंत्रण करता है ताकि बाह्य पदार्थ अथवा तेज रोशनी नेत्रों में न घुस पाए; कृकर, जो नासाद्वारों और गले के नीचे पदार्थों को जाने से रोकता है तथा साधक को छींकने अथवा खांसने के लिए बाध्य करता है; देवदत्त, जो उबासी पैदा करके थके शरीर में अधिक आक्सीजन लेने की व्यवस्था करता है; और धनंजय, जो मृत्यु के बाद भी शरीर में विद्यमान रहता है और कभी-कभी शव को भी फुला देता है।
उष्ट्रासन	ऊंट की तरह का आसन।
ऊर्ध्व	उठा हुआ, ऊपर, ऊपर की ओर।
ऊर्ध्वाधनुरासन	धनुष के समान ऊपर उठा हुआ पश्च चाप।
ऊर्ध्वरेतस्	उर्ध्व—ऊपर, रेतस—वीर्य। ऐसा साधक जो सतत ब्रह्मचर्य का पालन करता है और संभोग से स्वयं को बचाता है। ऐसा साधक जिसने संभोग वासना का उदात्तीकरण कर लिया है।
ऋग्वेद	हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों, चारों वेदों में से प्रथम वेद।
एकाग्र	(एक —एक, अग्र—सबसे आगे)। एक ही वस्तु अथवा

	बिंदु पर केंद्रित, अत्यधिक सतर्क, जहां मानसिक शक्तियां किसी एक बिंदु पर केंद्रित होती हैं ।
ओ३म्	लातानी शब्द 'ओमने' के समान संस्कृत शब्द 'ओ३म्' का अर्थ 'सर्वस्व' है और जो सर्वज्ञता, सर्वव्यापिता और सर्वशक्तिमत्ता की संकल्पनाओं को व्यक्त करता है ।
ओ३म् नमो नारायण ओ३म् नमो शिवाय	चूंकि शब्द ओ३म् एक महान् शक्ति है अतः यह सिफारिश की जाती है कि इसकी शक्ति को नारायण अथवा शिव जैसे देवताओं के नाम से जोड़ कर हलका कर लिया जाए ताकि साधक इसे दोहरा सके और इसकी वास्तविक विशिष्टता को आत्मसात् कर सके ।
ओजस्	शक्ति, चमक, शान ।
कंद	कंदीय जड़, गांठ। कंद का आकार गोलाईनुमा होता है जो लगभग चार इंच का होता है और गुदा से लगभग बारह इंच ऊपर तथा नाभि के पास स्थित होता है जहां तीन नाड़ियां—सुषुम्ना, इड़ा, और पिंगला—मिलती और फिर अलग-अलग होती हैं। यह ऐसे आच्छादित होता है मानो किसी मुलायम कपड़े से ढका हुआ हो ।
कंद स्थान	कंद की जगह अथवा स्थिति ।
कठोपनिषद्	पद्य में एक प्रमुख उपनिषद् । यह उपनिषद् ज्ञानपिपासु नचिकेता तथा मृत्यु-देवता यम में हुए संवाद के रूप में है ।
कपाल	खोपड़ी ।
कपालभाति	कपाल—खोपड़ी; भाति—प्रकाश । कपालभाति एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे स्नायु स्वच्छ किए जाते हैं । यह भस्त्रिका प्राणायाम का एक कोमल स्वरूप है ।
कफ	श्लेष ।
कर्म	क्रिया ।
कर्मफल त्यागी	ऐसा साधक जिसने कर्म के फल को त्याग दिया है ।
कर्ममार्ग	कार्य द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के लिए सक्रिय व्यक्ति का मार्ग ।
कर्ममुक्त	ऐसा साधक जो कर्म के परिणाम अथवा फल से मुक्त हो गया है ।
कर्मेंद्रिय	कर्म, मलोत्सर्जन, प्रजनन, हाथ, पैर और वाणी की इंद्रियां ।
काम	इच्छा, वासना ।
कारण शरीर	शरीर का आंतरिक मूलतत्व, कारण (आकस्मिक संरचना) । यह आनंदमय कोष (प्रसन्नता का माध्यमिक आच्छादन) है । इसकी चेतना का अनुभव तभी होता है जब साधक अपने

ध्यान में पूर्णतया तल्लीन हो जाता है अथवा स्फूर्तिदायक निद्रा से जागता है।

काल समय।

काल चक्र समय का पहिया।

क्रिया प्रायश्चित संबंधी अनुष्ठान, शुद्ध करने की प्रक्रिया।

कुंडलिनी कुंडलिनी (कुंडल—रस्सी की पिंडी; कुंडलिनी, कुंडलित सर्पिणी) शब्द ब्रह्मांडीय ऊर्जा से उत्पन्न हुआ है। यह शक्ति अथवा ऊर्जा कुंडलित और सोते हुए सर्प का प्रतीक है। यह शक्ति मेरुदंड के आधार पर स्थित सबसे नीचे के नाड़ी केंद्र में प्रसुप्त अवस्था में रहती है। इस नाड़ी केंद्र को मूलाधार चक्र कहते हैं। इस प्रसुप्त ऊर्जा को जाग्रत किया जाता है और मुख्य मेरुदंड की प्रवाहिका में से ऊपर उठाया जाता है। मेरुदंड की प्रवाहिका को सुषुम्ना कहा जाता है जो सहस्रार तक चक्रों का भेदन करती है। सहस्रार हजार दल का कमल है जो सिर में स्थित होता है। जब कुंडलिनी जागृत हो जाती है तो योगी सर्वोच्च सार्वभौम आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

कुंभ जल का पात्र, घड़ा, चषक।

कुंभक पूर्ण पूरक क्रिया अथवा पूर्ण रेचक क्रिया के बाद श्वास के धारण अथवा समयावधि के अंतराल को कुंभक क्रिया कहते हैं। फुफ्फुस या तो पूर्ण रूप से वायु पूरित हो जाते हैं अथवा नितांत रिक्त हो जाते हैं, जैसे एक जल का घड़ा या तो भरा हो अथवा खाली हो।

कुंभकरण घट जैसे कानों वाला। एक विशाल दैत्य का नाम जो रावण का भाई था और अंततः राम ने जिसका वध किया। उसने देवताओं को अपमानित करने के लिए सबसे कठोर तपस्याओं का अभ्यास किया। ब्रह्मा उसे वरदान देने वाले ही थे कि देवताओं ने सरस्वती से, जो वाणी की देवी है, प्रार्थना की कि वह उनकी जिह्वा पर विराजमान हो जाए और उनकी वाणी को बदल दे। जब कुंभकरण ब्रह्मा के पास गया तो देवताओं के सम्राट इंद्र-पद को मांगने की बजाए निद्रापद (निद्रा की अवस्था) की याचना की और उसके इस अनुरोध को ब्रह्मा ने तत्काल ही स्वीकार कर लिया। उसके प्रयत्न मृत्यु समान आलस्य में बदल गए क्योंकि उसका ध्यान और आराधनाएं तामसिक वृत्ति की थीं।

कुरुक्षेत्र दिल्ली के समीप विशाल मैदान जहां कौरवों और पांडवों

के बीच महाभारत-युद्ध हुआ था। शरीर की तुलना इसी क्षेत्र से की गई है जिसमें गुण और अवगुण की शक्तियों का अथवा स्वार्थ और कर्तव्य का संघर्ष होता है।

कुलाल चक्र कुम्हार (कुलाल) का चक्र (पहिया)

कुश धार्मिक अनुष्ठानों के समय प्रयोग में लाई जाने वाली पवित्र घास।

कुहू नाड़ियों में से एक नाड़ी जिसके लिए यह बताया जाता है कि वह सुषुम्ना के सामने स्थित है और इसका कार्य मल का त्याग करना है।

कूर्म नाड़ी सहायक नाड़ियों में से एक नाड़ी जिसका कार्य शरीर और मन को स्थिर करना है।

कूर्म वायु सहायक सशक्त वायु में से एक वायु जिसका कार्य पलकों के संचलन पर नियंत्रण करना है और बाह्य पदार्थ को अथवा दीप्त प्रकाश को नेत्रों में प्रवेश करने से रोकना है।

कृकर वायु पांच सहायक सशक्त वायु में से एक वायु जो एक बार छींकने या खांसने से नासाद्वारों और गले के नीचे पदार्थों को जाने से रोकती है।

कृष्ण योगेश्वर, सभी योग के स्वामी। हिंदू पौराणिकी के सबसे अधिक यशस्वी नायक। विष्णु भगवान् के आठवें अवतार।

केवल कुंभक जब कुंभक के अभ्यास (श्वसन प्रक्रिया) इतने परिशुद्ध हो जाते हैं कि वे सहज हो जाते हैं तो इन्हें केवल (शुद्ध या सरल) कुंभक कहा जाता है।

कैवल्यावस्था कैवल्य पूर्ण एकाकीपन, एकांतिकता अथवा आत्मा की पदार्थ से निर्लिप्तता और सर्वोच्च आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाने की अवस्था है। कैवल्यावस्था एक ऐसी अवस्था है जो अंतिम मुक्ति अथवा परमानंद की अवस्था होती है।

कोशिकीय नाड़ी नाड़ियों में से एक नाड़ी जो पैर के अंगूठों में समाप्त होती है।

कोष एक आच्छादन, आवरण। वेदांत दर्शन के अनुसार तीन प्रकार के शरीर होते हैं जो आत्मा को आच्छादित किए रहते हैं। इन तीन प्रकारों अथवा संरचनाओं के शरीर के पांच अंतरभेदी और अंतर आश्रित कोष (आच्छादन अथवा आवरण) होते हैं। ये पांच कोष इस प्रकार हैं: (क) अन्नमय अथवा पाचन का शारीरी आच्छादन; (ख) प्राणमय अथवा शारीरिक आच्छादन जिसमें श्वास-प्रश्वास और शरीर

की अन्य प्रणालियां सम्मिलित होती हैं; (ग) मनोमय अथवा मनोवैज्ञानिक आच्छादन जो आत्मपरक अनुभव से अप्राप्त चेतना, भावना और अभिप्रेरण को प्रभावित करता है; (घ) विज्ञानमय अथवा बौद्धिक आच्छादन जो वैयक्तिक अनुभव से प्राप्त तर्क और न्याय की प्रक्रिया को प्रभावित करता है; और (ङ) आनंदमय अथवा प्रसन्नता का आध्यात्मिक आच्छादन । अन्नमय कोष स्थूल शरीर, मोटा शरीर बनाते हैं । प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष सूक्ष्म शरीर बनाते हैं । आनंदमय कोष कारण शरीर, अर्थात् आकस्मिक शरीर बनाते हैं ।

कौषीतक्युपनिषद् मुख्य उपनिषदों में से एक उपनिषद् ।

क्रोध गुस्सा ।

क्षिप्त व्याकुल, उपेक्षित ।

क्षेत्र क्रियाकलाप के क्षेत्र के रूप में शरीर ।

क्षेत्रज्ञ कृषक । शरीर का ज्ञाता, आत्मा ।

गंध बास ।

गर्भ भ्रूण ।

गांधारी नाड़ी नाड़ियों में से एक नाड़ी जो कहा जाता है कि इड़ा नाड़ी के पीछे स्थित है तथा बाएं नेत्र की ओर समाप्त होती है तथा दृष्टि की क्रियाशीलता को नियमित करती है ।

गायत्री मंत्र वेदों की माता ब्रह्मा की पत्नी पर रचित वैदिक श्लोक ।

गु 'गुरु' शब्द का प्रथम पदांश जिसका अर्थ अंधकार है ।

गुण प्रकृति की गुणवत्ता, अंश या भाग । प्रकृति (ब्रह्मांडीय पदार्थ) के तीन भागों—सत्व, रजस, तमस में से एक ।

गुणातीत सत्व, रजस, तमस, इन तीनों गुणों से मुक्त व्यक्ति अर्थात् जो इनसे ऊपर उठ गया है ।

गुरु आध्यात्मिक शिक्षक, ऐसा व्यक्ति जो आध्यात्मिक संदेह के अंधकार को आलोकित करता है ।

गौतम दर्शन की न्याय पद्धति के प्रतिपादक का नाम ।

घट मिट्टी का एक बड़ा जलपात्र, उत्कट प्रयत्न ।

घटावस्था प्राणायाम की दूसरी अवस्था है जिसकी चर्चा **शिवसंहिता** में की गई है, जहां घट (मिट्टी का पात्र) रूपी शरीर को प्राणायाम की अग्नि में खूब सेंका जाता है ताकि शरीर को स्थिरता प्राप्त हो सके ।

घेरंड संहिता हठ योग पर शास्त्रीय पुस्तक ।

चक्र शाब्दिक अर्थ में पहिया या चक्र । कहा जाता है कि मानव

शरीर में तीन मुख्य नाड़ियों अर्थात् सुषुम्ना, पिंगला और इड़ा में से होकर ऊर्जा प्रवाहित होती है। सुषुम्ना मेरुदंड में स्थित होती है। पिंगला और इड़ा दाहिने और बांए नासारंध्रों में से क्रमशः प्रारंभ होती हैं, दोनों नाड़ियां सिर के शिखर तक संचलित होती हैं और नीचे की ओर मेरुदंड के आधार तक जाती हैं। ये दोनों नाड़ियां एक-दूसरे को पार करती हैं और सुषुम्ना को भी पार करती हैं। नाड़ियों के मिलन स्थल को चक्र अथवा उड़न-चक्र कहते हैं जो शरीर तंत्र को नियमित करते हैं। महत्वपूर्ण चक्र इस प्रकार हैं: (क) मूलाधार (मूल=जड़, स्रोत; आधार=सहायक, सशक्त भाग) जो गुदा से ऊपर श्रोणि में स्थित होता है; (ख) स्वाधिष्ठान (स्व=भरपूर शक्ति, आत्मा; अधिष्ठान= स्थिति अथवा आवास) जो प्रजनन के अंगों पर स्थित है; (ग) मणिपूरक (मणिपूर=नाभि) जो नाभि में स्थित है; (घ) मनस् (=मन) और (ङ) सूर्य (=सूरज) जो नाभि और हृदय के मध्य के क्षेत्र में स्थित है; (च) अनाहत (=अपराजित), जो हृदय क्षेत्र में स्थित है; (छ) विशुद्धि (=पवित्रता) जो ग्रसनी-क्षेत्र में स्थित है; (ज) आज्ञा (आदेश) जो भौहों के मध्य स्थित है; (झ) सोम (=चंद्रमा) जो मस्तिष्क के केंद्र में स्थित है; (ञ) ललाट (=माथा) जो माथे का शिखर भाग है; और (ट) सहस्र (=हजार) जो प्रमस्तिष्कीय गर्त में सहस्रदलकमल कहलाता है।

चक्षु नेत्र।

चंद्र चंद्रमा।

चंद्र नाड़ी चंद्रमा की नाड़ी, यह इड़ा नाड़ी का दूसरा नाम है।

चंद्रभेदन प्राणायाम चंद्र को चंद्रमा कहते हैं। भेदन शब्द 'भिद्' धातु से निकला है जिसका अर्थ चुभोना, तोड़ना अथवा उसमें से होकर गुज़रना है। चंद्रभेदन प्राणायाम में श्वास बाएं नासारंध्र में से ली जाती है और प्राण इड़ा अथवा चंद्रनाड़ी में से होकर प्रवाहित होते हैं और इसके बाद दाहिने नासारंध्र में से श्वास बाहर निकाली जाती है जो पिंगला अथवा सूर्यनाड़ी का मार्ग है।

चरकसंहिता भारतीय चिकित्सा पद्धति पर एक वृहद् कृति।

चित् विचार, प्रत्यक्ष ज्ञान, बुद्धि और मन। आत्मा, ओज और जीवन को अनुप्राणित करने वाला नियम। व्यापक चेतना।

चित्त अपने पूर्ण अथवा सामूहिक अर्थ में मन जो तीन श्रेणियों से

मिलकर निर्मित होता है : (क) मनस् (मन) जिसमें ध्यान, चयन और रद्द करने की शक्ति होती है; (ख) बुद्धि (तर्क), निर्णायक अवस्था जो वस्तुओं के मध्य विभेद सुनिश्चित करती है; और (ग) अहंकार (अहं), 'मैं' का निर्माता ।

चित्रानाड़ी हृदय से निकलने वाली नाड़ियों में से एक नाड़ी, जिसमें से कुंडलिनी की शक्ति (सृजनात्मक ऊर्जा) सहस्रार तक पहुंचती है ।

चिदात्मा विचार करने का नियम अथवा शक्ति, शुद्ध बुद्धि और सर्वोच्च आत्मा ।

छाँदोग्योपनिषद् उपनिषदों में से एक प्रमुख उपनिषद् ।

जठराग्नि पाचक अग्नि ।

जप प्रार्थना ।

जय विजय, सफलता ।

जागृत जागरूक, सावधान ।

जागृतावस्था जागरूकता की अवस्था, चेतना ।

जागृति जागरूकता, चेतना ।

जाबाली एक ऋषि का नाम, जो जाबाला के पुत्र थे । जाबाला कर्म से दासी थीं । उन्होंने यह स्वीकार किया था कि उन्हें अपने माता-पिता का ज्ञान नहीं था और गौतम ऋषि ने उन्हें लड़के के रूप में स्वीकार कर लिया था । गौतम ऋषि उनके भोलेपन और उनकी विश्वसनीयता पर मुग्ध थे । गौतम ने उनका नाम सत्यकाम-जाबालि (सत्यकाम—सत्य का प्रेमी; जाबाली—जाबाला का पुत्र) रखा ।

जालंधर बंध जालंधर एक ऐसा आसन है जिसमें गर्दन और गला आगे बढ़ाए जाते हैं और चिबुक को ग्रसनीय जालक प्रेरित करने के लिए छाती के सिरे पर हंसली के बीच गर्त में आराम कराया जाता है ।

जाल पाश, जाली । संग्रह, संस्था, परिमाण ।

जितेंद्रिय ऐसा साधक जिसने अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है अथवा अपनी ज्ञानेंद्रियों पर अधिकार पा लिया है ।

जीव एक जीवित प्राणी, प्राणी । एक अलग आत्मा जो ब्रह्मांडीय आत्मा से अलग की जाती है ।

जीवन्मुक्त सर्वोच्च आत्मा के सत्य ज्ञान द्वारा साधक अपने ही जीवन-काल में मुक्त हो जाता है ।

जीवात्मा वैयक्तिक अथवा निजी आत्मा ।

ज्ञान पवित्र ज्ञान जो धर्म और दर्शन के उच्चतर सत्यों पर मनन

करने के बाद प्राप्त होता है, जो व्यक्ति को यह सिखाता है कि अपनी ही प्रकृति को किस प्रकार समझा जाए।

ज्ञानचक्षु	बुद्धि का नेत्र (चक्षु), मन की आंख, बौद्धिक दूरदृष्टि (जो पार्थिव नेत्र से भिन्न होती है)।
ज्ञान मार्ग	ज्ञान का मार्ग जिसके द्वारा व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है।
ज्ञान मुद्रा	हाथ की चेष्टा, जहां तर्जनी और अंगूठे के अग्रभाग को समीप लाया जाता है और शेष तीन अंगुलियों को फैलाए रखा जाता है। यह चेष्टा ज्ञान का प्रतीक है। तर्जनी अंगुली वैयक्तिक आत्मा की प्रतीक है, अंगूठा सर्वोच्च सर्व व्यापक आत्मा का प्रतीक है और इन दोनों के मिलन को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है।
ज्ञानेंद्रिय	ज्ञान, श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद और गंध की ज्ञानेंद्रियां
ज्वलंति	प्रकाशपूर्ण अथवा चमकदार।
ताडासन	जिस आसन में साधक दृढ़ता से और एक ताड (पर्वत) के समान सीधा खड़ा होता है।
तंत्र	ऐंद्रजालिक और रहस्यमय सूत्रों को सिखाने वाली कृतियों का वर्ग।
तत्व	'यथार्थता'। सत्य अथवा पहला नियम, एक तत्व अथवा मुख्य पदार्थ। मानवीय आत्मा अथवा भौतिक संसार की वास्तविक प्रकृति और सर्वोच्च ब्रह्मांडीय आत्मा जो ब्रह्मांड में व्याप्त है।
तत्वत्रय	तीन मुख्य तत्व, अर्थात, (क) सत् (अस्तित्व), (ख) असत् (अनस्तित्व) और (ग) सर्वोच्च सत्ता, ईश्वर (सभी का सृजक)।
तत्वमसि	वह तू ही है।
तन्मात्रा	सूक्ष्म तत्व अर्थात् शब्द् (ध्वनि का सार), स्पर्श (छूने का भाव), रूप (आकार), रस (तरल पदार्थ) और गंध (खुशबू)। वे इंद्रियों (ज्ञान शक्तियों) की सूक्ष्म वस्तुएं हैं, अर्थात् श्रोतृ (सुनने की शक्तियां), त्वक (अनुभव करना), चक्षु (देखना), रसना(चखना) , और घ्राण (सूंघना)।
तनुमानसा	मन का विलोपन।
तपस	जलने का प्रभाव जिसमें शुद्धता, आत्म संयम और तपस्या निहित होती है।
तमस्	अंधकार अथवा अज्ञानता, तीन गुणों में से एक गुण अथवा प्रकृति में समस्त वस्तुओं के घटक।
तामसिक	जिसमें तमस (अंधकार अथवा अज्ञानता) का गुण हो।

तुरीयावस्था	मोक्ष की चौथी अवस्था, जागृति, स्वप्न और निद्रा की अन्य तीन अवस्थाओं से परे तथा उनको मिलाते हुए समाधि की अवस्था।
तेजस	चमक, दीप्ति, शान।
तैत्तरीयोप निषद्	मुख्य उपनिषदों में से एक उपनिषद् का नाम।
त्यागी	ऐसा साधक जो त्याग करता है।
त्राटक	किसी वस्तु को एकाग्रता से देखना।
दल	बड़ी संख्या।
दर्शन	दृष्टि, विवेक। दर्शन की एक पद्धति भी।
द्वारपाल	द्वार का अभिभावक अथवा रक्षक।
दृढ़	पकड़ना अथवा केंद्रित करना।
दुःख	निराशा और पीड़ा।
देवदत्त वायु	सशक्त वायु में से एक वायु जो उबासी उत्पन्न करके थके हुए शरीर में अतिरिक्त ऑक्सीजन खींचती है।
देश	स्थान अथवा राज्य।
दैर्घ्य	समानांतर प्रसार।
दोष	कमी अथवा अभाव, हानिकर गुण, शरीर के तीन द्रवों की अव्यवस्था।
दौर्मनस्य	निराशा।
द्वेष	नफरत, शत्रुता।
धनंजय वायु	सशक्त वायु में से एक वायु जो मृत्यु के बाद भी शरीर में रह जाती है और यदा-कदा शव को फुला देती है।
धमन	फूंकना जैसा कि धौंकनियों से फूंका जाता है।
धमनी	भौतिक अथवा सूक्ष्म शरीर में नलिकानुमा अवयव अथवा नलिका जो विभिन्न स्वरूपों में ऊर्जा को प्रवाहित करती है।
धर्म	'धृ' धातु से निकला हुआ शब्द जिसका अर्थ पकड़ना, रखना, सहायता करना, उठाना है। धर्म का अर्थ कर्त्तव्य, नैतिक क्षमता, सत्यता, भले कार्यों से है। यह आचरण की संहिता है जो आत्मा को उठाए रखती है और नेकी, नैतिकता अथवा धार्मिक क्षमता को पैदा करती है जिससे मनुष्य का विकास होता है। यह मानव अस्तित्व के चार लक्ष्यों में से एक लक्ष्य माना जाता है।
धर्मक्षेत्र	उस स्थान का नाम जहां महाभारत के युद्ध में कौरवों और पांडवों के मध्य घमासान युद्ध हुआ था। यह वह युद्ध स्थल है जहां कृष्ण ने पांडव राजकुमार अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था और अर्जुन को एक योद्धा के कर्त्तव्य को निभाने के

लिये प्रेरित किया था।

धातु — एक तत्व। शरीर का तरल पदार्थ अथवा रोग, यथा —वित्त (=वायु), पित्त (=पित्त दोष) और कफ (बलगम)।

धारण — केंद्रीयकरण अथवा पूर्ण ध्यान। पतंजलि द्वारा बताई गई योग की सही अवस्था।

ध्यान — मनन। पतंजलि द्वारा बताई गई योग की सातवीं अवस्था।

नचिकेता — सत्य का अन्वेषक तथा कठोपनिषद् के मुख्य चरित्रों में से एक चरित्र। उसके पिता वाजश्रवा चाहते थे कि वे अपनी सारी संपत्ति दान कर दें ताकि धार्मिक क्षमता प्राप्त की जा सके। नचिकेता को उस समय उलझन महसूस हुई जब उसके पिता ने वृद्ध और दुर्बल पशुओं को दान के रूप में देना प्रारंभ किया। उसके अपने पिता से बार-बार यह पूछने पर कि "आप मुझे किसको देंगे ?" उसके पिता ने उत्तर दिया, "मैं तुम्हें यम (मृत्युदेवता) को दे दूंगा।" नचिकेता मृत्युदेवता के पास गया और उसने तीन वरदान मांगे। इन वरदानों में से अंतिम वरदान मृत्यु के बाद जीवन के रहस्य का ज्ञान था। यम नचिकेता को सांसारिक सुखों की ओर उन्मुख करना चाहते थे लेकिन नचिकेता अपने उद्देश्य से अडिग रहा और अंततोगत्वा यम ने उसे मनोवांछित ज्ञान उपलब्ध कराया।

नाग वायु — पांच सहायक वायु में से एक वायु जो डकार द्वारा उदरीय दबाव को हलका करती है।

नाद — आंतरिक रहस्यपूर्ण ध्वनि।

नादरूपिणी — अवतरित ध्वनि।

नाड़िका — लघु नाड़ी।

नाड़ी — सूक्ष्म शरीर का नलिकानुमा अवयव जिसमें ऊर्जा प्रवाहित होती है। नाड़ियां नलिकाएं होती हैं जिनमें से वायु, जल, रक्त, पोषक तत्व और अन्य पदार्थ समस्त शरीर में प्रवाहित होते हैं। ये नलिकाएं ब्रह्मांडीय, सशक्त, शुक्रीय और अन्य ऊर्जाएं तथा संवेग, चेतना और आध्यात्मिक परिमल प्रवाहित करती हैं।

नाड़ी चक्र — स्थूल, सूक्ष्म और आकस्मिक शरीर में गुच्छिका अथवा जाल रचना।

नाड़ी शोधन प्राणायाम — नाड़ियों की शुद्धता अथवा स्वच्छता के लिए किया गया प्राणायाम। यह सर्वोच्च और सबसे कठिन प्राणायाम है।

नादानुसंधान — अनुसंधान का अर्थ परीक्षा, योजना, व्यवस्था अथवा उपयुक्त

संबंध से है। नादानुसंधान प्राणायाम के अभ्यास के दौरान श्वास की लयात्मक प्रतिरूपों की ध्वनि की समीपी परीक्षा है तथा ध्वनि में पूर्ण तादात्म्य की स्थिति है जैसे कि संगीतज्ञ गुरु अपने संगीत में निमग्न हो जाता है।

नारद — धर्म तत्वज्ञ ऋषि। वे देवताओं ओर मनुष्यों के मध्य दूत के रूप में कार्य करते हैं। यह कहा जाता है कि उन्होंने वीणा का आविष्कार किया है। वे विष्णु के महान् भक्त तथा भक्ति सूत्र (ईश्वरीय प्रेम के सूत्र) के रचयिता हैं। उन्होंने विधिसंहिता की रचना की है जो उनके नाम से प्रचलित है।

नारायण — विष्णु भगवान का दूसरा नाम।

निदिध्यासन — गहन और पुनरावृत ध्यान, लगातार चिंतन।

निद्रा — नींद।

नियम — अनुशासन द्वारा आत्म शुद्धि। पतंजलि द्वारा वताए गए योग की दूसरी अवस्था।

निरुद्ध — आबद्ध, प्रतिवाधित, नियंत्रित।

निर्बीज — बीज मूल अथवा अंकुर कहलाता है। बीज मंत्र रहस्यपूर्ण अक्षर अथवा पवित्र प्रार्थना है जो प्राणायाम अथवा ध्यान के दौरान बार-बार दोहराई जाती है ताकि चंचल मन को स्थिरता की अवस्था में लाया जा सके। मन में रोपा गया बीज अभ्यास से एकाग्रता जैसी स्थिरता में अंकुरित हो जाता है। यह अभ्यास धीरे-धीरे निर्बीज (निर्—बिना, बीज—बीज) हो जाता है जहां अभ्यासकर्त्ता बीज मंत्र का सहारा नहीं लेता।

निर्बीज ध्यान — ध्यान, जहां अभ्यासकर्ता बीज मंत्र का सहारा नहीं लेता।

निर्बीज प्राणायाम — प्राणायाम जहां अभ्यासकर्ता बीजमंत्र का सहारा नहीं लेता।

निर्वाण — अनंत आनंद; जीवन से मुक्ति।

निर्विषय — वासना से रहित।

निवृत्ति मार्ग — अनुभूति का मार्ग, सांसारिक कार्यों से छुटकारा पाकर और सांसारिक वासनाओं से प्रभावित हुए बिना मुक्ति का मार्ग।

निष्पत्ति — पूर्णता, परिपक्वता।

निष्पत्ति अवस्था — पूर्णता अथवा परिपक्वता की अवस्था।

न्याय — भारतीय दर्शन की एक पद्धति जो मुख्यतया तर्क और साम्यानुमान पर निर्भर विचार के नियमों से संबंधित है तथा तर्क पर विशेष बल देती है।

पंचमहाभूत — पांच पूर्ण तत्व अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और

आकाश ।

पतंजलि दार्शनिक, योगदर्शन के प्रतिपादक, योगसूत्र के रचयिता। उन्होंने योग पर अपनी कृति द्वारा मन की शांति का सृजन किया, व्याकरण पर अपनी कृति द्वारा वाणी की स्पष्टता का बोध कराया और औषधि पर अपनी कृति द्वारा शरीर की शुद्धता का दिग्दर्शन कराया। वे महाभाष्य के प्रसिद्ध लेखक हैं। यह महाभाष्य व्याकरण पर पाणिनी के सूत्रों का बृहत् भाष्य है।

पदार्थाभाव पदार्थ (चीजों या वस्तुओं) का अभाव (अनस्तित्व अथवा अनुपस्थिति)। तथ्यविषयक सृजकता का अभाव । पुरुष अथवा आत्मा (पच्चीसवां तत्व) को साँसारिक अस्तित्व अर्थात तथ्यविषयक सृजकता की जंजीरों से अंतिम रूप से मुक्ति जो अन्य चौबीस तत्वों के ज्ञान के वर्णन से तथा उनसे आत्मा का समुचित रूप से विभेद करने से मिल जाती है।

पद्मासन कमल आसन, मेरुदंड को सीधा रखते हुए फर्श पर पैरों को आर-पार करके बैठना। यह आसन प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास के लिए आदर्श है।

पयस्विनी नाड़ी नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम, यह दाहिने अंगूठे पर समाप्त होती है। कहा जाता है कि यह नाड़ी पूषा (जो पिंगला नाड़ी के पीछे स्थित होती है) और सरस्वती नाड़ी (जो सुषुम्ना नाड़ी के पीछे स्थित होती है) के मध्य स्थित है।

परब्रह्म उच्चतम अथवा परा (सर्वोच्च) ब्रह्म (आत्मा)।

परमात्मा परम (सर्वोच्च) आत्मा।

परा सर्वोच्च।

परा तत्व तत्वों अथवा तत्व (प्राथमिक पदार्थ) से परे, सर्वोच्च सार्वभौमिक आत्मा जो भौतिक जगत से परे है और ब्रह्मांड में व्याप्त है।

परानाड़ी सर्वोच्च नाड़ी।

पराज्ञान सर्वोच्च ज्ञान, पूर्ण ज्ञान।

परिचय पहचान, घनिष्ठता, यदा-कदा पुनरावृत्ति। घनिष्ठ ज्ञान।

परिचयावस्था परिचय (घनिष्ठ ज्ञान) की अवस्था। यह प्राणायाम की तीसरी अवस्था है जैसा कि **शिवसंहिता** में वर्णन किया गया है।

पश्चिमोत्ता नासन एड़ी से लेकर सिर तक गहन रूप से पीछे की ओर झुकना।

पृथ्वी	धरती।
पृथ्वी तत्व	धरती के तत्व।
प्रवृत्ति मार्ग	कर्म का पथ।
प्रकृति	कुदरत, भौतिक जगत का मूल स्रोत, जिसमें तीन गुण सत्व, रजस और तमस सम्मिलित होते हैं।
प्रजापति	सृजित प्राणियों के स्वामी।
प्रणव	पवित्र अक्षर, ओ३म् के लिए एक अन्य शब्द।
प्रतिलोम प्राणायाम	प्रतिलोम का अर्थ बाल, अनाज और धारा का विलोम है। इस प्रकार के प्राणायाम में पूरक क्रिया सांख्यकीय रूप से नियंत्रित की जाती है जो वैकल्पिक रूप से दोनों नासारंध्रों में से होकर पूरी की जाती है और इसके बाद खुले नासारंध्रों में से रेचक क्रिया की जाती है।
प्रत्याहार	ज्ञानेंद्रियों और वासनापूर्ण वस्तुओं के प्रभाव से मन को हटाना और उससे मुक्त करना। योग की पाँचवीं अवस्था।
प्रमाद	उदासीनता, अज्ञानता।
प्रश्नोपनिषद्	वृहत् उपनिषदों में से एक उपनिषद् का नाम।
प्रज्ञा	विवेक, बुद्धि।
प्राण	श्वास, श्वास-प्रश्वास, जीवन, शक्ति, वायु, उर्जा, बल। इससे आत्मा का भी बोध होता है।
प्राणमय कोष	प्राणमय (शारीरिक) कोष (आच्छादन) जो मनोमय (मनोवैज्ञानिक) और विज्ञानमय (बौद्धिक) कोषों (आच्छादनों) के साथ सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं जो आत्मा को घेरे हुए हैं। प्राणमय कोष में श्वास-प्रश्वास, संचलन, पाचन, अंतस्त्रावी, मलोत्सर्जन और प्रजनन प्रणालियाँ सम्मिलित होती हैं।
प्राण वायु	सशक्त वायु जो समस्त मानवीय शरीर में व्याप्त होती है। यह सीने के क्षेत्र में संचलित होती है।
प्राण-ज्ञान	श्वास और जीवन का ज्ञान।
प्राणायाम	श्वास का आयाम (लयात्मक नियंत्रण)। योग की चौथी अवस्था। यह एक धुरी है जिस पर योग का पहिया चक्कर लगाता है। प्राणायाम में पूरक क्रिया, रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया की समान अवधि अथवा समान गति संचलन।
प्राणायाम-विद्या	प्राणायाम की विद्या (ज्ञान, सीखना, अनुश्रुति अथवा विज्ञान)।

प्लाविनी प्राणायाम	प्लावन का अर्थ तैरना, उतराना और वल निमग्न होना है। प्लाविनी प्राणायाम के लिए कहा जाता है कि साधक उतरा या तैर सकता है। इस प्राणायाम के नाम के सिवाए योग की पुस्तकों में इस प्रकार के प्राणायाम का उल्लेख शायद ही कहीं मिल सके।
पिंगला नाड़ी	उर्जा की नाड़ी अथवा प्रवाहिका जो दाहिने नासारंध्र से प्रारंभ होती है और उसके पश्चात् सिर के शिखर तक संचलित होती है। तत्पश्चात् वहां से मेरुदंड के आधार तक जाती है। चूंकि इस नाड़ी में से होकर सौर ऊर्जा प्रवाहित होती है इसलिए इसको सूर्य नाड़ी भी कहा जाता है। पिंगला का अर्थ कपिल अथवा रक्ताभ है।
पित्त	पित्त शरीर का एक तरल पदार्थ है। अन्य दो तरल पदार्थों को वात (वायु) और कफ (श्लेष्मा) कहते हैं।
पुरुष	सार्वभौमिक मनोवैज्ञानिक नियम।
पुरुषार्थ	मानव जीवन के चार उद्देश्य। ये उद्देश्य हैं—धर्म (कर्त्तव्य), अर्थ (धन संग्रह), काम (वासनाएं) और मोक्ष (मुक्ति)।
पूरक	अंत: श्वसन अथवा फुफ्फुसों का वायु से भरना।
पूर्व मीमांसा	भारतीय दर्शन पद्धतियों में से एक पद्धति जो देवत्व की संकल्पना के विषय में बताती है लेकिन यह कर्मों और अनुष्ठानों पर विशेष बल देती है।
बंध	बंधन अथवा वेड़ी। यह एक ऐसा आसन है जहां शरीर के कतिपय अवयव अथवा अंश संकुचित हो जाते हैं अथवा नियंत्रित हो जाते हैं।
बद्धकोणासन	आसनों में से एक ऐसा आसन जिसकी प्राणायाम अथवा ध्यान के अभ्यास के लिए सिफारिश की जाती है।
बाह्य कुंभक	पूर्ण रेचक क्रिया के वाद श्वास का रोकना जव फुफ्फुस पूर्णतया खाली हो जाते हैं।
विंदु	विंदु, लघुकण, विंदी, नुकता।
बीज	वीज अथवा अंकुर।
बीज मंत्र	ध्यान की अवस्था में नौसिखिया साधक को यदा-कदा मंत्रों का उच्चारण सिखाया जाता है ताकि वह शांत हो सके और सांसारिक वासनाओं से दूर हो सके। वीज मंत्र रहस्यात्मक शब्द हैं जिनके द्वारा पवित्र प्रार्थना की जाती है और यह प्रार्थना प्राणायाम अथवा ध्यान के दौरान मन ही मन दोहराई जाती है और इस प्रकार मन में जो वीज अंकुरित होता है, वह एक निर्देशक होता है।

बुद्ध	बौद्धधर्म के प्रवर्तक ।
बुद्धि	बुद्धिमता, तर्क, विवेक और न्याय ।
ब्रह्म	सर्वोच्च जीवात्मा,ब्रह्मांड का कारण, ब्रह्मांड में सर्वत्र व्याप्त आत्मा ।
ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य, धार्मिक अध्ययन और आत्म संयम का जीवन ।
ब्रह्मनाड़ी	सुषुम्ना नाड़ी का दूसरा नाम, मेरुदंड के मध्य में से प्रवाहित ऊर्जा की मुख्य नलिका । जब इसमें ऊर्जा (प्राण) प्रवेश करती है तो यह साधक को ब्रह्म अर्थात् अंतिम सौंदर्य तक ले जाती है । इसलिए इस नाड़ी को यह नाम दिया गया है ।
ब्रह्मपुरी	ब्रह्म, मानव शरीर की पुरी (नगर) ।
ब्रह्मरंध्र	सिर के शिखर में रंध्र जिसके लिए कहा जाता है कि आत्मा मृत्यु के समय शरीर को इसी रंध्र से छोड़ती है ।
ब्रह्मविद्या	सर्वोच्च आत्मा का ज्ञान ।
ब्रह्मा	सर्वोच्च आत्मा, सृजक ।
भगवद्गीता	दैवी गीत, कृष्ण और अर्जुन के मध्य पवित्र वार्तालाप। यह हिंदू दर्शन की स्रोत पुस्तकों में से है जिसमें उपनिषदों का सार दिया गया है ।
भक्ति	पूजा, आराधना ।
भक्ति मार्ग	अपने परमात्मा की आराधना के द्वारा मुक्ति का मार्ग ।
भद्रासन	प्राणायाम अथवा ध्यान के अभ्यास के लिए बताए गए आसनों में से एक आसन ।
भय	डर ।
भव वैराग्य	सांसारिक वासनाओं का अभाव ।
भस्त्रिका	भट्टी में प्रयोग की जाने वाली धौंकनी । भस्त्रिका एक प्रकार का प्राणायाम है जिसमें वायु जबरदस्ती खींची जाती हैं और बाहर निकाली जाती है अथवा किसी भट्टी के समान फूंकी जाती है ।
भावनम्	प्रत्यक्ष ज्ञान, विश्वास, समझ ।
भावना	भक्ति अथवा विश्वास की भावना ।
भुव	पर्यावरण अथवा ईथर, तीन जगत में से एक जगत जो पृथ्वी के ठीक ऊपर है। यह रहस्यात्मक शब्द है जो वाणी को सर्वप्रथम स्वर देता है ।
भूः	पृथ्वी, तीन जगतों में से प्रथम जगत । अन्य दो ईथर और आकाश अथवा स्वर्ग हैं। यह रहस्यात्मक शब्द है जो वाणी को सर्वप्रथम स्वर देता है ।
भेदन	चुभोना, तोड़ना, गुजरना ।

भोग	सांसारिक सुखों का भोगना।
भ्रमर	भौंरा, एक बड़ी काली मक्खी।
भ्रामरी	एक प्रकार का प्राणायाम जिसमें रेचक क्रिया के दौरान भ्रमर की मर्मर ध्वनि के समान भिनभिनाने की आवाज़ आती है।
भ्रांति दर्शन	भ्रांति (अशुद्ध) दर्शन अथवा ज्ञान, भ्रम।
मंत्र	वैदिक मंत्र।
मज्जा	सार।
मणिपूरक चक्र	नाड़ियों का चक्र जो नाभि के क्षेत्र में स्थित है।
मद	घमंड, वासना।
मध्यम	बीच का, औसत, अति सामान्य।
मनन	चिंतन, ध्यान।
मनस्	वैयक्तिक मन जिसमें ध्यान, चयन अथवा रद्द करने की शक्ति समाहित होती है। ज्ञानेंद्रियों का शासक।
मनसचक्र	नाड़ियों का चक्र जो नाभि और हृदय के बीच में स्थित है।
मनोमय कोष	आत्मा को आच्छादित करने वाला एक कोष। मनोमय कोष चेतना, भावना और संवेग के उन कार्यों को प्रभावित करता है जो वैयक्तिक अनुभव से उत्पन्न नहीं होते।
मनोलय	मनोलय (मनस=मन; लय=निमग्नता) एक ऐसी अवस्था है जहां मन के आंतरिक अथवा संवेगीय उतार-चढ़ाव शांत हो जाते हैं। तत्पश्चात् मन चंचलता से मुक्त हो जाता है और आत्मा में उसी प्रकार विलीन हो जाता है जैसे कोई नदी सागर में मिल जाती है। इस प्रकार वैयक्तिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
मनोज्ञान	मन और संवेगों की क्रियाविधि का ज्ञान।
महत्	उत्पादित नियम का अविकसित मुख्य बीज जहाँ से भौतिक जगत की सभी क्रियाविधियों/घटनाओं का विकास होता है। सांख्य दर्शन में यह एक महान नियम है। यह बुद्धि (मन से भिन्न) है। यह उन पच्चीस तत्वों में से दूसरा तत्व है जिन्हें सांख्य ने माना था।
महातपस्	महा (बड़ा) तपस (तपस्या)।
महानारायणोपनिषद्	उपनिषदों में से एक उपनिषद् का नाम।
महाविद्या	महान् ज्ञान, उच्च ज्ञान।
महाव्रत	महान् सौगंध अथवा सैद्धांतिक कर्तव्य।
मांस	गोश्त।
मात्सर्य	द्वेष।

मीमांसा	परीक्षा । भारतीय दर्शन की पद्धतियां । पूर्व मीमांसा में देवत्व की सामान्य संकलपना पर विचार किया गया है परंतु यह कर्म और धार्मिक अनुष्ठानों के महत्व पर बल देता है । उत्तर मीमांसा में वेदों के आधार पर परमात्मा को स्वीकार किया गया है परंतु इसमें ज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) पर विशेष बल दिया गया है ।
मुक्त	मोक्ष प्राप्त ।
मुक्ति	मोक्ष, मुक्त होने की स्थिति, जन्म-मरण से आत्मा की अंतिम मुक्ति ।
मुद्रा	मुहर, मुहरनुमा आसन ।
मूर्च्छा प्राणायाम	एक प्रकार का प्राणायाम जिसमें श्वास ऐसी स्थिति में रोक ली जाती है मानो वह मूर्च्छा की स्थिति हो ।
मूढ़	मंद ।
मूल	जड़, आधार ।
मूलबंध	एक आसन जिसमें गुदा से लेकर नाभि तक शरीर का संकुचन किया जाता है और उसे मेरूदंड की ओर उठाया जाता है ।
मूलाधार चक्र	नाड़ी चक्र जो मेरूदंड के आधार अथवा मूल पर गुदा के ऊपर श्रोणि में स्थित होता है ।
मेदस्	चर्वी
मेरूदंड	रीढ़ की हड्डी ।
मोह	प्रमोन्माद
मोक्ष	मुक्ति, बार-बार जन्म लेने से आत्मा की अंतिम मुक्ति ।
यजुर्वेद	चार वेदों में से एक वेद का नाम जो हिंदुओं का पवित्र धर्म ग्रंथ है ।
यज्ञ	अनुष्ठान अथवा त्याग ।
यम	मृत्यु का देवता, जिसकी वार्ता सत्य अन्वेषक नचिकेता से हुई । यह वार्ता **कठोपनिषद्** का आधार है । यम योग के आठ अंगों में से एक है । यम सार्वभौमिक, नैतिक आदेश अथवा अकारीय नियम हैं जो जाति, देश, आयु और समय से परे होते हैं, यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।
यशस्वनी नाड़ी	नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम ।
याज्ञवल्क्य	एक ऋषि का नाम जो **विधिसंहिता** के रचयिता थे । वे राजा जनक के आध्यात्मिक गुरु थे । याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी गार्गी के बीच हुई वार्ता **वृहद्‌ारण्यक उपनिषद्** का एक

	भाग है।
युज	मिलाना, जोड़ना, एकाग्र ध्यान करना।
याग	मिलन, संधि। योग शब्द 'युज' धातु से निकला है जिसका अर्थ बांधना, युक्त करना, मिलाना और ध्यान को केंद्रित करना है। यह भारतीय दर्शन की उन छह पद्धतियों में से एक पद्धति है जिनका पता ऋषि पतंजलि ने लगाया था। योग हमारी इच्छाशक्ति का परमात्मा की इच्छाशक्ति में मिलन है। यह आत्मा की शांति है जो साधक को जीवन के सभी पक्षों में समानता से देखने के योग्य बनाता है। योग का मुख्य उद्देश्य उन साधनों को सिखाना है जिनसे कि मानवीय आत्मा उस उच्च आत्मा में पूर्णतया तादात्म्य स्थापित कर ले जो ब्रह्मांड में व्याप्त है और इस प्रकार निर्मुक्ति प्राप्त हो जाए।
योगचूड़ामणि उपनिषद्	योग उपनिषदों में से एक उपनिषद् का नाम।
योगसूत्र	पतंजलि द्वारा लिखित योग की शास्त्रीय कृति। इस कृति में योग के सारगर्भित सूत्र दिए गए हैं और यह ग्रंथ चार भागों में बाँटा गया है जिनका संबंध समाधि (गहन ध्यान), साधन जिनसे योग प्राप्त किया जाता है, विभूति (शक्तियां) जिनके द्वारा साधक अपनी खोज को पूरा करता है ओर कैवल्य (निर्मुक्ति की अवस्था) से है।
रंध्र	सूराख।
रक्त	खून।
रजस	कर्म, तीव्र लालसा, मनोभाव।
रत्न	जवाहरात।
रत्नपूरितधातु	ऐसे तत्व जो जवाहरातों (आवश्यक अंशों) से पूरित हों।
रत्नाकर	सागर, जवाहरातों का निर्माता। उस डाकू का नाम भी है जो वाद में ऋषि वाल्मीकि बन गया और जिसने प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण की रचना की। एक दिन इस डाकू ने ऋषि नारद को पकड़ लिया। उसने मृत्यु की धमकी देकर नारद से कहा कि वे अपनी सभी वस्तुओं को उसे सौंप दें। नारद ने डाकू को अपने घर जाने के लिए कहा और यह सलाह दी कि वह अपनी पत्नी और बच्चों से पूछे कि क्या वे उन असंख्य दुष्ट कर्मों में भी उसके साथी बनने के लिए तैयार हैं जो उसने किए हैं। डाकू घर गया और अपने परिवार के लोगों से अपने दुष्ट कर्मों में सहभागी बनने की अनिच्छा सुनते ही शीघ्र लौट आया। नारद ने डाकू से राम

नाम जपने के लिए कहा। जब डाकू ने ऐसा करने से मना किया तो नारद ने उसे 'मरा' (जो राम का विलोम है) जपने के लिए कहा और यह कहते ही नारद अंतर्ध्यान हो गए। रत्नाकर ने 'मरा' शब्द का बराबर जप किया और वह इस जप में इतना तल्लीन हो गया कि वह राम का ध्यान कर उठा। उसका शरीर वाल्मीकि (चींटियों की श्रृंखलाओं) से आच्छादित हो गया। नारद लौटकर आए और उन्होंने डाकू को ऋषि के परिवर्तित रूप में पाया। जैसे ही वह चीटियों की श्रृंखलाओं से बाहर आया, उसे वाल्मीकि कहा जाने लगा। जब सीता गर्भवती थीं और उन्हें परित्यक्त किया गया था तब ऋषि वाल्मीकि ने अपने आश्रम में उन्हें शरण दी थी और उनके दो युगल पुत्रों का लालन-पालन किया था तथा बाद में वे उन्हें राम को सौंपने के लिए गए थे।

रस स्वाद।

रसात्मक जीवन में प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रकार की भावनाओं और सुगंधियों के अनुभव।

राग आत्मीयता।

राम विष्णु भगवान के सातवें अवतार।

रामायण राम के जीवन पर लिखा हुआ प्रसिद्ध महाकाव्य।

रावण लंका का असुर सम्राट जिसने सीता का हरण किया। सीता राम की पत्नी थी और राम ने बाद में रावण का वध किया। रावण अधिक बुद्धिमान था और उसमें अपार बल था। वह शिव का अनन्य भक्त था तथा वेदों का ज्ञाता था। उसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसने वैदिक पाठों के शुद्ध उच्चारण का निर्धारण किया। इसी कारण वे आज तक अपरिवर्तित बने हुए हैं।

रु 'गुरु' शब्द का दूसरा पदांश जिसका अर्थ प्रकाश है।

रुद्र ठोस, घोर। शिव का नाम।

रूप आकृति।

रेचक उच्छवसन, फुपफुसों की वायु को खाली करना।

रेतस वीर्य।

लंका श्रीलंका का गणतंत्र, सीलोन।

लय विघटन; मन का अवशोषण अथवा भक्ति।

ललाटचक्र ललाट का अर्थ है माथा। ललाट चक्र माथे के शीर्ष भाग पर स्थित होता है।

लोभ	लालच ।
लोम	बाल ।
वराहोपनिषद्	एक उपनिषद् का नाम जिसमें नाड़ियों के संबंध में चर्चा की गई है ।
वाक्	वाणी ।
वात	वायु ।
वायु	हवा, सशक्त वायु ।
वायुसाधना	वायु (सशक्त वायु) की साधना (अभ्यास अथवा खोज) । प्राणायाम का एक दूसरा नाम ।
वारुणी नाड़ी	नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम, जो समस्त शरीर में प्रवाहित होती है । इस नाड़ी का कार्य मूत्र का निष्कासन है ।
वाल्मीकि	प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण के रचयिता । देखें रत्नाकर ।
वासना	इच्छा, झुकाव, लालसा ।
वासुदेव	भगवान् विष्णु का नाम ।
विक्षिप्त	दुचितापन, उलझन अथवा घबराहट द्वारा पैदा की गई मन की उत्तेजित अवस्था ।
विचारणा	परीक्षा, खोजबीन, चर्चा, विचार ।
विज्ञान	ज्ञान, बुद्धि, विवेक, समझ, विवेक बुद्धि । इसका अर्थ वह सांसारिक ज्ञान भी है जो सांसारिक अनुभव से प्राप्त होता है और जो ब्रह्म अथवा सर्वोच्च आत्मा के ज्ञान के विपरीत होता है ।
विज्ञान नाड़ी	चेतना की नलिकाएं ।
विज्ञानमय कोष	बुद्धि का आच्छादन जो आत्मा को आच्छादित किए हुए है तथा जो वैयक्तिक अनुभव से प्राप्त तर्क और न्याय की प्रक्रिया को प्रभावित करता है ।
विद्या	ज्ञान, सीखना, विज्ञान ।
विभीषण	रावण के भाई का नाम । विभीषण ने रावण को यह बताया था कि राम की पत्नी सीता को भगा लाने से उसका चरित्र अनैतिक कहलाएगा और उन्होंने रावण को समझाया था कि सीता को उसके पति को सौंप देना चाहिए । जब विभीषण रावण को यह बात समझाने में असफल हो गए तो उन्होंने रावण को छोड़ दिया और रावण से युद्ध करने के लिए राम के साथ मिल गए । रावण के वध के बाद विभीषण को लंका का सम्राट बनाया गया । विभीषण को नैतिक चरित्र का आदर्श समझा जाता है और एक ऐसा

साधक माना जाता है जिन्होंने सात्विक गुण के साथ ध्यान के अभ्यास किए थे।

विलोम प्राणायाम — विलोम का अर्थ लोम (बाल) का विपरीत है, धारा के विपरीत, वस्तुओं के क्रम के विपरीत। विलोम प्राणायाम में पूरक क्रिया या रेचक क्रिया एक लगातार प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह कई अवरोधों के साथ धीरे-धीरे की जाती है।

विवेक — न्याय, विभेदन।

विवेक ख्याति — ज्ञान अथवा विवेक की ख्याति (क्षमता)।

विशालता — विस्तार, स्थान, चौड़ाई, विस्तृति।

विशुद्धि चक्र — ग्रसनीय क्षेत्र में नाड़ी-जाल रचना।

विश्वधारिणी — ब्रह्मांड को सहारा देने वाली।

विश्वधारी नाड़ी — नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम, जिसका कार्य भोजन का पाचन होता है।

विषमवृत्ति प्राणायाम — विषम का अर्थ अनियमित और कठोर है। विषमवृत्ति प्राणायाम इसलिए कहा जाता है क्योंकि पूरक क्रिया, कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया में समान अवधि नहीं रखी जाती। इसके कारण लय में अवरोध हो जाता है और अनुपात के अंतर से कठिनाई उत्पन्न होती है तथा साधक को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

विष्णु — हिंदू त्रियेक परमेश्वर के दूसरे आराध्य देव।

वीणा — भारतीय सितार जैसा एक वाद्य जिसके दोनों सिरों पर तुंबे लगे रहते हैं।

वीणा दंड — मेरुदंड।

वीरासन — वीर का अर्थ नायक, योद्धा अथवा विजेता होता है। यह बैठने का आसन घुटनों को एक साथ रखकर पैरों को फैला कर और नितंबों के एक ओर उन्हें सहारा देकर किया जाता है। यह आसन ध्यान और प्राणायाम के लिये लाभदायक है।

वृत्ति — कार्य का स्वरूप, व्यवहार, अस्तित्व का ढंग, अवस्था अथवा मानसिक स्थिति।

वृत्ति प्राणायाम — वृत्ति प्राणायाम दो प्रकार का होता है—समवृत्ति प्राणायाम और विषम वृत्ति प्राणायाम। पहले प्रकार के प्राणायाम में इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि श्वास-प्रश्वास की तीनों प्रक्रियाओं अर्थात् पूरक क्रिया, कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया जो किसी भी प्राणायाम में हो सकती है, की अवधि में समरूपता प्राप्त की जाए। विषम वृत्ति प्राणायाम में पूरक क्रिया, कुंभक क्रिया और रेचक क्रिया के

अनुपात में अंतर होता है जो अवरुद्ध लय की ओर उन्मुख होता है।

वेद — हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ जिन्हें श्रुति (ज्ञात साहित्य) के रूप में वर्गीकृत किया गया है, इनके चार संग्रह हैं जो ऋग्वेद—देवताओं के लिए मंत्र, सामवेद—पुजारियों के मंत्र, यजुर्वेद—गद्य में पवित्र सूत्र और अथर्ववेद—आभिचारिक मंत्र कहलाते हैं। प्रत्येक वेद के मोटे तौर पर दो भाग होते हैं अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण। ब्राह्मण में आरण्यक (धर्म शास्त्र) और उपनिषद् (दर्शन) शामिल किए जाते हैं।

वेदांत — शाब्दिक रूप से वेदों का अंत। लोकप्रिय रूप से भारतीय दर्शन की वह पद्धति जिसे उत्तर मीमांसा कहा जाता है जिसका अर्थ वेदों की अंतिम छानबीन है क्योंकि इसका केंद्रीय भाव उपनिषदों की दार्शनिक शिक्षाएं हैं। इन शिक्षाओं का संबंध तीन नियमों अर्थात् ब्रह्म, जगत और जीवात्मा के संबंध और प्रकृति से है और इसमें परमात्मा और वैयक्तिक आत्मा के संबंध की भी चर्चा की गई है।

वैराग्य — सांसारिक इच्छाओं की अवहेलना।

वैशेषिक — भारतीय दर्शन की छह पद्धतियों में से एक पद्धति जिसका प्रतिपादन कणाद ऋषि ने किया था। इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है कि इसमें इस बात की शिक्षा दी गई है कि यथार्थ की प्रकृति का ज्ञान विशेष गुणों के जानने से प्राप्त होता है या उन आवश्यक विभेदों से होता है जो नौ अनंत यथार्थताओं या द्रव्यों में विभेद करते हैं। ये इस प्रकार हैं: पृथ्वी, अप (जल), तेजस (अग्नि), वायु (हवा), आकाश (ईथर), काल (समय), दिक् (अंतरिक्ष), आत्मा और मनस् (मन)।

व्यवसायात्मिका बुद्धि — प्रयत्नशील और सहनशील बुद्धि।

व्याधि — बीमारी, रोग, अस्वस्थता।

व्यान वायु — सशक्त वायुओं में से एक वायु जो सारे शरीर में व्याप्त है तथा भोजन से उपलब्ध ऊर्जा को संचलित करती है और सारे शरीर में संचरित होती है।

शंकराचार्य — अद्वैत (जो द्वैत नहीं है) सिद्धांत के सुप्रसिद्ध आचार्य उन्होंने लगभग बत्तीस वर्षों की बहुत ही कम आयु में प्रामाणिक भाष्य, और असंख्य दार्शनिक काव्य लिखे और दक्षिण में शृंगेरी, उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में पुरी और पश्चिम में द्वारिका में चार मठ स्थापित किए।

शंखिणी नाड़ी	एक नाड़ी का नाम जो इड़ा और सुषुम्ना के मध्य स्थित होती है तथा प्रजनन अवयवों में समाप्त होती है। इसका कार्य भोजन के तत्व को ले जाना है।
शक्ति	शक्ति, ऊर्जा, क्षमता, बल कर्म की चेतना की शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला। चरम सिद्धांत के सभी पक्षों के रूप में शक्ति का चित्रण किया गया है और इसकी पूजा शिव की पत्नी के रूप में की जाती है।
शक्ति चालन	दैवी ऊर्जा अथवा कुंडलिनी का आरोहण।
शब्द	ध्वनि शब्द।
शरणागति	समर्पण, आश्रय लेना।
शरीर	आत्मा को आच्छादित करने वाला शरीर। वेदांत दर्शन के अनुसार तीन प्रकार के शरीर अथवा शरीर संरचनाएं होती हैं जिनमें पांच अंतर भेदी और पारस्परिक आश्रित कोष सम्मिलित होते हैं। तीन प्रकार के शरीर इस प्रकार हैं : (क) स्थूल शरीर, शरीर की कुल संरचना, जिसमें अन्न-मय कोष (पाचन के शारीरिक आच्छादन) सम्मिलित होते हैं;(ख) सूक्ष्म शरीर, शरीर की सूक्ष्म संरचना जिसमें ऐसे प्राणमय कोष (शारीरिक कोष) सम्मिलित होते हैं जो श्वास-प्रश्वास परिसंचरण, पाचन, नाड़ी, अंतःस्रावी, मलोत्सर्ग और प्रजनन प्रणालियों को शामिल किए होते हैं; मनोमय कोष (मनोवैज्ञानिक आच्छादन) जो वैयक्तिक अनुभव से, अप्राप्त चेतना भावना और संचलन की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं और विज्ञानमयकोष (बौद्धिक आच्छादन) जो वैयक्तिक अनुभव से प्राप्त तर्क और न्याय की बौद्धिक प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले होते हैं; और (ग) कारण, आकस्मिक शरीर संरचना जिसमें आनंदमय कोष (आनंद के आच्छादन) सम्मिलित होते हैं।
शरीर ज्ञान	शरीर का ज्ञान। ध्यान के लाभों में से एक लाभ यह है कि शरीर की तीनों संरचनाओं अथवा प्रकारों और पांचों कोषों के बारे में पूर्ण ज्ञान हो जाता है।
शव	मृतक शरीर, लाश।
शवासन	मृतक जैसा आसन। इस आसन का उद्देश्य यह होता है कि मृतक की कल्पना की जाए। एक बार जीवनलीला समाप्त हो जाने पर शरीर निष्क्रिय हो जाता है और उसमें कोई क्रिया संभव नहीं हो सकती। कुछ समय तक गतिहीन और मन से निष्क्रिय किंतु अन्यथा पूर्ण रूप से सचेत रहते

हुए व्यक्ति तनावमुक्त होना सीख लेता है। यह चैतन्यपूर्ण विश्रांति शरीर और मन दोनों को स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करती है। शरीर की अपेक्षा मन को निष्क्रिय करना कठिन होता है। अतएव सर्वाधिक आसान लगने वाले इस आसन पर दक्षता प्राप्त करना सर्वाधिक कठिन है।

शास्त्र कोई भी नियम संहिता अथवा नियमावली सहायिका, पुस्तक अथवा ग्रंथ, विशेषकर धार्मिक अथवा वैज्ञानिक ग्रंथ कोई भी पवित्र पुस्तक अथवा दैवी अधिकारी विद्वान की रचना। शास्त्र शब्द सामान्यतया पुस्तक के द्योतक शब्द के बाद प्रयोग में लाया जाता है अथवा इसे ज्ञान की शाखाओं को सामूहिक रूप से बताने के लिए प्रयोग में लाते हैं। उदाहरणार्थ, योगशास्त्र —योग दर्शन पर रचित ग्रंथ, योग विषय पर अध्यापन का ग्रंथ।

शिवसंहिता हठयोग पर शास्त्रीय पाठ्य पुस्तक।

शिवस्वरोदय हठयोग की पुस्तक।

शिष्य चेला, छात्र।

शीतकारी और शीतली प्राणायामों के प्रकार जो शरीर प्रणाली को शांत करते हैं।

शीर्षासन सिर का संतुलन।

शुक्र वीर्य, पौरुष।

शुभ अच्छा, भला; नाड़ी का नाम।

शुभेच्छा भली इच्छा या इरादा।

शून्य खाली, रिक्त, निर्जन, अविद्यमान, सपाट, शून्य।

शून्य देश अलग-अलग अथवा एकाकी स्थान। एकाकीपन की अवस्था।

शून्यावस्था ऐसी अवस्था जिसमें आंतरिक और संवेगीय उथल-पुथल, शांत हो जाती है। यह निष्क्रियता की नकारात्मक अवस्था होती है जब मन शून्य रहता है और चंचलता से मुक्त होता है तथा आत्मा में समाहित और विलीन हो जाता है और वह अपना अस्तित्व खो देता है, जैसे नदी सागर में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है।

शौच स्वच्छता, शुचिता।

श्रवण सुनना, आत्म संस्कृति की पहली अवस्था।

श्री शुभ,सुंदर।

श्लेष्मा कफ।

श्वास-प्रश्वास उच्छ्वास और आह भरना; पूरक क्रिया और रेचक क्रिया।

श्वेतकेतु ऋषि उड्डालक के पुत्र जिन्होंने उसे सभी ज्ञान की कुंजी से संबंधित निर्देश दिये थे। उनका वार्तालाप छांदोग्यो-

	उपनिषद् का एक भाग है।
श्वेताश्वतरोपनिषद्	मुख्य उपनिषदों में से एक उपनिषद् का नाम ।
षट्चक्रनिरूपण	योग की एक पुस्तक का नाम। इस पुस्तक में कुंडलिनी शक्ति का वर्णन किया गया है और इस बात का भी विवेचन किया गया है कि यह कुंडलिनी शक्ति किस प्रकार मूलाधार से उभरकर सहस्रार में प्रवेश करती है तथा अपने मार्ग में छह चक्रों का बेधन करती है ।
षण्मुखीमुद्रा	एक बंद आसन जिसमें सिर के छिद्र बंद हो जाते हैं और मन ध्यान के लिए निर्दिष्ट हो जाता है ।
संकल्प	इरादा, मानसिक दृढ़ता, दृढ़ निश्चय ।
संख्या	गिनती, गिनना, गणना ।
संतोष	आत्मतोष ।
संयम	निरोध, नियंत्रण, प्रतिबंध ।
संशय	संदेह ।
संस्कार	अतीत की मानसिक छाप ।
संस्कृत	एक परिशुद्ध भाषा ।
स	एक उपसर्ग । यदि यह संज्ञाओं के साथ मिलाया जाए तो विशेषण और क्रियाविशेषण बन जाता है जिसका अर्थ (क) साथ के साथ, के सहारे, से सहित और सम्मिलित करते हुए है; (ख) समान, की तरह; (ग) एक-सा ।
सगर्भ ध्यान	गर्भ को भ्रूण कहते हैं। सगर्भ ध्यान वह मनन क्रिया है जिसका अभ्यास पवित्र प्रार्थना के साथ किया जाता है। यह मन में ऐसे उत्पन्न होता है जैसे भ्रूण हो और इससे स्थिरता की स्थिति आ जाती है ।
सत	अस्तित्व, वास्तविक सत्य, ब्रह्म अथवा सर्वोच्च आत्मा ।
सत्य	सच ।
सत्यकाम जाबाल	एक ऋषि का नाम, देखें जाबालि ।
सत्व	प्रकृति की प्रत्येक वस्तु के प्रकाश, शुद्धता और श्रेष्ठता के गुण ।
सत्त्वापत्ति	आत्मज्ञान ।
सद्-असद् विवेक	सद् (सत्य) और असद् (असत्य) के मध्य विवेक (बुद्धि) ।
सबीज	बीज का अर्थ मूल या अंकुर होता है । सबीज का अर्थ अंकुर सहित होता है । प्राणायाम और ध्यान में पवित्र प्रार्थना—बीज मंत्र का जप अथवा मन ही मन पुनरावृत्ति नौसिखिया साधक को बताई जाती है ताकि उसका चंचल मन स्थिर स्थिति में आ सके ।

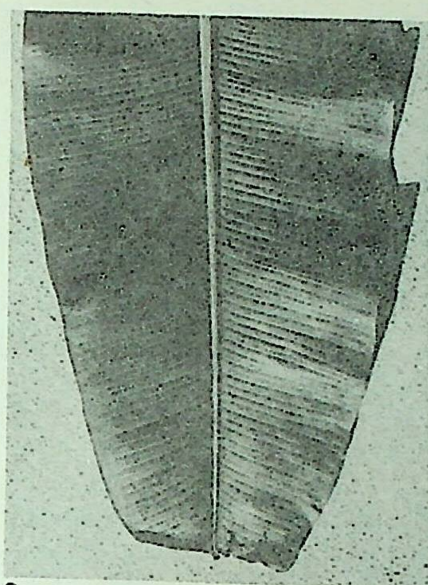
सबीज ध्यान	पवित्र प्रार्थना के मानसिक जप के साथ किया गया ध्यान ।
सबीज प्राणायाम	पवित्र प्रार्थना के मानसिक जप के साथ किया गया प्राणायाम ।
समवृत्ति प्राणायाम	प्राणायाम में पूरक क्रिया, रेचक क्रिया और कुंभक क्रिया की समान अवधि अथवा समान गति संचलन ।
समाधि	ऐसी अवस्था जिसमें साधक अपने ध्यान के लक्ष्य के साथ महात्म्य स्थापित कर लेता है, सर्वोच्च आत्मा ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाती है और इस स्थिति में अकथनीय आनंद और शांति की भावना महसूस हो उठती है। योग की आठवीं और सबसे उच्च अवस्था ।
समान वायु	सशक्त वायु में से एक वायु जो उदरीय अवयवों की सुसंगत क्रिया के लिए पाचन शक्ति में सहायक होती है ।
समाहित चित्त	ऐसी अवस्था जिसमें मन, बुद्धि और अहं समान रूप से संतुलित होते हैं और उन्हें भली-भांति सुव्यवस्थित कर दिया जाता है। एक संतुलित व्यक्तित्व ।
सरस्वती	शिक्षा और वाणी की देवी। उस नाड़ी का भी नाम है जो सुषुम्ना के पीछे स्थित है तथा जो जिह्वा में समाप्त होती है। यह नाड़ी वाणी पर अधिकार रखती है और उदरीय अवयवों को रोग से मुक्त करती है ।
सर्वांगासन	सर्वांग (सर्व—सभी, कुल, पूरा; अंग भुजा अथवा शरीर) का अर्थ पूर्ण शरीर अथवा सभी अंग होता है। 'इस आसन में पूर्ण शरीर को लाभ प्राप्त होता है इसीलिए इस आसन को यह नाम दिया गया है ।
सविचारणा	स (सही) विचारणा (चिंतन) ।
सवितर्क	स (सही या ठोस) वितर्क (तर्क, दलील या विचार) ।
सहस्रार चक्र	प्रमस्तिष्कीय गर्त में सहस्र दल कमल ।
सहस्रार दल	दल का अर्थ ढेर, अधिक संख्या, अनासक्ति अथवा दलों का समूह होता है। सहस्रार दल सहस्रार चक्र का दूसरा नाम है ।
सहस्रार नाड़ी	यह नाड़ी सर्वोच्च आत्मा का स्थान है और यह उसका द्वार होती है ।
सहित कुंभक	सहित का अर्थ, के साथ, सम्मिलित अथवा के द्वारा होता है । श्वास को स्वैच्छिक रूप से रोके रखना ।
सांख्य	हिंदू दर्शन की विचारपद्धतियों में से एक विचारपद्धति जिसका प्रतिपादन कपिल मुनि ने किया था। उन्होंने ब्रह्मांडीय उद्भव का विधिवत् वर्णन किया है। इसे इस नाम से

	इसलिए पुकारा जाता है क्योंकि इसमें पच्चीस तत्वों का विवेचन हैं। ये तत्व हैं : पुरुष (ब्रह्मांडीय आत्मा), प्रकृति (ब्रह्मांडीय पदार्थ), महत् (ब्रह्मांडीय बुद्धि), अहंकार (अपने ही बारे में सोचने-समझने का नियम), मनस् (ब्रह्मांडीय मन), इंद्रियां (ज्ञान और कर्म की दस सूक्ष्म ज्ञान शक्तियां), तन्मात्राएं (पांच सूक्ष्म तत्व—वायु, स्पर्श, रूप, रस और गंध, जो ज्ञानशक्तियों के सूक्ष्म अंश होते हैं), और पंच महाभूत (पांच ज्ञान विवरण—आकाश (अंतरिक्ष), वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के महान् तत्व)।
साक्षी	गवाह अथवा दृष्टा। सर्वोच्च आत्मा देखता है लेकिन कार्य नहीं करता।
सात्विक प्रज्ञा	आलोकित बुद्धि।
साधक	अन्वेषक, महत्वाकांक्षी।
साधना	अभ्यास, खोज।
सामवेद	चार वेदों में से एक वेद जिसमें पूजा के मंत्र संग्रहीत हैं।
सास्मित	'स' का अर्थ सहित और 'अस्मिता' का अर्थ 'अहं' है। समाधिपूर्ण ध्यान के प्रकारों में से एक प्रकार है जहां साधक का अहं पूर्णतया विस्मृत हो जाता है।
सिद्ध	एक ऋषि, मुनि अथवा पादरी; महान् शुद्धता और पवित्रता का देवतुल्य मानव।
सिद्धासन	बैठने के इस आसन में टांगों को घुटने के आर-पार रखा जाता है और इस प्रकार शरीर को विश्राम दिया जाता है। सीधी पीठ मस्तिष्क को एकाग्र तथा सचेत रखती है। इस आसन की सिफारिश प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास के लिए की जाती है।
सिद्धि	उपलब्धि, सफलता। इसका अर्थ महामानव की शक्तियों से भी होता है।
सिर	शरीर का नलिकानुमा अवयव जो सूक्ष्म शरीर में सशक्त वीर्य शक्ति वितरित करता है।
सीता	राम की पत्नी का नाम। रामायण महाकाव्य की नायिका।
सुषुम्ना नाड़ी	ऊर्जा की मुख्य प्रवाहिका जो मेरुदंड के अंदर स्थित होती है।
सुषुप्ति अवस्था	स्वप्न रहित निद्रा में मस्तिष्क की अवस्था।
सूक्ष्म	बहुत छोटा।
सूक्ष्म शरीर	सूक्ष्म शरीर जो हांफता हुआ और आह भरता हुआ हो; पूरक क्रिया और रेचक क्रिया।
सूर्य	सूरज।

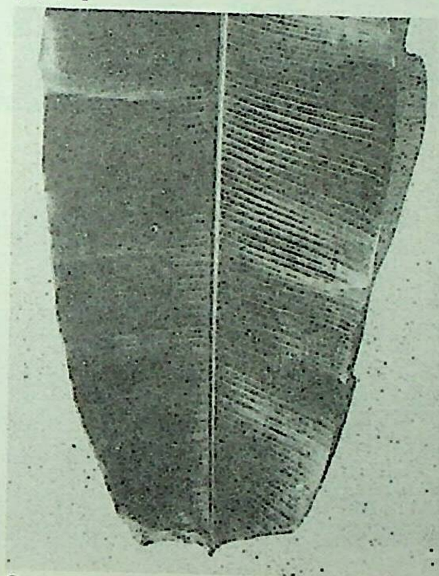
सूर्यचक्र	नाड़ियों का चक्र जो नाभि और हृदय के बीच में स्थित है।
सूर्य नाड़ी	सूर्य की नाड़ी। पिंगला नाड़ी का दूसरा नाम।
सूर्यभेदन प्राणायाम	सूर्यभेदन द्वारा अंदर घुसना अथवा गुजरना। इस प्राणायाम में पूरक क्रिया दाहिने नासारंध्र द्वारा की जाती है जहाँ से पिंगला नाड़ी अथवा सूर्य नाड़ी प्रारंभ होती है। रेचक क्रिया बाह्य नासारंध्र द्वारा की जाती है जहां से इड़ा नाड़ी या चंद्र नाड़ी प्रारंभ होती है।
सूरा नाड़ी	नाड़ी का नाम जो भौंहों के बीच स्थित होती है।
सेतु-बंध सर्वांगासन	सेतु का अर्थ पुल है। सेतुबंध का अर्थ इस पुल का निर्माण है। इस आसन में शरीर एक ओर कंधों पर भुकाया जाता है और उसकी सहायता ली जाती है तथा दूसरी ओर एड़ियों पर झुकाया जाता है और उसकी सहायता ली जाती है। धनुषाकार स्थिति को कमर पर हाथ रखकर रोका जाता है।
सोम	चंद्रमा।
सोमचक्र	नाड़ियों का चक्र जो मस्तिष्क के मध्य में स्थित होता है।
सोम नाड़ी	इड़ा नाड़ी का दूसरा नाम जो चंद्र ऊर्जा प्रवाहित करती है। अत: इसको चंद्र या सोम नाड़ी (चंद्र ऊर्जा की प्रवाहिका) कहते हैं।
सोऽहं	वह मैं हूं, अचेतावस्था में बार-बार दोहराई जाने वाली प्रार्थना जो प्रत्येक जीवित प्राणी जीवन-पर्यंत प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में दोहराता है।
स्त्यान	क्लांति, आलस्य।
स्थितप्रज्ञ	न्याय अथवा बुद्धि में दृढ़, माया मोह से मुक्त।
स्थिरता	दृढ़ता, अचलता, स्थायित्व, कठोरता, निरंतरता, स्थिर होने का भाव
स्थूल शरीर	स्थूल (पूर्ण) शरीर (काय)। भौतिक या नश्वर शरीर जो मृत्यु के समय नष्ट हो जाता है।
स्पर्श	तन्मात्र (छूने का सूक्ष्म तत्व)।
स्मृति	याद, विधिसंहिता।
स्रोत	तीव्र धारा। शरीर के पोषण की धारा।
स्वस्तिकासन	टांगों को आर-पार करके और पीठ को सीधा करके बैठने का आसन। यह आसन उन आसनों में से एक है जो प्राणायाम या ध्यान के अभ्यास के लिए लगाए जाते हैं।
स्वप्नावस्था	स्वप्न में मन की अवस्था।
स्वात्माराम	हठयोग प्रदीपिका के लेखक। हठयोग प्रदीपिका हठयोग पर शास्त्रीय पाठ्य पुस्तक है।

स्वाधिष्ठान चक्र	नाड़ियों का चक्र जो प्रजनन अवयवों के ऊपर स्थित होता है।
स्वाध्याय	दैवी साहित्य के अध्ययन द्वारा आत्मा की शिक्षा।
स्वाहा	आकाश।
हठयोग	कठोर अनुशासन के द्वारा आत्मानुभूति का मार्ग।
हठयोग प्रदीपिका	स्वात्माराम द्वारा लिखित हठयोग पर प्रसिद्ध पाठ्य पुस्तक।
हनुमान	असाधारण शक्ति और बल के शक्तिशाली वानर प्रमुख जिनके महान् कार्यों का रामायण महाकाव्य में वर्णन किया गया है। वे अंजनी और वायु देवता के पुत्र थे। उन्हें हिंदू देवताओं में अमर माना जाता है। वे प्राणायाम के गुरु थे तथा खेल-कूद के समर्थक थे।
हस्त जिह्वा नाड़ी	नाड़ियों में से एक नाड़ी का नाम। यह नाड़ी इड़ा नाड़ी के सामने स्थित है और दाहिने नेत्र पर समाप्त होती है तथा दृष्टि के कार्य को नियमित करती है।
हिरण्यगर्भ	ब्रह्म का नाम। जो सुनहरे अंडे (हिरण्य—सोना ; गर्भ—अंडा) से उत्पन्न हुए थे। इसका अर्थ उस आत्मा से भी है जो सूक्ष्म शरीर द्वारा प्रतिष्ठापित है।
हृदयम्	हृदय, आत्मा, मन। किसी प्राणी का आभ्यंतर भाग अथवा सार।
हृदयांजलि मुद्रा	अंतरवासी को सश्रद्धा प्रणाम करने के लिए हृदय के सामने हाथों को जोड़ना।

अनुक्रमणिका



चित्र 1

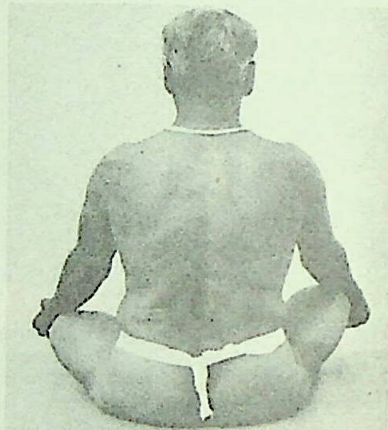


चित्र 2


चित्र 3


चित्र 4


चित्र 5

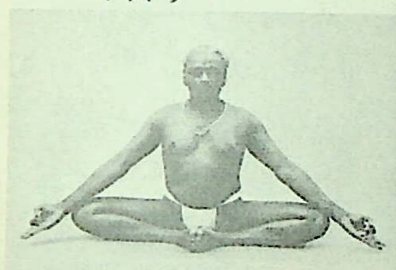

चित्र 6


चित्र 7


चित्र 8


चित्र 9


चित्र 10


चित्र 11


चित्र 12


चित्र 13


चित्र 14


चित्र 15


चित्र 16


चित्र 17


चित्र 18


चित्र 19


चित्र 20



चित्र 21



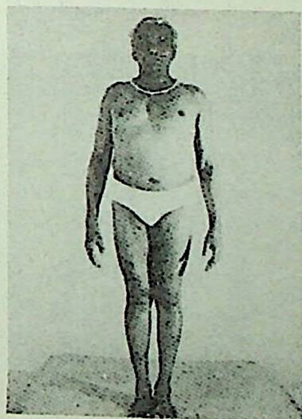
चित्र 22



चित्र 23



चित्र 24



चित्र 25

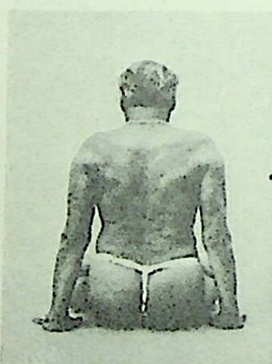

चित्र 26


चित्र 27


चित्र 28


चित्र 29


चित्र 30


चित्र 31


चित्र 32


चित्र 33


चित्र 34


चित्र 35


चित्र 36


चित्र 37

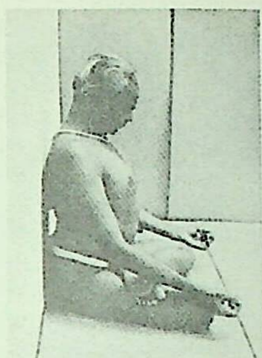

चित्र 38

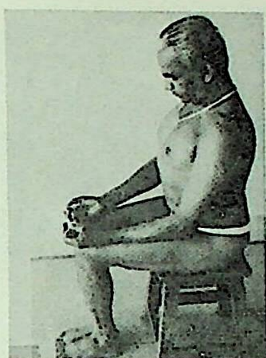

चित्र 39


चित्र 40


चित्र 41

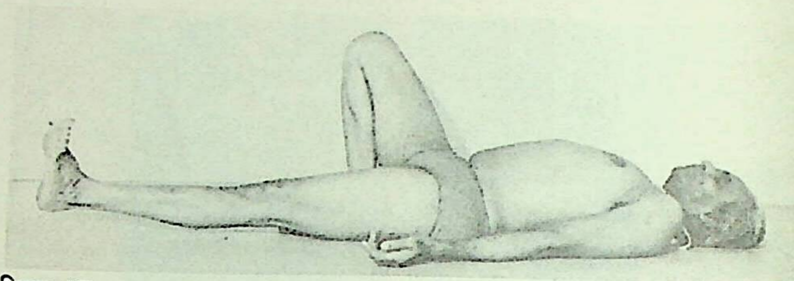

चित्र 42

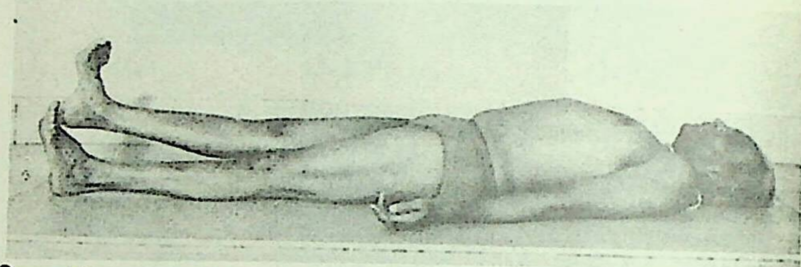

चित्र 43

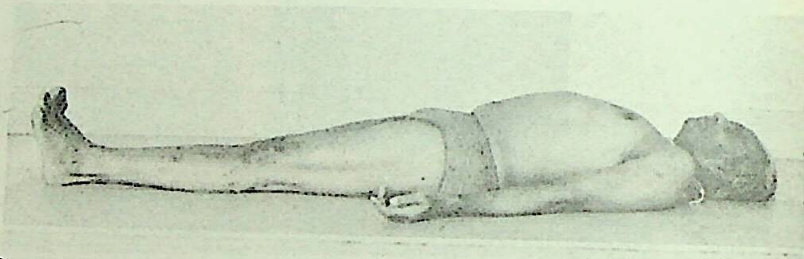

चित्र 44

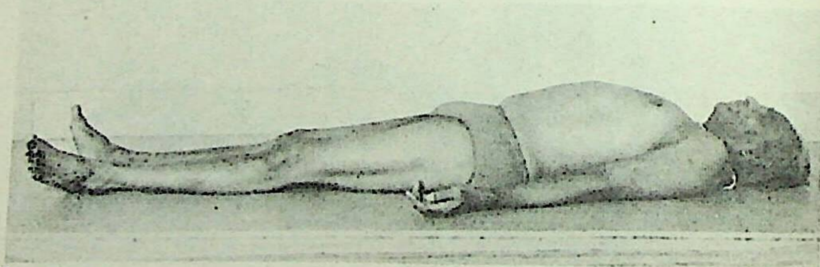

चित्र 45

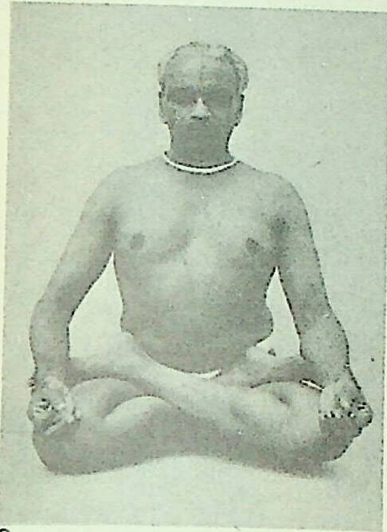

चित्र 46


चित्र 47

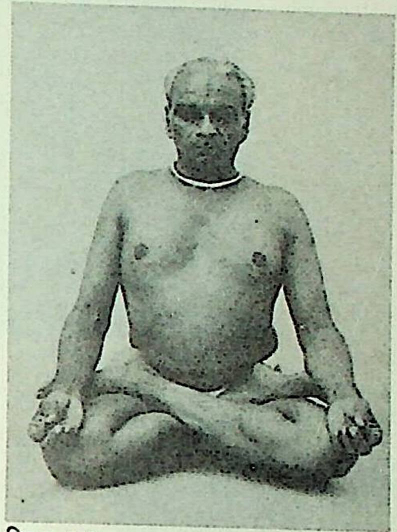

चित्र 48


चित्र 49


चित्र 50



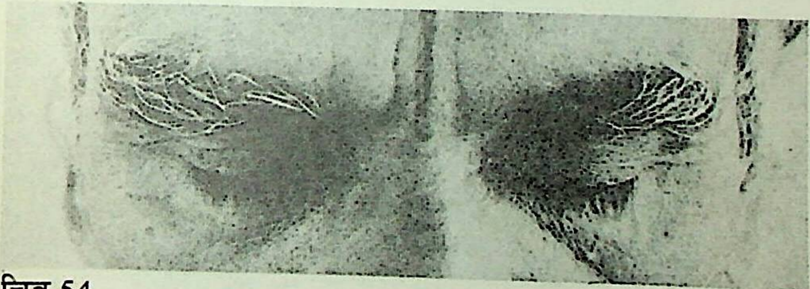
चित्र 51



चित्र 52



चित्र 53



चित्र 54


चित्र 55


चित्र 56


चित्र 57


चित्र 58


चित्र 59



चित्र 60



चित्र 61



चित्र 62



चित्र 63



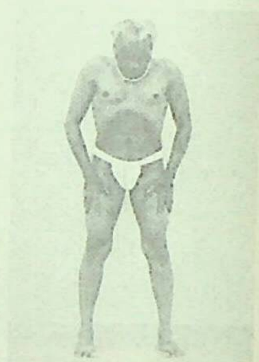
चित्र 64



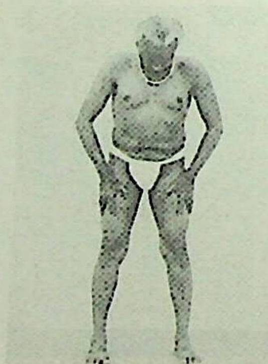
चित्र 65



चित्र 66



चित्र 67



चित्र 68



चित्र 69



चित्र 70



चित्र 71



चित्र 72



चित्र 73



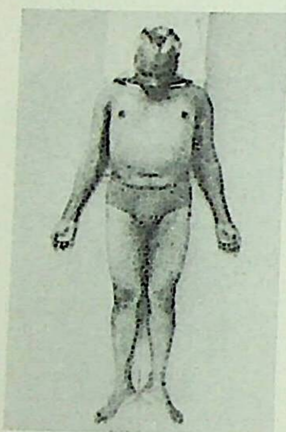
चित्र 74



चित्र 75



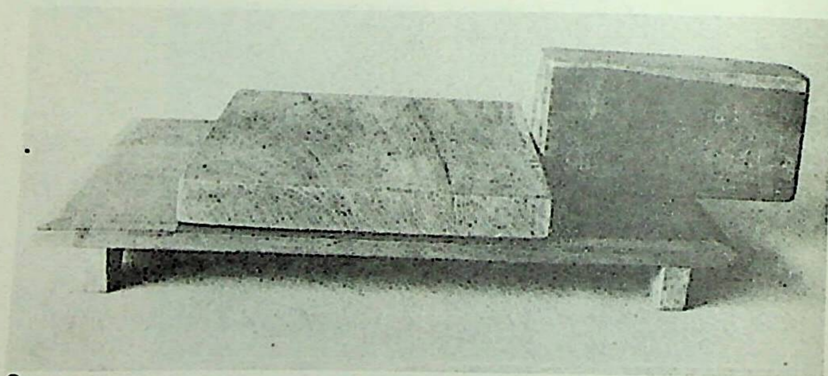
चित्र 76



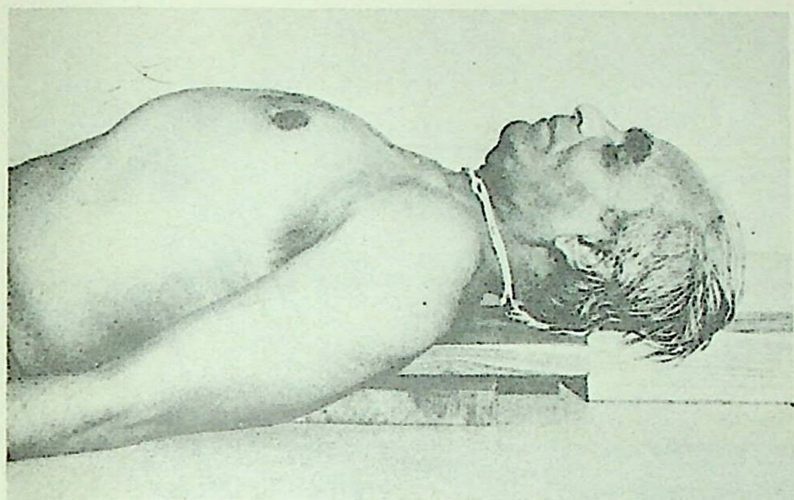
चित्र 77

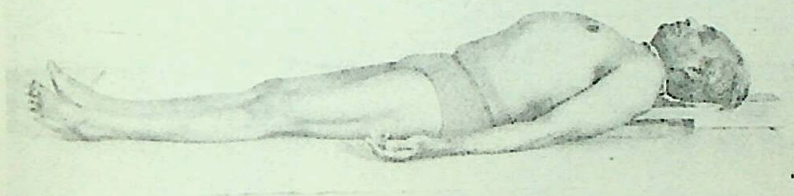


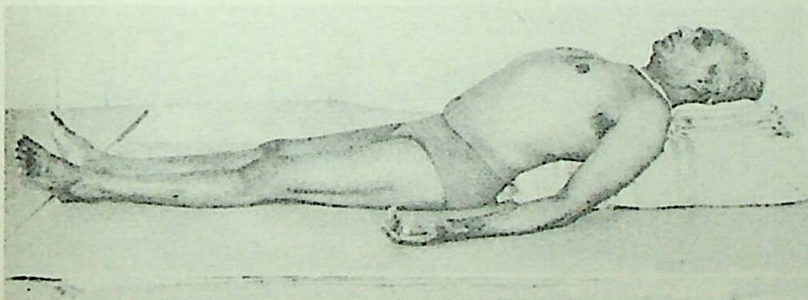
चित्र 78

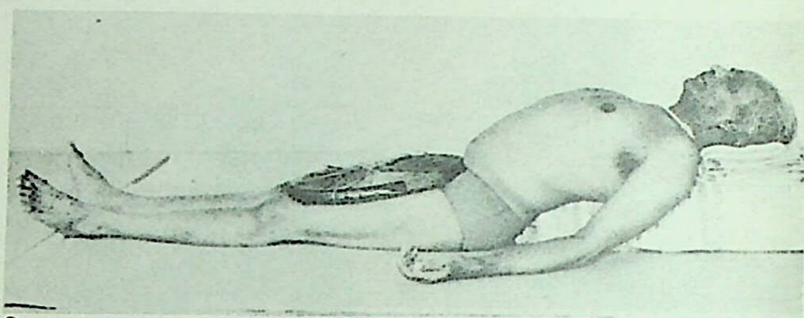


चित्र 79

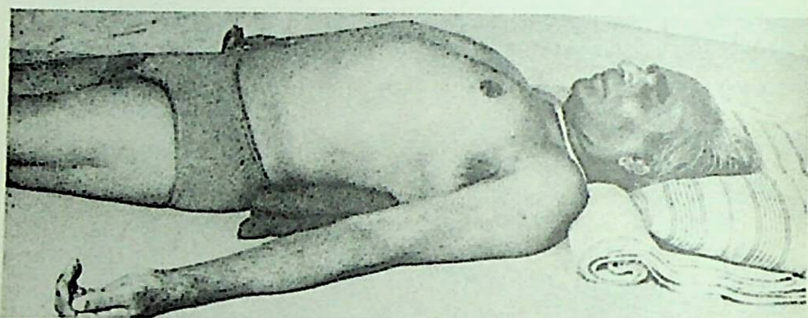

चित्र 80


चित्र 81

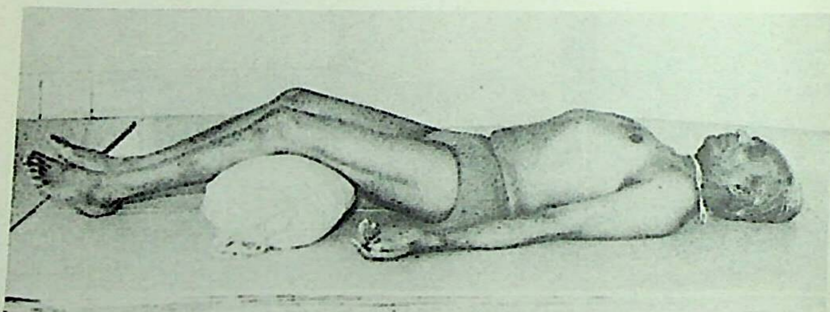

चित्र 82



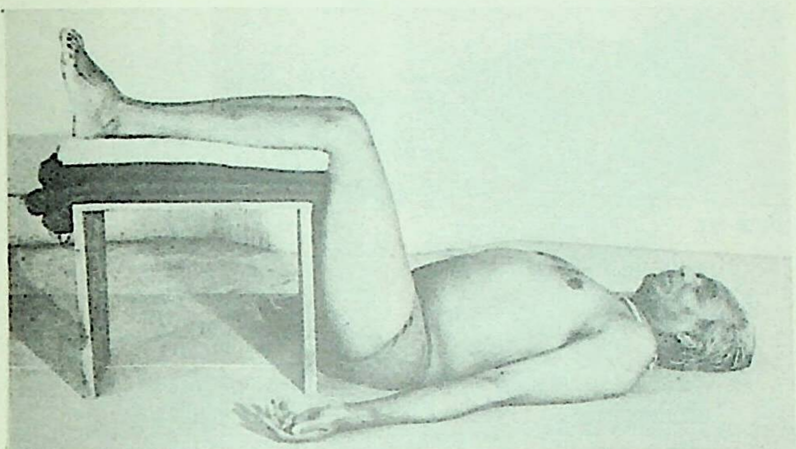
चित्र 83



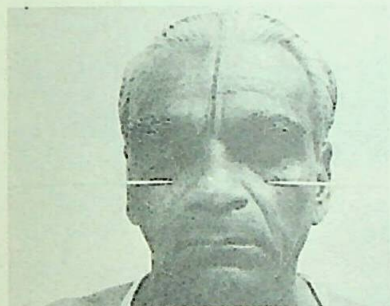
चित्र 84



चित्र 85



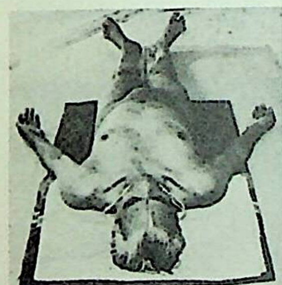
चित्र 86



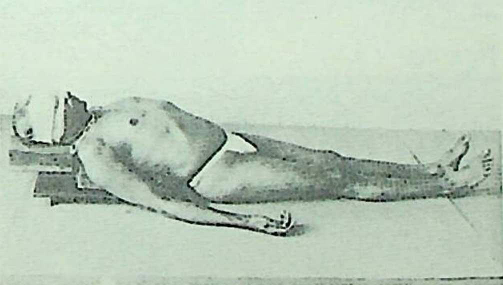
चित्र 87



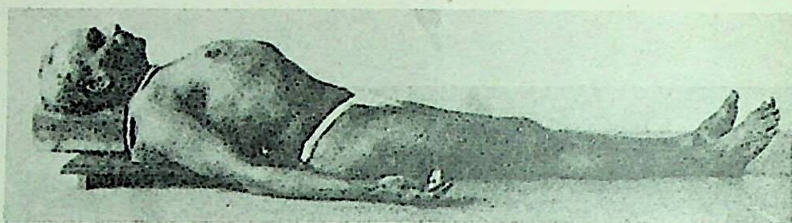
चित्र 88

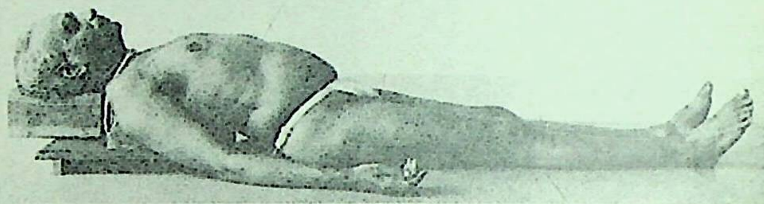


चित्र 89

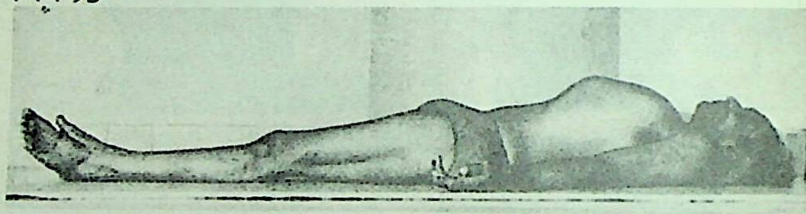


चित्र 90

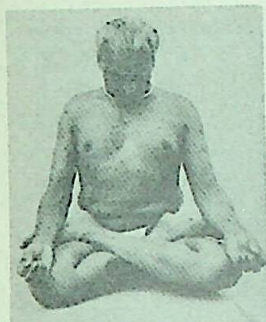

चित्र 91

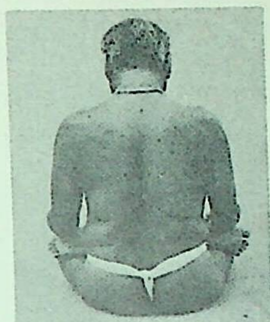

चित्र 92


चित्र 93


चित्र 94


चित्र 95


चित्र 96

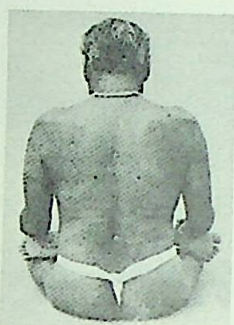

चित्र 97

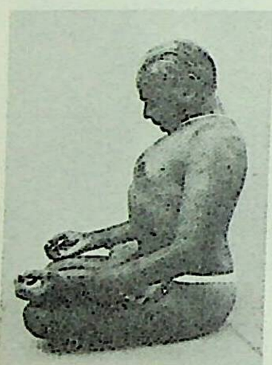

चित्र 98


चित्र 99


चित्र 100

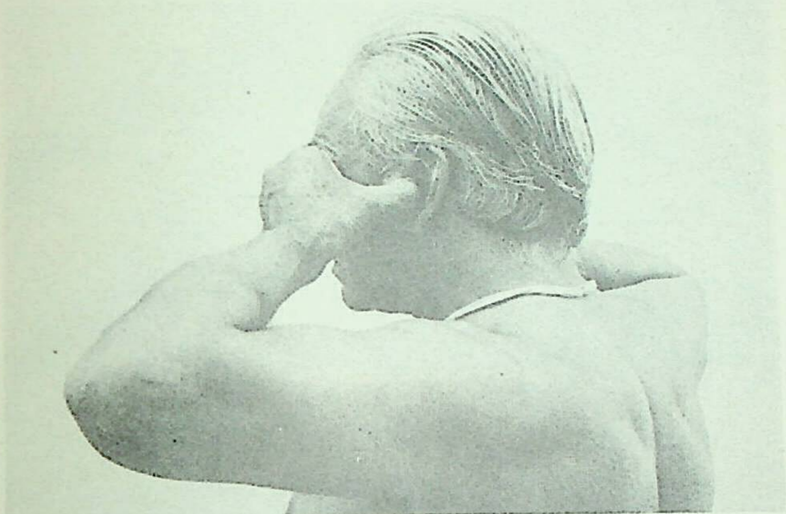

चित्र 101


चित्र 102

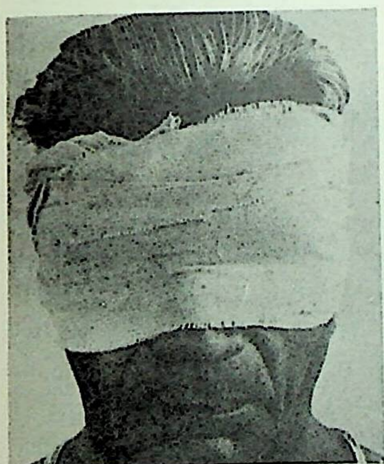

चित्र 103


चित्र 104


चित्र 105



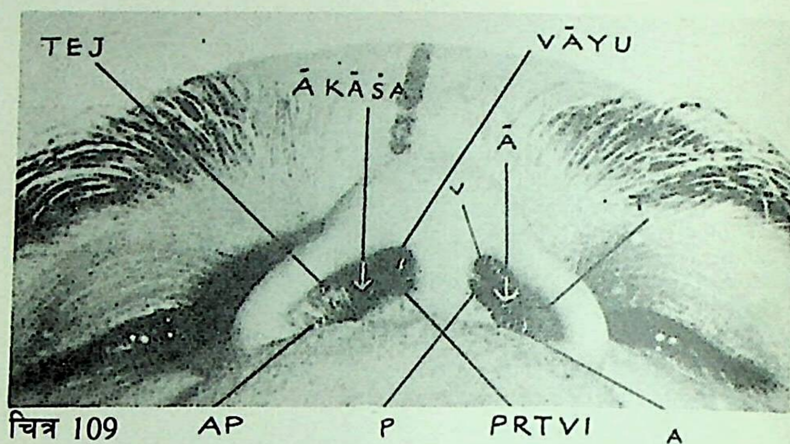
चित्र 106



चित्र 107



चित्र 108



चित्र 109


चित्र 110


चित्र 111


चित्र 112

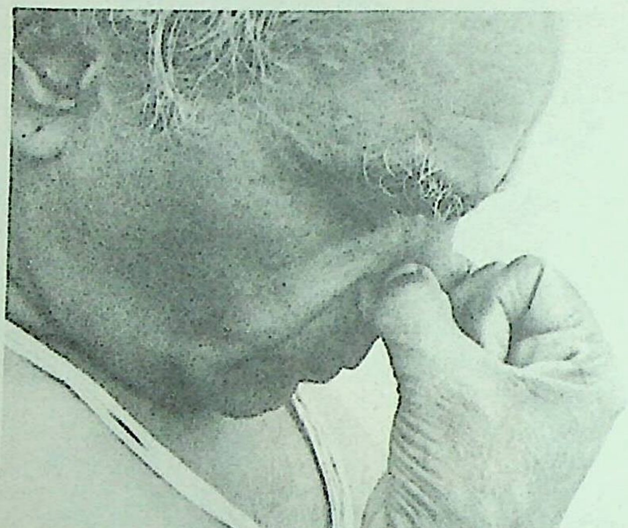

चित्र 113


चित्र 114


चित्र 115


चित्र 116

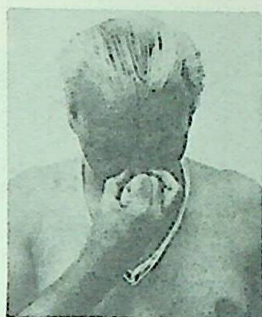

चित्र 117



चित्र 118



चित्र 119

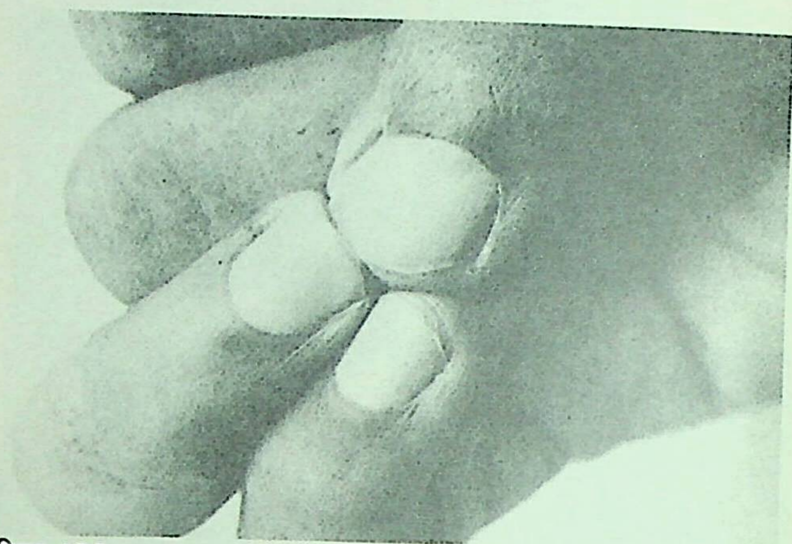

चित्र 120


चित्र 121

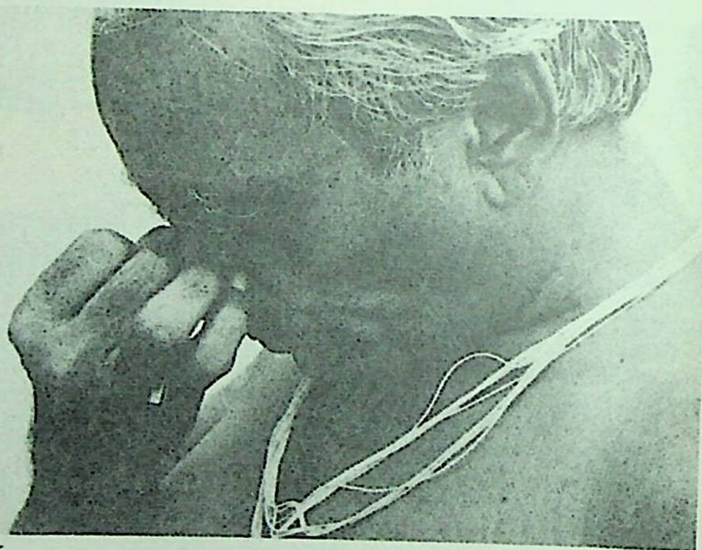

चित्र 122


चित्र 123


चित्र 124



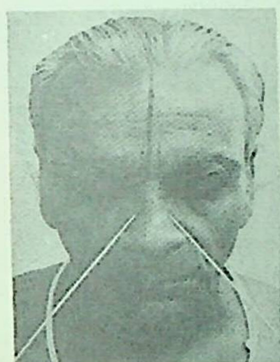
चित्र 125

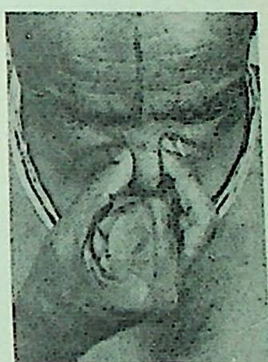


चित्र 126


चित्र 127


चित्र 128


चित्र 129


चित्र 130


चित्र 131



चित्र 132



चित्र 133



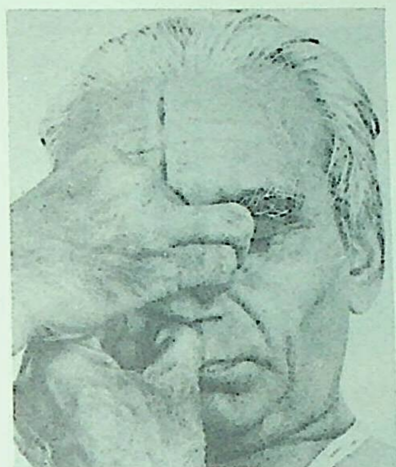
चित्र 134



चित्र 135



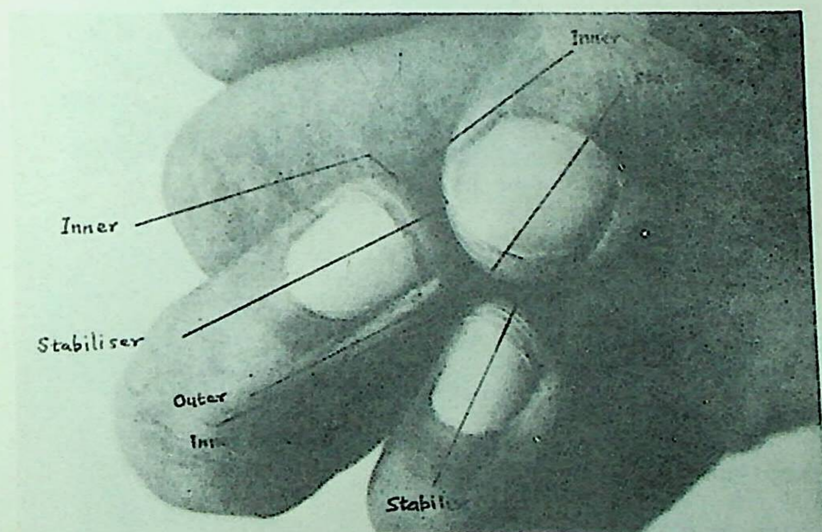
चित्र 136



चित्र 137



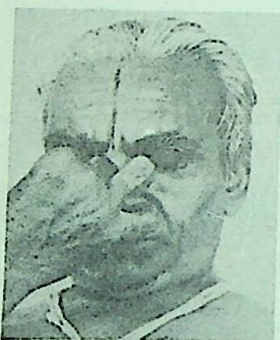
चित्र 138

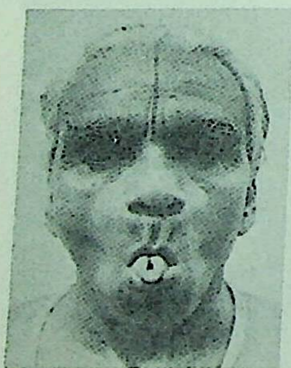


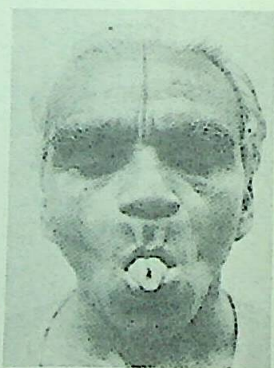
चित्र 139


चित्र 140


चित्र 141


चित्र 142


चित्र 143


चित्र 144


चित्र 145

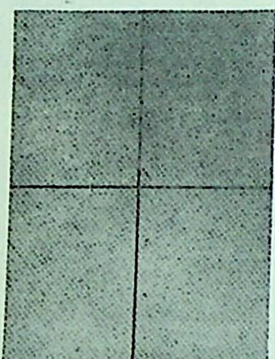

चित्र 146


चित्र 147

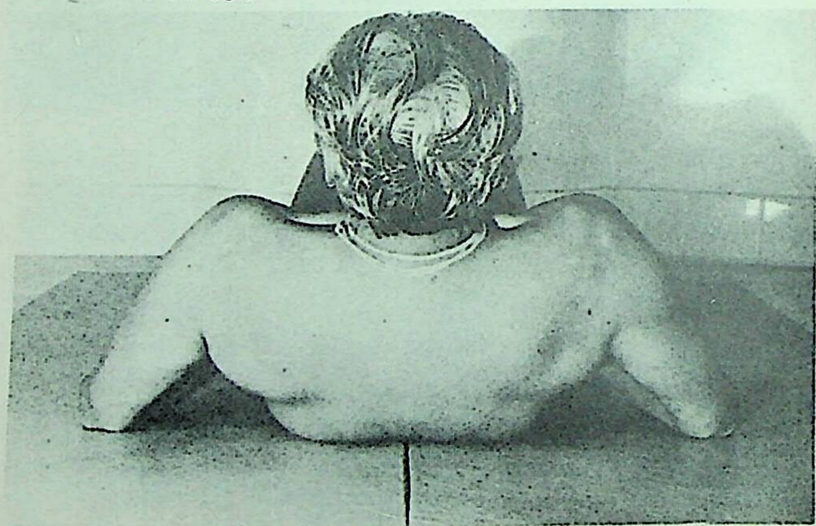

चित्र 148


चित्र 149


चित्र 150

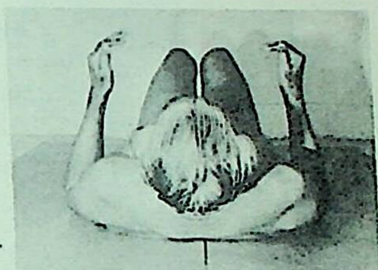

चित्र 151


चित्र 152

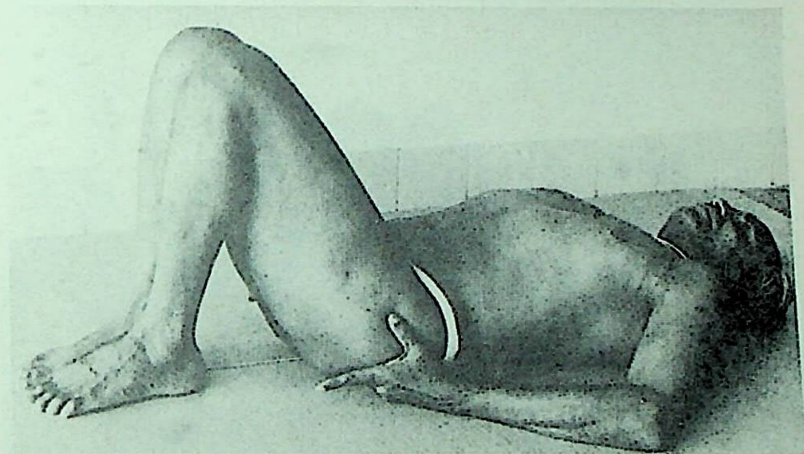

चित्र 153



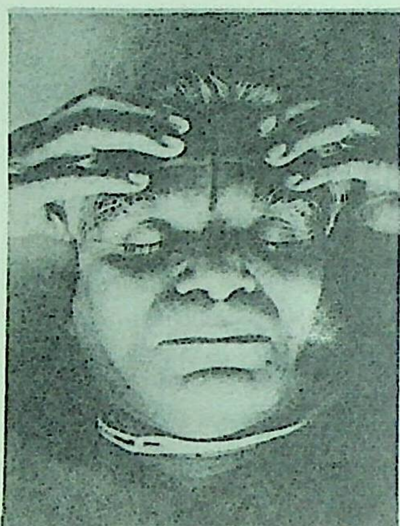
चित्र 154



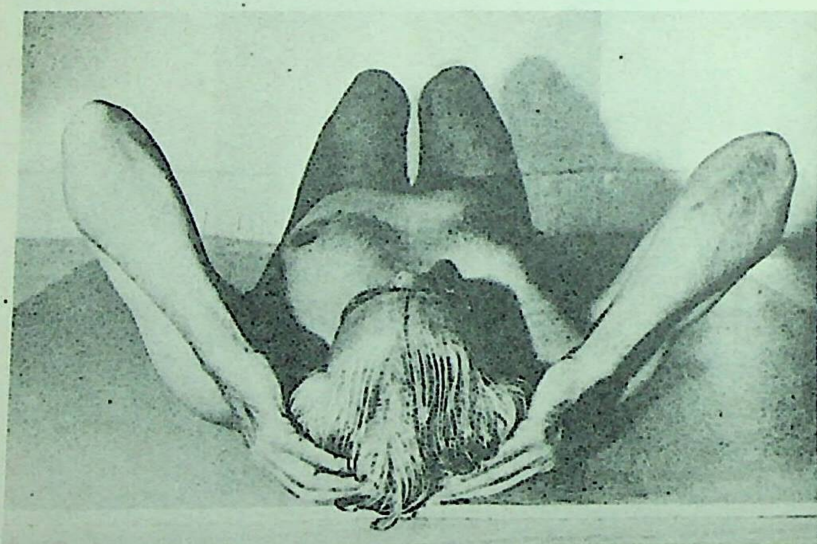
चित्र 155



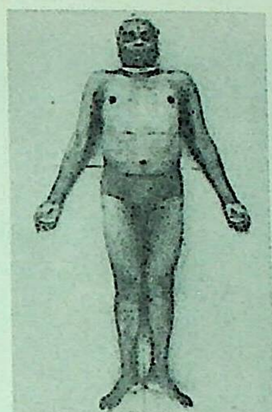
चित्र 156



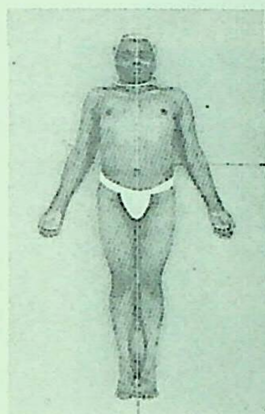
चित्र 157



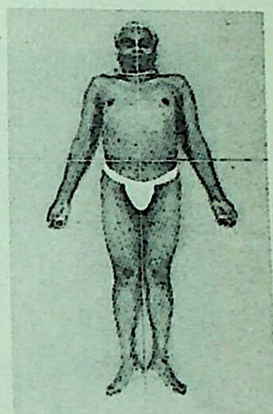
चित्र 158



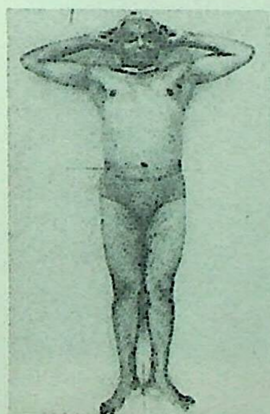
चित्र 159



चित्र 160



चित्र 161



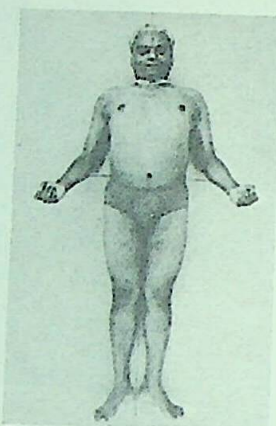
चित्र 162



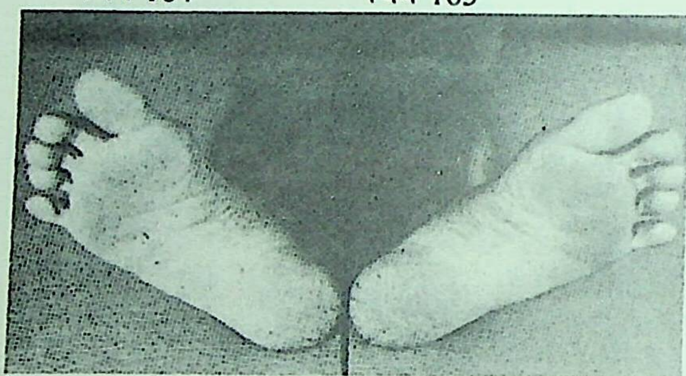
चित्र 163



चित्र 164



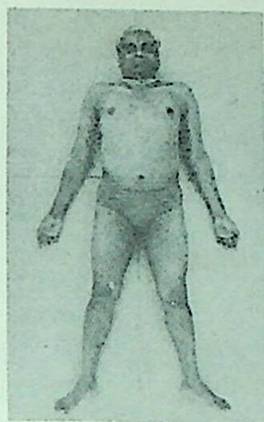
चित्र 165



चित्र 166



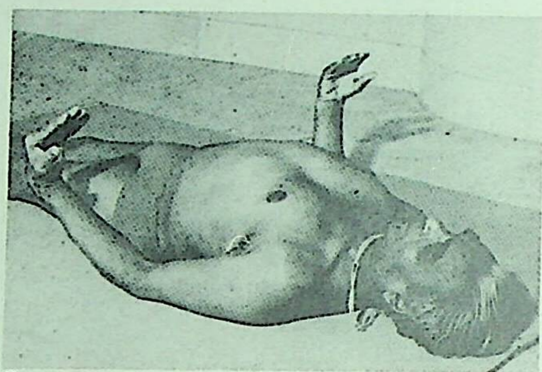
चित्र 167

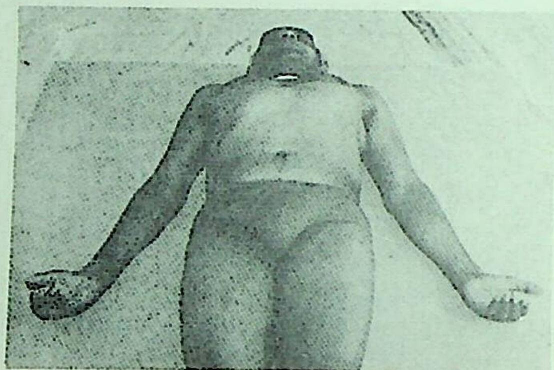

चित्र 168


चित्र 169

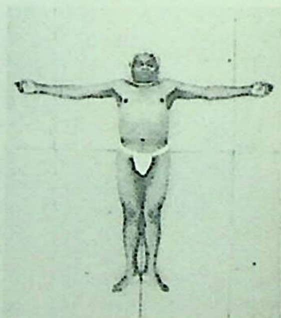

चित्र 170


चित्र 171


चित्र 172


चित्र 173

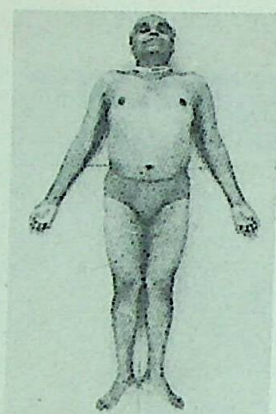

चित्र 174


चित्र 175

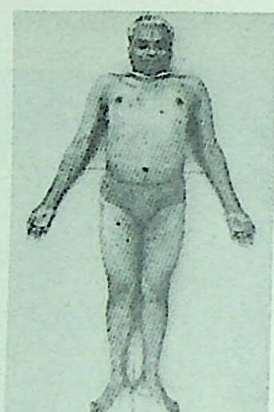

चित्र 176


चित्र 177

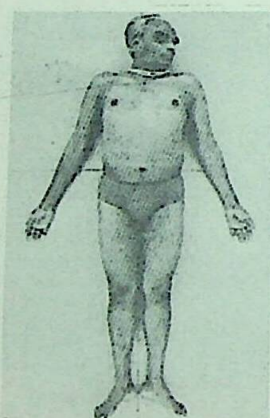

चित्र 178



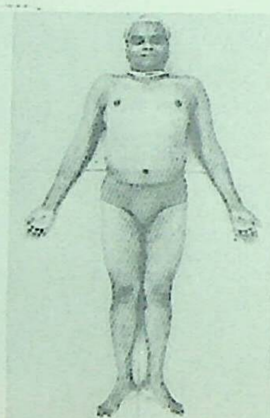
चित्र 179



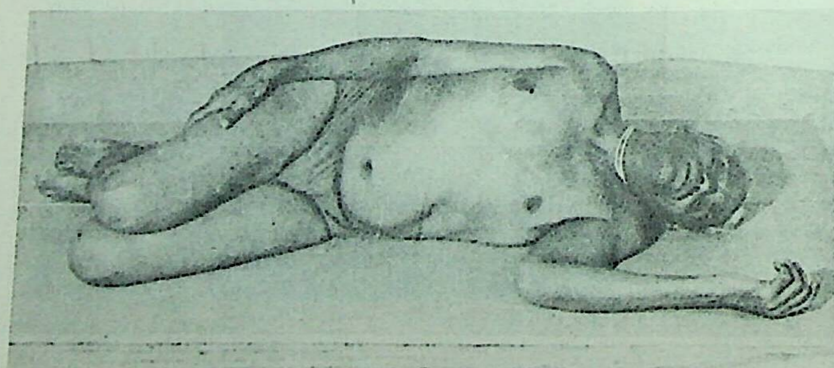
चित्र 180



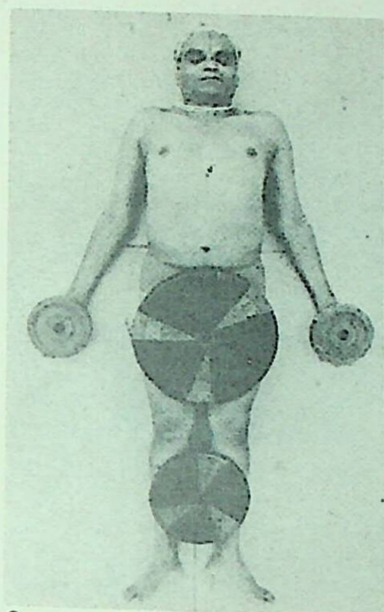
चित्र 181

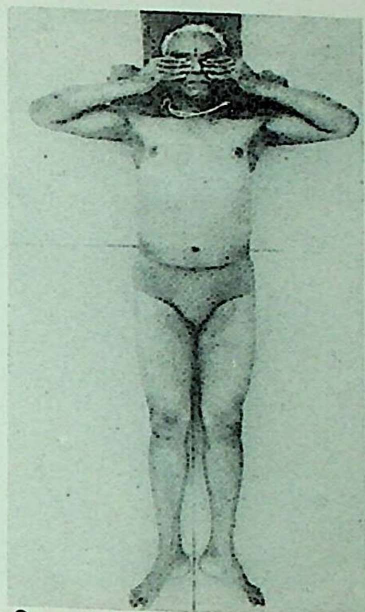


चित्र 182

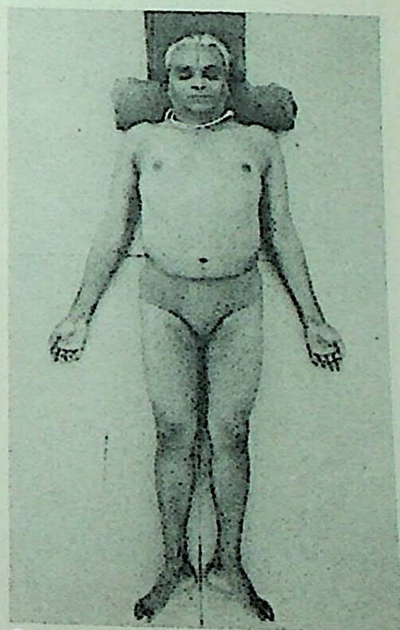


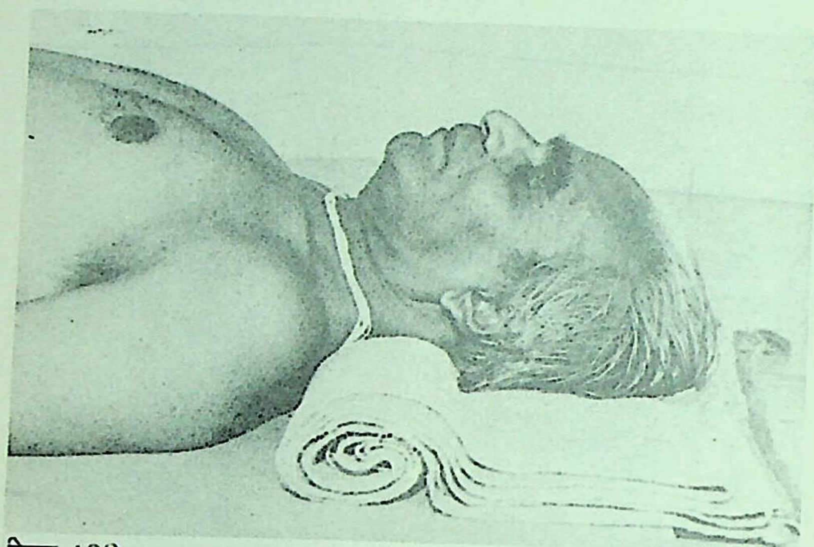
चित्र 183


चित्र 184

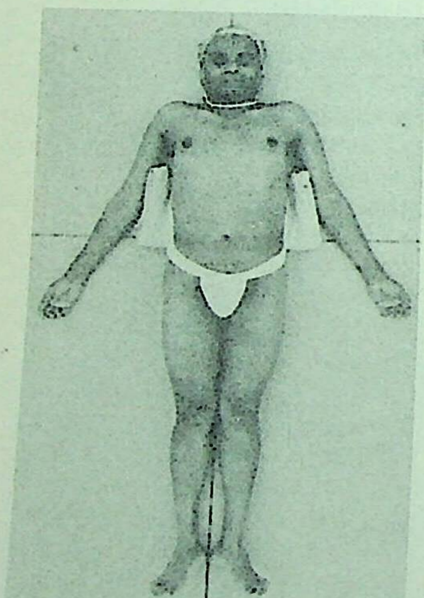

चित्र 185


चित्र 186

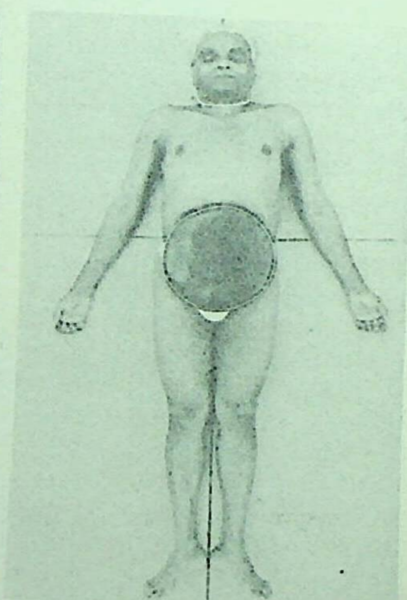

चित्र 187



चित्र 188



चित्र 189



चित्र 190

प्राणायाम श्वसन की यौगिक कला है जो संवेगों का नियंत्रण करके साधक को स्थिरता, एकाग्रता और मन की शान्ति प्रदान करती है—ऐसे गुण जिनका आज हमारे जीवन में अभाव है। प्राणायाम प्रत्येक योग के लिए आवश्यक है किन्तु इसकी तकनीकों को जानना आसान नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक श्री आयंगार की अंग्रेजी पुस्तक ***लाइट आन प्राणायाम*** का हिन्दी अनुवाद है। इसमें श्री आयंगार ने सरल और सुवोध भाषा में 200 चित्रों के माध्यम से प्राणायाम के 14 आधारभूत प्रकारों का पूर्णरूपेण और सविस्तार विश्लेषण किया है। इन चित्रों के आधार पर विना प्रत्यक्ष गुरु के निर्देश के, प्राणायामों का अभ्यास किया जा सकता है।

इसमें प्राणायाम के सिद्धांत, कला और तकनीकों का विवेचन तथा योग के विभिन्न पक्षों के साथ प्राणायाम का समन्वय दिखाया गया है। इसमें आत्म-विजय में सहायक ध्यान और शवासन की भी चर्चा की गई है। इसमें योग दर्शन की व्यापक भूमिका दी गई है और सहायक विषय नाड़ियां, चक्र एवं वीज मंत्र के बारे में भी विवेचन है।

उत्साही अभ्यासकों के लिए 82 शृंखलावद्ध अवस्थाओं वाला 200 सप्ताहों का एक उत्कृष्ट और परिपूर्ण अभ्यासक्रम दिया गया है। इन अवस्थाओं को सरल संदर्भ के लिए तालिकावद्ध कर दिया गया है। ये तालिकाएं ही इस पुस्तक की विशिष्टता है। प्रस्तुत पुस्तक प्राणायाम पर पूर्ण और शिक्षाप्रद है तथा विश्वभर में एक व्यावहारिक निर्देशिका के रूप में प्रयोग की जा रही है।



ओरियंट लांग्मैन

बम्बई कलकत्ता मद्रास नई दिल्ली
वंगलौर हैदराबाद पटना

Iyengar : PRANAYAMA (Hindi) Rs. 40.00
ISBN 0 86131 575 8